एम.ए. पूर्वार्द्ध

इतिहास, प्रथम प्रश्न पत्र

इतिहास लेखन : अवधारणा, प्रविधियां एवं उपकरण

(HISTORIOGRAPHY CONCEPT, METHODS AND TOOLS)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Manisha Sharma
   Associate Professor
   Govt. PG College, Beena (M.P.)

2. Dr. Amita Singh
   Professor
   Govt.MLB College, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Ajay Khare
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education,
   Bhopal (MP)

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

2. Dr L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

3. Dr L.P. Jharia
   Director DME
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

4. Dr. Manisha Sharma
   Associate Professor
   Govt. PG College, Beena (M.P.)

5. Dr. Amita Singh
   Professor
   Govt.MLB College, Bhopal (M.P.)

6. Dr. Ajay Khare
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education,
   Bhopal (MP)

COURSE WRITERS

Prof. Brajesh Kumar Shrivastava, Head, Department of History, In-charge Head, Department of Adult Education**,** Dr Harisingh Gour University, Sagar-M.P.
Units (1.0-1.1, 1.2-1.3.2, 1.3.3, 1.4-1.8, 2.0-2.1, 2.2-2.6, 2.7, 2.8, 2.9-2.14, 3.0-3.1, 3.2-3.4, 3.5.2, 3.5.3, 3.5.4, 3.6-3.10, 4.0 -4.1, 4.2- 4.6, 4.7-4.11, 5.0-5.1, 5.2-5.3.1, 5.3.2, 5.4-5.4.1, 5.4.2, 5.5-5.5.1, 5.5.2, 5.6-5.10)

Dr. Syed Mubin Zehra, Assistant Professor, ARSD College, University of Delhi
Unit (3.5 , 3.5.1, 3.5.5)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

इतिहास लेखन : अवधारणा, प्रविधियां एवं उपकरण

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 इतिहास : अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र इतिहास का अर्थ इतिहास की प्रकृति इतिहास का क्षेत्र तथ्यात्मक सामग्री का संकलन तथा डाटा, साक्ष्य तथा उसका संचरण, करणीयता एवं इतिहासवाद तथ्यात्मक सामग्री का संकलन एवं डाटा साक्ष्य तथा उसका संचरण करणीयता एवं इतिहासवाद	**इकाई 1** : इतिहास की प्रकृति, क्षेत्र, साक्ष्य, संचरण एवं इतिहासवाद **(पृष्ठ 3–34)**
इकाई–2 इतिहास और पुरातत्व विज्ञान; इतिहास और भूगोल इतिहास और मानव विज्ञान; इतिहास और समाजशास्त्र इतिहास और अर्थशास्त्र; इतिहास और दर्शनशास्त्र इतिहास और राजनीति शास्त्र; इतिहास और साहित्य	**इकाई 2** : इतिहास तथा अन्य शास्त्र : पुरातत्व विज्ञान, भूगोल, मानव विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, राजनीति शास्त्र एवं साहित्य **(पृष्ठ 35–67)**
इकाई–3 ग्रीको–रोमन परंपरा; प्राचीन भारतीय परंपरा मध्यकालीन पश्चिमी अरबी, फारसी और भारतीय इतिहास लेखन आधुनिक इतिहास लेखन– प्रत्यक्षवाद, उदारवाद, परंपरागत मार्क्सवाद, एनाल्स, एनाल्स विचारक	**इकाई 3** : इतिहास लेखन की परंपराएं **(पृष्ठ 69–150)**
इकाई–4 इतिहास का धर्म संबंधी एवं प्राच्यवादी उपागम इतिहास का साम्राज्यवादी एवं राष्ट्रवादी उपागम इतिहास का मार्क्सवादी तथा आधुनिक मार्क्सवादी उपागम इतिहास का उपाश्रय उपागम इतिहास का उत्तर आधुनिकतावादी उपागम	**इकाई 4** : इतिहास के उपागम **(पृष्ठ 151–186)**
इकाई–5 इतिहास का चक्रीय एवं ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धांत इतिहास का चक्रीय सिद्धांत ऐतिहासिक भौतिकवाद : इतिहास का एक वृहत् सिद्धांत इतिहास का सामाजिक एवं तुलनात्मक सिद्धांत इतिहास का सामाजिक विकास, तुलनात्मक सिद्धांत संरचनात्मक एवं वैश्वीय सिद्धांत संरचनात्मक सिद्धांत, वैश्वीय सिद्धांत पारिस्थितिकीय एवं उत्तर–आधुनिकतावादी सिद्धांत की समालोचनाएं इतिहास पर जलवायु संबंधी कारकों का प्रभाव, उत्तर–आधुनिकतावादी सिद्धांत की समालोचनाएं	**इकाई 5** : इतिहास के वृहत् सिद्धांत **(पृष्ठ 187–210)**

विषय–सूची

परिचय **1**

इकाई 1 इतिहास की प्रकृति, क्षेत्र, साक्ष्य, संचरण एवं इतिहासवाद **3–34**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 इतिहास : अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र
  1.2.1 इतिहास का अर्थ
  1.2.2 इतिहास की प्रकृति
  1.2.3 इतिहास का क्षेत्र
1.3 तथ्यात्मक सामग्री का संकलन तथा डाटा, साक्ष्य तथा उसका संचरण, करणीयता एवं इतिहासवाद
  1.3.1 तथ्यात्मक सामग्री का संकलन एवं डाटा
  1.3.2 साक्ष्य तथा उसका संचरण
  1.3.3 करणीयता एवं इतिहासवाद
1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.5 सारांश
1.6 मुख्य शब्दावली
1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 इतिहास तथा अन्य शास्त्र : पुरातत्व विज्ञान, भूगोल, मानव विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, राजनीति शास्त्र एवं साहित्य **35–67**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 इतिहास और पुरातत्व विज्ञान
2.3 इतिहास और भूगोल
2.4 इतिहास और मानव विज्ञान
2.5 इतिहास और समाजशास्त्र
2.6 इतिहास और अर्थशास्त्र
2.7 इतिहास और दर्शनशास्त्र
2.8 इतिहास और राजनीति शास्त्र
2.9 इतिहास और साहित्य
2.10 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.11 सारांश
2.12 मुख्य शब्दावली
2.13 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.14 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 इतिहास लेखन की परंपराएं **69–150**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 ग्रीको–रोमन परंपरा

3.3 प्राचीन भारतीय परंपरा
3.4 मध्यकालीन पश्चिमी अरबी, फारसी और भारतीय इतिहास लेखन
3.5 आधुनिक इतिहास लेखन
3.5.1 प्रत्यक्षवाद
3.5.2 उदारवाद
3.5.3 परंपरागत मार्क्सवाद
3.5.4 एनाल्स
3.5.5 एनाल्स विचारक
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 इतिहास के उपागम **151–186**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 इतिहास का धर्म संबंधी एवं प्राच्यवादी उपागम
4.3 इतिहास का साम्राज्यवादी एवं राष्ट्रवादी उपागम
4.4 इतिहास का मार्क्सवादी तथा आधुनिक मार्क्सवादी उपागम
4.5 इतिहास का उपाश्रय उपागम
4.6 इतिहास का उत्तर आधुनिकतावादी उपागम
4.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.8 सारांश
4.9 मुख्य शब्दावली
4.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.11 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 इतिहास के वृहत् सिद्धांत **187–210**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 इतिहास का चक्रीय एवं ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धांत
5.2.1 इतिहास का चक्रीय सिद्धांत
5.2.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद : इतिहास का एक वृहत् सिद्धांत
5.3 इतिहास का सामाजिक एवं तुलनात्मक सिद्धांत
5.3.1 इतिहास का सामाजिक विकास
5.3.2 तुलनात्मक सिद्धांत
5.4 संरचनात्मक एवं वैश्वीय सिद्धांत
5.4.1 संरचनात्मक सिद्धांत
5.4.2 वैश्वीय सिद्धांत
5.5 पारिस्थितिकीय एवं उत्तर–आधुनिकतावादी सिद्धांत की समालोचनाएं
5.5.1 इतिहास पर जलवायु संबंधी कारकों का प्रभाव
5.5.2 उत्तर–आधुनिकतावादी सिद्धांत की समालोचनाएं
5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'इतिहास लेखन : अवधारणा, प्रविधियां एवं उपकरण' विश्वविद्यालय द्वारा एम.ए. (पूर्वार्द्ध) के लिए निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार लिखी गई है। इतिहास लेखन इतिहास और इतिहास पद्धति का अध्ययन करने के लिए या तो एक अनुशासन के रूप में संदर्भित करता है या एक विशेष विषय पर ऐतिहासिक कार्य के ढांचे के रूप में। इतिहास अतीत के बारे में व्यवस्थित रूप से एकत्र की गई जानकारी का अध्ययन है। महान लेखक और राजनीतिज्ञ सिसरो ने इतिहास के बारे में कहा था कि इतिहास समय के व्यतीत होने का साक्षी होता है, वह वास्तविकता को रोशन करता है, स्मृति को ताजा बनाता है। वह हमें प्राचीन काल की जानकारी देकर हमारे दैनिक जीवन में मार्गदर्शन का काम करता है। दुनिया के दूसरे देशों में ईसा पूर्व से ही इतिहास लेखन को एक गंभीर कार्य माना जाने लगा था लेकिन भारत में सही मायनों में इतिहास लेखन बारहवीं सदी में ही शुरू हो सका, जब कल्हण ने कश्मीर के राजाओं पर केंद्रित राजतरंगिणी लिखी। देखा जाए तो भारत की आजादी के बाद ही यहां कुछ इतिहासकारों में भारतीय इतिहास को क्रमबद्ध करने का जज्बा जागा। 19वीं शताब्दी में शैक्षणिक इतिहास की उन्नति के साथ ही साहित्य के इतिहास लेखन के संग्रह का विकास हुआ।

इस पुस्तक में इतिहास लेखन की अवधारणा, प्रविधियों एवं उपकरणों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। छात्रों की सुविधा के लिए पुस्तक की प्रत्येक इकाई के आरंभ में उससे संबंधित विषय का परिचय और उद्देश्य स्पष्ट कर दिए गए हैं। विद्यार्थियों के स्व–मूल्यांकन के लिए प्रत्येक इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के अंतर्गत वैकल्पिक प्रश्न भी दिए गए हैं।

अध्ययन की सुविधा के लिए समूचे पाठ्यक्रम को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है। इन इकाइयों का विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में इतिहास की प्रकृति, क्षेत्र, साक्ष्य, संचरण एवं इतिहासवाद आदि तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

दूसरी इकाई इतिहास तथा अन्य शास्त्रों पर आधारित है। इस इकाई में इतिहास के पुरातत्व विज्ञान, मानव विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान आदि के साथ सह–संबंधों की विवेचना की गई है।

तीसरी इकाई इतिहास लेखन की परंपरा पर आधारित है। इसमें ग्रीको–रोमन परंपरा, प्राचीन भारतीय परंपरा, मध्यकालीन, अरबी एवं फारसी इतिहास लेखन एवं आधुनिक इतिहास लेखन का विश्लेषण किया गया है।

चौथी इकाई इतिहास के उपागमों पर आधारित है। इसमें धर्म संबंधी एवं प्राच्यवादी, साम्राज्यवादी एवं राष्ट्रवादी, मार्क्सवादी, उपाश्रयी एवं उत्तर आधुनिकतावादी आदि उपागमों पर प्रकाश डाला गया है।

पांचवीं इकाई इतिहास के वृहत् सिद्धांत पर आधारित है। इसमें इतिहास के चक्रवादी, ऐतिहासिक भौतिकवाद, संरचनात्मक एवं पारिस्थितिकीय आदि सिद्धांतों की व्याख्या की गई है।

टिप्पणी

इस पुस्तक में इतिहास लेखन, अवधारणाएं, प्रविधियां एवं उपकरण को रुचिकर बनाकर लिखा गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

इकाई 1 इतिहास की प्रकृति, क्षेत्र, साक्ष्य, संचरण एवं इतिहासवाद

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 इतिहास : अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र
  1.2.1 इतिहास का अर्थ
  1.2.2 इतिहास की प्रकृति
  1.2.3 इतिहास का क्षेत्र
1.3 तथ्यात्मक सामग्री का संकलन तथा डाटा, साक्ष्य तथा उसका संचरण, करणीयता एवं इतिहासवाद
  1.3.1 तथ्यात्मक सामग्री का संकलन एवं डाटा
  1.3.2 साक्ष्य तथा उसका संचरण
  1.3.3 करणीयता एवं इतिहासवाद
1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.5 सारांश
1.6 मुख्य शब्दावली
1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

इतिहास क्या है? यह प्रश्न देखने में सरल अवश्य प्रतीत होता है, परंतु इसका उत्तर उतना आसान नहीं है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक प्रश्न तो यही रहा मगर देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुरूप इस प्रश्न के उत्तर बदलते रहे। इतिहास को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न तरह से परिभाषित किया है। इतिहास के स्वरूप को लेकर भी विद्वान एक मत नहीं हैं। कोई इतिहास को विज्ञान कहता है तो कोई कला, और कुछ विद्वान इतिहास को कला एवं विज्ञान का समन्वय मानते हैं।

इतिहास एक प्रकार का ज्ञान है। ज्ञान के क्षेत्र में इतिहास एकमात्र ऐसा विषय है जिसका विस्तार क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। इतिहास के विस्तार क्षेत्र में मानव के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक इत्यादि सभी पक्ष समाहित हैं। क्षेत्रगत दृष्टिकोण से स्थानीय इतिहास, प्रांतीय इतिहास, राष्ट्रीय एवं विश्व इतिहास आदि भी इतिहास के विस्तार क्षेत्र ही हैं।

इस इकाई में हम इतिहास की अर्थवत्ता, प्रकृति एवं क्षेत्र पर दृष्टिपात करते हुए तथ्यात्मक सामग्री के संकलन, डाटा, साक्ष्य तथा उसका संचरण, करणीयता एवं इतिहासवाद की विवेचना करेंगे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- इतिहास की अर्थवत्ता, प्रकृति एवं इसके क्षेत्र से अवगत हो पाएंगे;
- तथ्यात्मक सामग्री के संकलन एवं डाटा को समझ पाएंगे;
- साक्ष्य तथा उसके संचरण से परिचित हो पाएंगे;
- करणीयता एवं इतिहासवाद की विवेचना कर पाएंगे।

1.2 इतिहास : अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र

इतिहास का अर्थ, इसकी प्रकृति एवं इसके क्षेत्र को पृथक–पृथक इस प्रकार समझा जा सकता है–

1.2.1 इतिहास का अर्थ

इतिहास के तहत हम गतिशीलता एवं प्रगति दोनों का ही अध्ययन करते हैं। प्रगतिशीलता के स्थान पर गतिशीलता में इतिहास का अर्थ निहित है। मात्र प्रगति यदि इतिहास होती, तो इतिहास में कई ऐसी भी घटनाएं निहित हैं जिनमें कि प्रगति के तत्व दृष्टिगोचर नहीं होते। विश्व परिप्रेक्ष्य में प्रथम विश्वयुद्ध लें या द्वितीय विश्वयुद्ध, भारतीय परिप्रेक्ष्य में तैमूर का आक्रमण लें या नादिरशाह का आक्रमण–इन समस्त घटनाक्रमों में प्रगति का कोई तत्व दृष्टिगोचर नहीं होता, मगर गतिशीलता अवश्य है।

प्रगति करना और प्रगति के पथ पर अग्रसर होना प्रत्येक प्रकृतस्थ मानव की एक प्रमुख इच्छा होती है। इतिहास में निहित अर्थ का प्रश्न बहुत कुछ प्रगति के प्रश्न से संबद्ध है। इस अवधारणा का प्रारंभ 17वीं शताब्दी में हुआ और 18वीं शताब्दी के अंत तक इसके चार घटक प्रतिष्ठित हुए–भौतिक प्रगति, ज्ञान की प्रगति, मस्तिष्क की प्रगति एवं सामाजिक प्रगति। भविष्य में किसी अर्थपूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति के लिए या यूं कहें कि प्रगति के लिए आवश्यक है कि हम वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में अतीत का अध्ययन करें और उचित मार्गदर्शन प्राप्त करें। चूंकि वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में अतीत का अध्ययन ही इतिहास है, अतः स्पष्ट है कि प्रगति के तत्व इतिहास में निहित हैं। ज्ञान की प्रगति से भौतिक प्रगति संबद्ध है। प्रगति की अवधारणा के प्रतिपादक बेकन के अनुसार उक्त तीनों प्रकार की प्रगतियों पर समाज की प्रगति आधारित है।

आदिकालीन मानव अनेक परिवर्तनों, समस्याओं एवं विषमताओं के मध्य प्रगति करता हुआ वर्तमान के वैज्ञानिक युग तक आ पाया है। 19वीं एवं 20वीं सदी में इतिहास की वैज्ञानिक अवधारणा अस्तित्व में आई। परिवर्तन जीवन का शाश्वत नियम है, इसीलिए प्रगति हमें अतीत से पृथक करती है परंतु इतिहास का अध्ययन हमें अतीत से जोड़ता है। जी.डब्ल्यू.एफ. हीगल ने इतिहास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए बताया है कि इतिहास, जगत के प्रति ईश्वर की परियोजना से संगति रखते हुए नैतिक उन्नति की ओर प्रगति करता है, किंतु इस प्रकार की उन्नति मनुष्य के इतिहास के उद्देश्य तथा कार्यविधि की चेतना द्वारा प्राप्त की जाती है। इतिहास स्वयं में वस्तुनिष्ठात्मक एवं विषयपरक दोनों पक्षों को सन्निविष्ट करता है। घटनाएं एवं

घटनाओं का विवरण इन दोनों अर्थों के संबंध को अत्यंत महत्वपूर्ण मानने पर ज़ोर देते हुए हीगेल ने लिखा है, 'हमें यह मानना चाहिए कि इतिहास का विवरण तथा ऐतिहासिक कर्म एवं घटनाएं एक साथ ही घटित होते हैं। एक उभयनिष्ठ आंतरिक सिद्धांत दोनों को साथ लाता है।'

कार्ल पापर ने इतिहास के अर्थ पर प्रश्नचिह्न लगाया। उन्होंने कहा कि इतिहास का कोई लक्ष्य नहीं होता, इस कारण इतिहास का कोई अर्थ भी नहीं होता। हम अपने लक्ष्यों को इस पर आरोपित करते हैं और हम ही इतिहास को अर्थ प्रदान करते हैं। पापर के अनुसार, प्रकृति के समान इतिहास भी हमें यह नहीं बता सकता कि हमें क्या करना चाहिए। यही बात जीवन के अर्थ पर लागू होती है। पापर के उक्त मत के विपरीत विको ने स्पष्ट किया है कि इतिहास का ज्ञान प्रकृति के ज्ञान से भिन्न है, जबकि प्रकृति ईश्वर की रचना है एवं इतिहास का रचयिता मनुष्य है। इतिहास में निहित अर्थ को स्पष्ट करते हुए विको ने बताया है कि इतिहास आत्म प्रकाशनीय है, इसका विशिष्ट अर्थ होता है जिसे किन्हीं बहिर्भूत प्रतिमानों की सहायता के बिना प्रत्यक्ष अध्ययन द्वारा समझा जाना चाहिये। विको की भांति हर्डर एवं डिल्थे ने भी इतिहास को पूर्णतः अर्थपूर्ण माना है। एरिख काल्हर ने भी लिखा है – "पापर द्वारा प्रस्तुत विभिन्न आपत्तियों के बावजूद, मानव इतिहास में एक व्यवस्था का दर्शन होता है और जहां व्यवस्था है, वहां अर्थ का अस्तित्व तो होगा ही।" गार्डनर ने इतिहास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए बताया है कि इतिहासकार अतीत के तथ्यों पर घटनाओं का एक परिकल्पनात्मक चित्र प्रस्तुत करता है जिसमें वर्णित घटनाएं अर्थपूर्ण होती हैं–इसी को इतिहास का अर्थ कहते हैं।

इतिहास ज्ञान का एक ऐसा स्रोत है, जो अपने आप में कई विषयों को समेटे हुए है। इतिहास का सर्वप्रमुख अर्थ यही है कि लोग वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में इससे प्रेरणा लेकर सुखद भविष्य का निर्माण करें। इतिहासकार का दायित्व है कि वह अतीत को अपने मस्तिष्क में सजीव कर इतिहास को एक सार्थक अर्थ प्रदान करे, जिससे कि लोग प्रेरणा ले सकें। वर्तमान को नियंत्रित कर सुखद भविष्य के लिए प्रेरणा प्रदान करना ही इतिहास का मूलभूत अर्थ है।

इतिहास की परिभाषा

किसी भी विषय के मूल तत्व को स्पष्ट करते हुए उसे सहज, सुबोध एवं सरल बनाना ही परिभाषा का मूल उद्देश्य होता है। इतिहास के अर्थ की भांति ही विद्वानों ने इतिहास की विभिन्न परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं। विद्वानों ने इतिहास को एक कहानी, ज्ञान का स्रोत, सत्यान्वेषण की विधा, एवं अतीत को वर्तमान से जोड़ने वाले सेतु के रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया है। इतिहास की एक सर्वमान्य परिभाषा को लेकर विभिन्न विद्वानों में मतैक्य के अभाव को देखते हुए चार्ल्स फर्थ ने उचित ही कहा है कि "इतिहास को परिभाषाबद्ध करना आसान नहीं है।" इतिहास की मुख्य धारा, मुख्य नायक, मुख्य उद्देश्य के बदलाव के साथ परिभाषा भी बदल जाती है। इसी कारण एक सार्वभौमिक एवं सार्वकालीन परिभाषा देना आसान नहीं है।

इतिहास वस्तुतः सत्यान्वेषण है, मगर पूर्वाग्रहों के कारण कतिपय लोग सत्यान्वेषण से भटक जाते हैं। कुरान में स्पष्ट व्यवस्था दी है–"सत्य बोलो चाहे वह तुम्हारे अपने ही विरुद्ध क्यों न हो।" प्राचीन भारतीय इतिहास के इतिहासविद् कल्हण ने भी स्पष्ट

टिप्पणी

लिखा है–"वही गुणवान प्रशंसनीय है, जिसकी वाणी राग–द्वेष का बहिष्कार कर न्यायाधीश के समान भूतकालिक घटनाओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती है।"

एल.पी. शर्मा ने इतिहास को परिभाषाबद्ध करते हुए लिखा है, "इतिहास तो मिश्रित रूप से मानव समाज के जीवन का संकलन, व्यक्ति समूह की परिस्थितियों का अध्ययन, महान व्यक्तियों की आत्मकथा, मानव जीवन के महान कार्यों एवं असाधारण सफलताओं का संकलन, मानवीय विचारों, आदर्शों एवं महत्वाकांक्षाओं द्वारा निर्मित मनुष्य के सामाजिक जीवन का अध्ययन है।"

बर्क हार्ड ने कहा है, "इतिहास उन चीज़ों का आलेख है, जिन्हें एक युग दूसरे युग में से उल्लेखनीय मानकर ग्रहण करता है।"

प्रो. ओकशाट ने लिखा है, "इतिहास, इतिहासकार का अनुभव है–इतिहासकार के अलावा कोई इसका निर्माण नहीं करता और उसका निर्माण करने का एकमात्र रास्ता है इतिहास लेखन"

विभिन्न विद्वानों ने इतिहास को निम्नानुसार परिभाषित किया है–

1. **इतिहास एक कहानी है**– इतिहासकारों का एक वर्ग इतिहास को कहानी बताता है। हेनरी पिरेन के अनुसार, "इतिहास समाज में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों एवं उपलब्धियों की कहानी है।" सर्वश्री रेनियर ने हिस्ट्री शब्द में से हि को अलग करके उसे कहानी के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने इतिहास को सभ्य समाज में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों एवं अनुभवों की कहानी माना था। रेनियर एवं पिरेन की तरह ही ट्रेवेलियन, तुइजिंगा एवं औलिवर आदि ने भी इतिहास को कहानी कहकर ही परिभाषाबद्ध किया है।

   एक समय था जब राजा–रानियों एवं दरबारियों के राजनीतिक इतिहास पर विशेष ज़ोर था। इतिहास की कुछ घटनाएं अपने आप में काफी रोचक होती हैं और वे कहानी के समान ही प्रतीत होती हैं। चूंकि कहानी नायक प्रधान होती है, अतः इसे इतिहास के साथ संबद्ध कर दिया जाता था, परंतु आज जबकि व्यक्ति विशेष पर केंद्रित इतिहास कालातीत हो चुका है, एवं जन सामान्य के सांस्कृतिक इतिहास पर विशेष ज़ोर दिया जा रहा है, ऐसे में इतिहास को कहानी कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता। कहानी में कल्पना के तत्व होते हैं, जिनका इतिहास से कोई सरोकार नहीं है। उसका स्थान साहित्य जगत में ही है, इतिहास जगत में कदापि नहीं। अतः इतिहास को कहानी कह कर हम उसके महत्व को कम नहीं कर सकते।

2. **इतिहास ज्ञान है**– कुछ विद्वानों ने इतिहास को ज्ञान की शाखा माना है। इतिहास को ज्ञान मानकर परिभाषित करने का प्रयास डिल्थे, क्रोचे एवं आर.जी. कालिंगवुड ने भी किया है। क्रोचे ने ऐतिहासिक ज्ञान को मानव ज्ञान का सर्वश्रेष्ठ रूप एवं एक प्रेरक शक्ति माना है।

   इतिहास को कहानी के स्थान पर अथवा ज्ञान का स्रोत मानना अधिक अर्थपूर्ण प्रतीत होता है। इतिहास से सबक लेना आज एक मुहावरा बन चुका है। इस मुहावरे पर अमल करते हुए आज मनुष्य अपनी सभी समस्याओं का समाधान इतिहास में पा सकता है। इतिहास का प्रमुख उद्देश्य ही अतीत की घटनाओं के

उदाहरण द्वारा भविष्य का मार्गदर्शन करना है। मगर यहां हीगेल का यह कथन भी उल्लेखनीय है कि "इतिहास की सबसे बड़ी सीख यही है कि इतिहास से कोई सीख नहीं लेता।" प्रथम विश्व युद्ध के विनाशकारी परिणामों से यदि तत्युगीन देशों एवं उनके कर्णधारों ने सबक लिया होता तो समस्त विश्व को द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका से न गुजरना पड़ता। दूसरी ओर दिल्ली सल्तनत का सुल्तान इल्तुतमिश एक दूरदर्शी व्यक्ति था। वह मंगोलों की बर्बरता के इतिहास से परिचित था। इसीलिए उसने मंगोल शासक चंगेज खां के विरोधी ख्वारिज्म के राजकुमार जलालुद्दीन मांगबर्नी को शरण देने से इंकार कर दिया। इस प्रकार उसने इतिहास से सीख लेकर दिल्ली सल्तनत की मंगोल शासक चंगेज खां के प्रकोप से रक्षा की, जो कि उस समय शैशवावस्था में था।

अतः निश्चित रूप से इतिहास ज्ञान भी है और ज्ञान का प्रमुख स्रोत भी। इसीलिए हमें चाहिए कि हम हर कदम इससे शिक्षा एवं मार्गदर्शन लेकर अपने वर्तमान को सुधारें व एक सुखद भविष्य का निर्माण करें।

3. **इतिहास सामाजिक विज्ञान है**– कार्ल मार्क्स ने सर्वप्रथम मानवीय अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग कर इतिहास को सामाजिक विज्ञान के साथ जोड़ा। विल्हेम डिल्थे वह प्रथम व्यक्ति था जिसने इतिहास को वास्तव में सामाजिक विज्ञान बनाने का प्रयास किया। प्रो. ए.एल. राउज के अनुसार, "इतिहास मुख्यतः मानव का उसके भौगोलिक एवं भौतिक पर्यावरणों का लेखा–जोखा है। उसकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियां एक–दूसरे की अन्तःक्रिया से शुरू हुई हैं।' वस्तुतः इतिहास न केवल सामाजिक विज्ञान है, अपितु सामाजिक विज्ञान के तहत आने वाले विषयों में सर्वप्रमुख विषय इतिहास ही है।

4. **संपूर्ण इतिहास विचारों का इतिहास है**– विचार वह प्रेरक शक्ति है जो व्यक्ति को कार्य करने के लिए बाध्य करता है। चाहे सम्राट अशोक हो या अकबर, नेपोलियन बोनापार्ट हो या हिटलर, पहले इनके मस्तिष्क में विचार आए होंगे जिन्हें उन्होंने कार्य रूप में परिणित किया, और घटनाएं घटित हुईं और वही घटनाएं इतिहास बनीं। यह सच ही है कि मानव नहीं बल्कि उसका मस्तिष्क इतिहास गढ़ता है। मानव के कार्यों का मूल स्रोत विचार ही है। अतः यदि हम किसी भी ऐतिहासिक चरित्र के विचारों का अध्ययन कर लें तो उसके द्वारा किए गए कार्यों को आसानी से समझ सकते हैं क्योंकि कार्य विचारों से ही नियंत्रित होते हैं। इस तारतम्य में आर.जी. कालिंगवुड का यह कथन सत्य ही प्रतीत होता है कि 'सम्पूर्ण इतिहास विचारों का इतिहास होता है।'

5. **संपूर्ण इतिहास समसामयिक इतिहास होता है**– प्रसिद्ध इटैलियन इतिहासकार बेनदेत्तो क्रोचे ने संपूर्ण इतिहास को समसामयिक इतिहास कहा है। उनके कथन का तात्पर्य है कि इतिहास लेखन मूलतः वर्तमान की आंखों से आधुनिक समस्याओं की पृष्ठभूमि में अतीत को प्रस्तुत करता है, परंतु वर्तमान में समसामयिक इतिहास वर्तमानकालिक इतिहास को कहा जाता है। समसामयिक इतिहास का आरंभ उस समय से माना जाता है, जहां से कि वर्तमान के घटनाक्रम के सूत्र प्रारंभ होते हैं।

6. **इतिहास वर्तमान तथा अतीत के बीच अनवरत परिसंवाद है**—एक इतिहासकार अतीत के तथ्यों के आधार पर इतिहास लिखता है। तथ्य यदि अतीत का प्रतिनिधित्व करता है तो इतिहासकार वर्तमान का। इस परिप्रेक्ष्य में इतिहासविद् ई.एच. कार ने इतिहास को परिभाषाबद्ध करते हुए उचित ही लिखा है कि "इतिहास, इतिहासकार और उसके तथ्यों की क्रिया प्रतिक्रिया की एक अविच्छिन्न प्रक्रिया है तथा अतीत से वर्तमान के बीच एक अनवरत परिसंवाद है।"

1.2.2 इतिहास की प्रकृति

परिवर्तन जीवन का शाश्वत नियम है। वर्तमान दौर में राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियां अत्यंत तेज़ी के साथ परिवर्तित हो रही हैं, ऐसे में यह भी एक विचारणीय प्रश्न है कि इतिहास का स्वरूप क्या होना चाहिए। 19वीं सदी में इतिहास की वैज्ञानिक अवधारणा अस्तित्व में आई। तभी से मानवीय कार्य एवं व्यवहार का सांगोपांग अध्ययन करने के लिए ठीक वही पद्धति अपनाई जाने लगी जिसका उपयोग विज्ञान प्रकृति में अंतर्निहित गूढ़ रहस्यों को जानने के लिए करता है।

आज मुख्य विचारणीय प्रश्न यह है कि इतिहास लेखन में वैज्ञानिक प्रविधि का उपयोग करना चाहिए अथवा कला का समावेश। इतिहास विज्ञान है अथवा कला? दीर्घ काल से ही विद्वानों के बीच इतिहास का स्वरूप मुख्य विवाद का मुद्दा रहा है कि इतिहास कला है अथवा विज्ञान।

इतिहास विज्ञान है?

विद्वानों के एक वर्ग ने इतिहास के स्वरूप को निर्धारित करते हुए उसे विज्ञान माना है। विज्ञान पर्यवेक्षण और प्रयोग पर ज़ोर देता है तथा यह किसी भी चीज का क्रमबद्ध अध्ययन करता है। ठीक इसी तरह इतिहास भी सभी उपलब्ध साक्ष्यों का परीक्षण करता है, और क्रमबद्धता तो इतिहास में है ही। इस दृष्टिकोण से इतिहास को विज्ञान माना जा सकता है। प्रो. सीले तो स्पष्ट रूप से कहते हैं कि, "इतिहास विज्ञान है साहित्य से इसका कोई सरोकार नहीं है।" स्पेंगलर के अनुसार, "जिस तरह जीव विज्ञान प्राणियों को निश्चित चरणों से गुजरते देखता है ठीक उसी तरह इतिहासकार भी सभ्यता–संस्कृति को निश्चित चरणों से गुजरते देखता है।"

उपर्युक्त समानताओं के साथ–साथ इतिहास और विज्ञान में अंतर भी है। इतिहास घटनाओं का वर्णन करता है, किंतु विज्ञान वर्णन के स्थान पर, सिद्धांतों को मानकर निगमन करता है। इतिहासकार वस्तुतः घटनाओं का सामान्यीकरण करता है कि कोई घटना कैसे घटी, क्यों घटी एवं कब घटी। वह तत्संबंधी कोई नियम प्रतिपादित नहीं करता। एक और अंतर यह भी है कि उपलब्ध उन्नत प्रौद्योगिकी एवं विकसित तकनीक से विज्ञान मौसम आदि की भविष्यवाणी नहीं। विवादग्रस्त विषयों का संतोषजनक समाधान ढूंढ़ने के लिए वैज्ञानिकों की अपनी विधियां हैं। परंतु इतिहास संबंधी समस्याओं के समाधान हेतु किन्हीं निश्चित नियमों का निर्धारण अभी तक नहीं किया जा सका है। अतः उपर्युक्त सभी तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि इतिहास विज्ञान नहीं है। ब्ल्यूक ने भी इतिहास को विज्ञान मानने से सर्वथा इंकार किया है।

इतिहास के वैज्ञानिक स्वरूप को लेकर जब प्रो. सीले एवं ब्ल्यूक में चरम मतभेद हों तो मध्यम मार्ग ही उचित जान पड़ता है, और मध्यम मार्ग यह है कि हम इतिहास को सीमित अर्थों में ही विज्ञान मानें। स्रोतों की जाँच, उनकी व्याख्या, वस्तुनिष्ठता के क्षेत्र में इतिहासकार वैज्ञानिक प्रविधि को अपनाकर यथार्थ को प्रस्तुत कर सकता है, लेकिन इतिहासकार अपने निर्णयों या परिकल्पना की प्रयोगशाला में जांच नहीं कर सकता। अतः इतिहास को सीमित अर्थों में ही विज्ञान माना जा सकता है। इस तारतम्य में कालिंगवुड भी मानते हैं कि, "इतिहास एक विशेष प्रकार का विज्ञान है। यह घटनाओं का अध्ययन करता है जिसका पर्यवेक्षण संभव नहीं है। इन घटनाओं का अध्ययन अनुमान द्वारा किया जाता है, जो कुछ साक्ष्यों पर आधारित है।"

इतिहास कला है?

विद्वानों का एक वर्ग ऐसा भी है जो इतिहास को कला मानता है।

इतिहास को कला अथवा साहित्य की शाखा स्वीकार किया जाए अथवा नहीं इस बात को लेकर दो परस्पर विरोधी अवधारणाएं प्रचलित हैं। इनका सूक्ष्म विवेचन आवश्यक है।

वैज्ञानिक प्रविधि से परिष्कृत होने के बावजूद भी अनेक इतिहासकार इतिहास को कला अथवा साहित्य की शाखा मानते हैं। इस तारतम्य में जी.आर. एल्टन का अभिमत है कि, "इतिहास लेखन को वैज्ञानिक विधियों से परिष्कृत करने के बावजूद उसके प्रस्तुतिकरण व्याख्या में कलात्मक शैली की नितांत आवश्यकता होती है।" वस्तुतः इतिहासकार जो कुछ भी लिखता है, दूसरों के लिए लिखता है। अतः गोविन्द चंद्र पांडे के अनुसार, "इतिहास में यथार्थता के साथ–साथ विवरण संबंधी कुशलता, रोचकता, दृष्टांतों का चयन तथा चरित्र चित्रण की विशेषताओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस गंभीर अर्थ में इतिहास निश्चित तौर पर कला है।"

ऐतिहासिक तथ्य प्रायः नीरस तथा निर्जीव होते हैं। परंतु इतिहासकार अपनी कलात्मक तथा रोचक–लेखन शैली द्वारा इन नीरस एवं निर्जीव ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर सजीव एवं रोचक इतिहास उपलब्ध कराता है। वस्तुतः अपने द्वारा अर्जित ज्ञान में आम जनता की भागीदारी इतिहासकार का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। निर्जीव तथ्यों को वैज्ञानिक प्रविधि से परिष्कृत कर यथावत रख देने से इतिहास, न केवल नीरस एवं दुरुह बन जाएगा अपितु उसका अध्ययन कोई पसंद नहीं करेगा। अतः आवश्यकता इस बात की है कि नीरस एवं निर्जीव ऐतिहासिक तथ्यों को कला के आवरण में रखकर सजीव, पठनीय एवं रोचक बनाया जाए, मगर इतिहास की सीमा में रहकर।

इतिहास के नीरस एवं निर्जीव तथ्यों को इतिहास के दायरे में रहकर ही कला का आवरण पहनाना चाहिए अन्यथा यह इतिहास नहीं रहेगा। कला के आवरण में रहते हुए भी विज्ञान की विधियों से परिष्कृत इतिहास को ही आधुनिक इतिहासकारों ने मान्यता प्रदान की है। यही कारण है कि मैकाले तथा कारलायल को सफल इतिहासकार नहीं स्वीकार किया जाता, क्योंकि उनकी रचनाओं में कलात्मक शैली तो है, मगर वैज्ञानिक विधियों का सर्वत्र अभाव दिखाई देता है।

अतः इतिहास में कला का समावेश उसी सीमा तक रहना चाहिए कि इतिहास की सीमाओं का अतिक्रमण न हो। अत्यधिक कला का समावेश इतिहास के अस्तित्व

टिप्पणी

को मिटा सकता है। यथार्थता के अभाव में इतिहास निश्चित रूप से अपना अस्तित्व खोकर कल्पना तथा भाव प्रधान साहित्य बन जाएगा।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि इतिहास के स्वरूप में कला एवं विज्ञान दोनों का सम्मिश्रण होना चाहिए, ताकि निर्जीव एवं नीरस ऐतिहासिक तथ्यों को वैज्ञानिक प्रविधि से परिष्कृत कर कलात्मक ढंग से लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया जा सके। जी.एम. ट्रेबेलियन ने भी इतिहास को कला एवं विज्ञान दोनों मानते हुए कहा है, "ऐतिहासिक तथ्यों की खोज प्रणाली वैज्ञानिक होनी चाहिए, किंतु पाठकों के सामने उसे कला की सहायता से प्रस्तुत करना चाहिए।

1.2.3 इतिहास का क्षेत्र

ज्ञान के क्षेत्र में इतिहास एकमात्र ऐसा विषय है जिसका विस्तार क्षेत्र काफी व्यापक है। इतिहास का संबंध मानव से है और इतिहास में मानव के उद्‌भव, विकास, क्रियाकलापों एवं उसकी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। इतिहास के विस्तार क्षेत्र में मानव के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक आदि सभी पक्ष सम्मिलित हैं। क्षेत्रगत दृष्टिकोण से स्थानीय इतिहास, प्रांतीय इतिहास, राष्ट्रीय इतिहास एवं विश्व का इतिहास भी इतिहास का ही विस्तार क्षेत्र है। मेटलैंड के अनुसार, "मानव ने जो कुछ किया और कहा और इससे भी उसने जो कुछ सोचा, वह सब इतिहास है।"

इतिहास के विस्तार क्षेत्र को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है;

राजनीतिक इतिहास

राजनीतिक इतिहास के अंतर्गत मानव की राजनीतिक गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है। राजनीतिक इतिहास लिखने की कला प्राचीन काल से ही रही है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र जो एक राजनीतिक ग्रंथ है, राजनीतिक इतिहास का सबसे अच्छा उदाहरण है। प्राचीन तथा आधुनिक इतिहास में हमें सभा, समिति, विद्‌थ, संसद एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठन आदि संस्थाएं देखने को मिलती हैं। अरस्तू ने अपने ग्रंथ 'रिपब्लिक' में भी राजनैतिक क्रिया–कलापों को विशेष महत्व दिया है। राजनीतिक इतिहास में एक ओर जहां विभिन्न महापुरुषों के जीवन–दर्शनों एवं क्रिया–कलापों का अध्ययन करते हैं, वहीं दूसरी ओर विभिन्न राजवंशों के उत्थान एवं पतन का भी अध्ययन करते हैं। एक ओर जहां विश्व के परिप्रेक्ष्य में मैकियावली, अरस्तू, सिकन्दर, रूसो, नेपोलियन, हिटलर, आदि ने राजनीतिक इतिहास को गति, अर्थ तथा दिशा प्रदान की है, वहीं दूसरी ओर अकबर, अशोक, चाणक्य, समुद्रगुप्त, महात्मा गांधी आदि ने भारत के राजनीतिक इतिहास को भी गति, अर्थ एवं दिशा प्रदान की है। राजनीतिक संस्थाएं समाज की वह रंगमंच हैं। जहां महापुरुषों के कार्यों का प्रदर्शन किया जाता है। सामाजिक जीवन में राजनीतिक पहलुओं का बड़ा महत्व है। इतिहासकार ए.एल. राउस ने लिखा है कि "इतिहास में राजनीतिक इतिहास को रीड़ माना जाता है।"

वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो राजनीतिक इतिहास का औचित्य कम ही समझ में आता है। आज सामाजिक तथा आर्थिक पहलुओं पर बल दिया जा रहा है। विभिन्न साम्राज्यों के उत्थान, पतन, विभिन्न क्रांतियों एवं विभिन्न महापुरुषों के उत्थान

में जन–साधारण की भी महती भूमिका होती है। 1857 की क्रांति में भाग लेने वाले सैनिकों तथा जन–साधारण की भूमिका एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान 78 अनुयायियों की भूमिका को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। 1911 ई. की चीनी क्रांति में डॉ. सनयात सेन के साथ–साथ उनके समर्थकों की भूमिका की अनदेखी नहीं की जा सकती है। राहुल सांकृत्यायन 1839 ई. में बिहार के आमवारी सत्याग्रह के प्रणेता थे एवं उन्होंने असहयोग आंदोलन में भी महती भूमिका निभाई। यह सत्य है कि आज के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो सामाजिक, आर्थिक तथा जनसामान्य के इतिहास का काफी महत्व बढ़ रहा है। परंतु राजनीतिक इतिहास को नकारा नहीं जा सकता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि जन–सामान्य की भूमिका एवं समाज की सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में राजनीतिक इतिहास का सृजन हो।

सांस्कृतिक इतिहास

सामाजिक रीति–रिवाज़, संस्कार, शिक्षा, साहित्य, वास्तुकला, संगीत एवं आमोद–प्रमोद के साधन आदि का अध्ययन सांस्कृतिक इतिहास के अंतर्गत किया जाता है। प्रसिद्ध संस्कृतिविद ए.एल. वाशम की कृति 'दा वंडर दैट वाज इंडिया (1951)', डी.डी. कोशाम्बी की पुस्तक *'एन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री* (1957)' ने सांस्कृतिक इतिहास को प्रमुखता देकर भारतीय इतिहास को एक नवीन आयाम दिया। आज अधिकांश इतिहासकार सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं के परिप्रेक्ष्य में सांस्कृतिक इतिहास पर विशेष ज़ोर देते हुए उनका संबंध राजनीतिक गतिविधियों से जोड़ने का सराहनीय प्रयास करते हैं। भारत की वृहत् सांस्कृतिक विरासत को प्राचीन, मध्ययुगीन, एवं आधुनिक भारत के सांस्कृतिक इतिहास में स्वीकार कर लिया गया है, जिनमें मजूमदार, रायचौधरी, चौपड़ा, पुरी आदि इतिहासकारों का महत्वपूर्ण योगदान है। मजूमदार ने अपनी कृति भारत का वृहत् इतिहास खंड 1,2,3 में भारत के सांस्कृतिक इतिहास को समेटा है।

इतिहास के विस्तार क्षेत्र को देखते हुए इतिहासकारों ने सांस्कृतिक इतिहास को काल विशेष एवं सम्राट विशेष के काल की संस्कृति एवं विविध पक्षों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है। रोमिला थापर कृत *'अशोक एण्ड द डिक्लाइन आफ मौर्य'*; *राधाकुमुद मुखर्जी* कृत *'चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल'*; *राहुल सांकृत्यायन* कृत *'ऋग्वैदिक आर्य'* रामानंद चटर्जी कृत *'राममोहन राय एण्ड माडर्न इण्डिया'*; ए.आर. देसाई कृत *'सोशल बैकग्राउण्ड आफ इण्डियन नेशनलिज्म'* कपिल कुमार कृत *'पीजेण्ट्स इन रिवोल्ट'* ए.आर. देसाई कृत *'पीजेण्टस स्ट्रगल इन इण्डिया'* आर.सी. दत्त कृत *'द इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया'* आदि कृतियां राजनीतिक इतिहास से सांस्कृतिक इतिहास की ओर एक प्रमुख रुझान प्रस्तुत करती हैं। इस दृष्टि से रामधारी सिंह दिनकर कृत *'संस्कृति के चार अध्याय'* भी एक महत्वपूर्ण कृति है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि आधुनिक युग के इतिहासकारों का रुझान सांस्कृतिक इतिहास की ओर बढ़ता जा रहा है। सांस्कृतिक इतिहास को भी अब विषय की महत्ता को देखते हुए सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक इतिहास में बांट दिया गया है।

सामाजिक इतिहास

सामाजिक इतिहास, इतिहास की एक महत्वपूर्ण शाखा है, जिसका विस्तार क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। सामाजिक इतिहास के अंतर्गत मानव का कार्यव्यवहार, पारिवारिक

जीवन, साहित्य, रीति–रिवाज, परंपराएं, रहन–सहन, आमोद–प्रमोद के साधन, संगीत, वास्तुकला, चित्रकला इत्यादि सभी कुछ आता है। वर्तमान सामाजिक समस्याओं को समझने की वास्तविक कुंजी सामाजिक इतिहास ही है। इसीलिए बीसवीं सदी के अधिकांश इतिहासकारों का ध्यान सामाजिक इतिहास लेखन की ओर आकृष्ट हुआ। टायन्वी के अनुसार, "इतिहास का निर्माण सामाजिक अणुतत्वों से हुआ है।" सामाजिक इतिहास को सर्वाधिक लोकप्रिय बनाने का श्रेय जी.एम. ट्रेवेलियन को जाता है। उन्होंने *'सोशल हिस्ट्री आफ इग्लैण्ड'* एवं *'रिक्रिएशन आफ इन हिस्ट्री'* जैसी कृतियों के माध्यम से सामाजिक इतिहास का सृजन किया। ट्रेवेलियन के अनुसार, सामाजिक इतिहास के दायरे में अतीत में मनुष्य का दैनिक जीवन, विभिन्न वर्गों का पारस्परिक आर्थिक संबंध, परिवार का स्वरूप, गृहस्थ जीवन, श्रमिकों की दशा, प्रकृति के प्रति मानवीय दृष्टिकोण, सांस्कृतिक जीवन तथा सामान्य परिस्थितियों से उत्पन्न धर्म, साहित्य, संगीत, वास्तुकला, शिक्षा तथा सहित्य इत्यादि आते हैं। इतिहास का विकास राजनेताओं एवं साम्राज्यों से नहीं अपितु विभिन्न युगीन समाजों से हुआ है। अतः इतिहास की सर्वप्रमुख आधारशिला समाज ही है। इसीलिए ट्रेवेलियन महादेव ने उचित ही कहा था कि सामाजिक इतिहास के अभाव में आर्थिक इतिहास मरुस्थल तथा राजनीतिक इतिहास अवर्णनीय है, क्योंकि आर्थिक इतिहास में भी हम समाज की आर्थिक स्थिति की ही विवेचना करते हैं एवं समस्त राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना समाज के लिए ही की जाती है।

सामाजिक इतिहास लेखन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। भारतीय समाज विभिन्न जातियों एवं जनजातियों का समूह है जिनकी अपनी–अपनी समस्याएं तथा अपना–अपना पृथक इतिहास है। सामाजिक इतिहास लेखन में सांप्रदायिकता आज एक समस्या बनी हुई है। भारतीय इतिहास को हिंदू, मुसलिम तथा ब्रिटिश युगों में विभाजित कर जेम्स मिल ने भारत के सामाजिक इतिहास को सांप्रदायिक आवरण में लपेटने का प्रयास किया है। सुमित सरकार ने अपनी कृति *'सामाजिक इतिहास लेखन की चुनौती'* में सामाजिक इतिहास लेखन की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। राहुल सांकृत्यायन ने अपनी कृति *'मानव समाज'* में मानव की उत्पत्ति एवं विकास को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा है। उन्होंने अपनी कृति में आदि मानव के आदिम साम्यवाद से आधुनिक साम्यवाद तक के सफर को रेखांकित किया है। *कृष्णकांत मिश्र* ने तीन भागों में समाजवादी चिंतन का इतिहास लिखा है। इसमें आधुनिक समाज की प्रमुख देन समाजवादी चिंतन को व्यापक परिप्रेक्ष्य में रेखांकित किया गया है।

सर्वप्रथम जर्मन विद्वानों ने जिनमें से रीथ एवं फ्रेटेग ने सामाजिक इतिहास की ओर ध्यान दिया है और जर्मनी के सामाजिक इतिहास के बारे में लिखा है। इंग्लैण्ड में ट्रेल एवं मेन ने सोशल इग्लैण्ड की रचना की। फ्रांस में रेम्वोड ने फ्रांस की सभ्यता का सर्वेक्षण किया। अमेरिका में मैक मास्टर ने अमेरिका के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डाला है। भारतीय संदर्भ में भी आधुनिक युग के अनेक इतिहासकारों ने क्रमशः प्राचीन मध्यकालीन एवं आधुनिक भारत के सामाजिक इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। रोमिला थापर कृत *'प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास'*, रामशरण कृत *'प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं'*, रविन्द्र कुमार कृत *'आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास'* के नाम समाजिक इतिहास लेखन की दिशा

में उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि सामाजिक इतिहास लेखन की ओर इतिहासकारों की रुचि बढ़ रही है। सामाजिक इतिहास के महत्व को रेनियर के इस कथन से भी समझा जा सकता है– "सामाजिक इतिहास आर्थिक इतिहास की पृष्ठभूमि एवं राजनीतिक इतिहास की कसौटी है।"

आर्थिक इतिहास

19वीं शताब्दी को आर्थिक इतिहास के विकास का युग माना जाता है। जी.एम. क्लार्क के अनुसार, *"आधुनिक युग में आर्थिक इतिहास ने इतिहास के विस्तार क्षेत्र के अंतर्गत एक उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है।"* आर्थिक इतिहास के अंतर्गत समाज की आर्थिक आवश्यकताओं से संबंधित समस्त बातें आती हैं। आर्थिक परिस्थितियां समस्त मानवीय कार्य व्यवहार को प्रभावित करती हैं, यहां तक कि राज्य, समाज एवं संस्कृति के उत्थान–पतन में भी कहीं न कहीं आर्थिक परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

वर्तमान में आर्थिक इतिहास लेखन पर विशेष जोर दिया जा रहा है। एडम स्मिथ ने *'द वेल्थ आफ नेशन'* जैसी आर्थिक कृति के माध्यम से फ्रांस के तुर्जो एवं नेकर आदि अर्थशास्त्रियों को प्रभावित किया। आर्थिक इतिहास के विकास में जर्मनी प्रोफेसर हिरेन का भी उल्लेखनीय योगदान था। विभिन्न व्यापारिक विवादों के फलस्वरूप जर्मनी में ऐतिहासिक अर्थशास्त्रियों का एक संप्रदाय स्थापित हो गया। आर्थिक इतिहास के विकास एवं लेखन में औद्योगिक क्रांति की भी अहम भूमिका थी। अब आर्थिक इतिहास में और अधिक रुचि ली जाने लगी। आर्थिक इतिहास को महत्वपूर्ण बनाने में रोजर्स, ऐशले, कोम्टे, वकर्ले एवं कार्ल मार्क्स की सर्व महत्वपूर्ण एवं उपयोगी भूमिका थी। कार्ल मार्क्स द्वारा की गई आर्थिक इतिहास की व्याख्या ने समस्त विश्व का ध्यान आर्थिक इतिहास की ओर खींचा है। जर्मन ऐतिहासिक अर्थशास्त्रियों के संप्रदाय ने आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के संबंधों पर प्रकाश डाला है।

सर्वप्रथम आर्थिक इतिहास लेखन की पहल एलीन पावर तथा आर.एच. टानी ने की है। औद्योगिक क्रांति एवं रूसी क्रांति के पश्चात तो आर्थिक इतिहास के महत्व की ओर लोगों का ध्यान सर्वाधिक आकर्षित हुआ और आर्थिक इतिहास लेखन के द्रुत गति से प्रयास आरंभ हुए। भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी अनेकानेक विद्वानों ने आर्थिक इतिहास लेखन की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए। प्राचीन भारत के आर्थिक इतिहास लेखन की दिशा में डी.एन. झा की कृति इकॉनोमी एंड सोसाइटी इन अर्ली इंडियाः इशूज एंड पैराडियमज, 1993 एस के गैती कृत *'इकॉनोमिक लाइफ इन नॉरदर्न इंडिया इन दा गुप्ता पीरियड 300 ए.डी.'* (1970), इत्यादि ने सराहनीय प्रयास किए।

मध्यकालीन भारत के आर्थिक इतिहास लेखन में राय चौधरी, तपन एवं इरफान हबीब द्वारा संपादित *'कॉम्बराइड इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया वौल्यूम–9'* 1200–1750, 1984 एवं शीरीन मूसवी कृत *'इकॉनोमी ऑफ दा मुगल एंपायरः ए सटैटिस्टीकल स्टडी 1987'* की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित होकर अनेक भारतीय इतिहास लेखकों ने आधुनिक भारत के आर्थिक इतिहास पर भी बहुत कुछ लिखा है। इस दृष्टि से रजनी पामदत्त कृत *'आज का भारत'* एक महत्वपूर्ण कृति है। इनके अलावा सी.आर. दत्त की कृति *'इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया इन द विक्टोरियन ऐज'*, 1903, दादा भाई

नौरोजी कृत *'पावर्टी एंड अन–ब्रिटिश रूल इन इंडिया'*, 1901 एम.जी. रानाडे कृत *'ऐसेज ऑन इंडियन इकॉनोमिक्स'*, विपिन चंद्र कृत *'राइज़ एंड ग्रोथ ऑफ इकॉनोमिक नेशनलिज्म इन इंडिया'* 1880–1905, 1966 सब्य साची भट्टाचार्य एवं गिरीश मिश्र कृत *'आधुनिक भारत का इतिहास'* इत्यादि अनेकानेक कृतियों का सृजन किया गया है। वर्तमान में वैश्विक अर्थव्यवस्था के अस्तित्व में आने से आर्थिक इतिहास लेखन एवं अध्ययन के प्रति लोगों का रुझान स्पष्टतः देखा जा सकता है। यह वर्तमान युग में आर्थिक इतिहास के महत्व को रेखांकित करता है।

धार्मिक इतिहास

धर्म मानव समाज की प्राण वायु है। मानव समाज को नैतिक रूप से संयमित एवं नियंत्रित करने में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका है। मानव समाज की धर्मसम्मत जिज्ञासाओं की पूर्ति के लिए धार्मिक इतिहास की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए इतिहासकारों का एक वर्ग धार्मिक इतिहास लेखन की ओर अग्रसर हुआ। आरंभ से लेकर अब तक होने वाले धार्मिक क्रिया–कलाप धार्मिक इतिहास के अंतर्गत आते है। भारत ने धर्म और धार्मिक इतिहास की दिशा में आरंभिक काल से ही समस्त विश्व का आध्यात्मिक नेतृत्व किया है।

प्राचीन भारतीय धार्मिक साहित्य में वेद, पुराण, ब्राह्मण ग्रंथ, श्रीमद्भागवद् गीता की धार्मिक इतिहास की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। श्रीमद्भागवद् गीता की तो सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि आज भी मानव जाति अपनी समस्त समस्याओं का समाधान इसमें खोज सकती है। वैदिक धर्म के पतन के काल में उसके पुनरोद्धारक श्री शंकराचार्य ने गीता पर भाष्य लिखकर उसमें निहित तत्वज्ञान को सुस्पष्ट किया है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में कई विद्वानों द्वारा बौद्ध धर्म, जैन धर्म, ईसाई धर्म, तथा इसलाम धर्म का इतिहास लिखा गया। यूरोपीय परिप्रेक्ष्य में पुनर्जागरण तथा धर्म सुधार काल धार्मिक इतिहास लेखन की दृष्टि से स्वर्णकाल माना जाता है। इस दिशा में कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेंट मतावलंबी इतिहासकारों ने धार्मिक इतिहास का सृजन किया। प्राचीन भारतीय संदर्भ में छठी शताब्दी ई.पू. के धार्मिक आंदोलन मध्य युग में भक्ति आंदोलन एवं सूफीवादी आंदोलन एवं आधुनिक युग में 19वीं शताब्दी के धार्मिक आंदोलन धार्मिक इतिहास लेखन के प्रमुख केंद्र रहे हैं। इस दृष्टिकोण से गोविंद चंद्र पांडेय कृत *'बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास 1990'*, आचार्य नरेंद्र देव कृत *'बौद्ध धर्म दर्शन'*, राहुल सांकृत्यायन कृत *'बौद्ध दर्शन'*, कुआंग चाऊ सियांग कृत *'चीनी बौद्ध धर्म का इतिहास'*, यू.डी. बरोडिया कृत *'हिस्ट्री एंड लिटरेचर जैनिज्म'*, राहुल सांकृत्यायन कृत *'इसलाम धर्म का इतिहास'*, तारा चन्द कृत *'द इन्फ्लूएन्स ऑफ इसलाम ऑन इंडियन क्लचर'*, एम.जी. रानाडे कृत *'रिलिजस एंड सोशल रिफार्म'* आदि विभिन्न कृतियों का धार्मिक इतिहास लेखन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान है।

मानव समाज के सर्वांगीण विकास हेतु धार्मिक इतिहास की महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः समाज की नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए धार्मिक इतिहास की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता सदैव बनी रहेगी।

संवैधानिक इतिहास

राजतंत्र राज्यों की समाप्ति के पश्चात लोकतंत्र राज्यों का उदय हुआ। इन राज्यों का शासन चलाने के लिए नियमों को एक सूत्र में बांधा गया। भारत के संदर्भ में देखा जाए तो संवैधानिक सुधार आंदोलन तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास एक–दूसरे के पूरक हैं।

'मनुस्मृति' को तो संसार का सबसे पहला संविधान होने का श्रेय प्राप्त है। नेपोलियन कोड, इंडियन पेनल कोड ऐसे कोड हैं जिनको इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। आज विभिन्न देशों के राजनीतिक इतिहास के साथ–साथ संवैधानिक इतिहास भी लिखा जाने लगा है। इंग्लैंड, फ्रांस, अमेरिका तथा भारत का संवैधानिक इतिहास जहां एक ओर रोचक है, वहीं दूसरी ओर प्रेरणादायक भी है। भारत में संवैधानिक सुधार का कार्यक्रम 1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट से प्रारंभ हुआ जो आज भी विभिन्न संविधान संशोधनों के माध्यम से जारी है। आज मनुष्य अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गया है। अधिकारों के बोध एवं कर्तव्यों के दायित्वों को समझने के लिए अब उसकी रुचि संवैधानिक इतिहास की ओर बढ़ रही है। समाज की इस रुचि को देखते हुए कई विद्वानों ने संवैधानिक इतिहास लेखन में विशेष रुचि दिखाई है।

विचारों का इतिहास

आर.जी. कालिंगवुड ने समस्त इतिहास को विचारों का इतिहास कहा है। चूंकि सर्वप्रथम मानव के मस्तिष्क में विचार आता है, विचारों के अनुरूप ही मानव कार्य सम्पन्न करता है, उसी कार्य के अनुसार घटनाएं घटित होती हैं, एवं यही घटनाएं इतिहास बनती हैं। इतिहास में विचारों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। विश्व प्रसिद्ध 1789 की फ्रांसीसी क्रांति का एक प्रमुख कारण था – फ्रांसीसी दार्शनिकों रूसो, माण्टेस्क्यू, वाल्टेयर एवं दिदरो आदि दार्शनिकों के क्रांतिकारी विचार जिन्होंने कि क्रांति हेतु लोगों को उत्तेजित किया।

मानव मस्तिष्क में विचार आस–पास की परिस्थितियां निर्मित करते हैं। अतः विचार के अध्ययन से पूर्व उन परिस्थितियों को समझना भी आवश्यक है जिनके निमित्त घटना घटित हुई। विचार वह प्रेरक शक्ति है जो कि मानव को कार्य करने को प्रेरित, प्रोत्साहित एवं बाध्य करती है। इस प्रकार विचारों का इतिहास, इतिहास को समझने का एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

स्थानीय इतिहास

स्थानीय एवं क्षेत्रीय इतिहास के मुख्यधारा में जुड़ने पर ही राष्ट्रीय इतिहास निर्मित होता है। राष्ट्रीय इतिहास के निर्माण में स्थानीय इतिहास की विशिष्ट भूमिका है। इससे राष्ट्रीय इतिहास को वृहत् परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है। राष्ट्रीय इतिहास की कई विलुप्त कड़ियां स्थानीय इतिहास द्वारा आसानी के साथ जोड़ी जा सकती हैं। स्थानीय इतिहास के महत्व को रेखांकित करते हुए ई.एल. हस्कल ने उचित ही लिखा है–कि इतिहास के अध्ययन के तहत स्थानीय इतिहास के कुछ पाठों का समावेश अवश्य होना चाहिए, जिससे हम उस स्थान विशेष की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकें। यदि हमारा कस्बा, गांव या नगर किसी विशिष्ट ऐतिहासिक स्मारकों अथवा वस्तुओं के लिये प्रसिद्ध

है तो हमें उसकी सांगोपांग जानकारी होनी ही चाहिए। हमारे आस–पास के क्षेत्र में घटित घटनाएं यदि राष्ट्रीय महत्व की हैं तो राष्ट्रीय इतिहास का तारतम्य उनसे स्थापित किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय इतिहास के विकास में स्थानीय इतिहास की विशिष्ट भूमिका होती है।

क्षेत्रीय इतिहास

वर्तमान समय में क्षेत्रीय इतिहास लेखन पर अत्यधिक ज़ोर दिया जा रहा है। राष्ट्रीय इतिहास की कई विलुप्त कड़ियों की खोज क्षेत्रीय इतिहास में की जा सकती है। भारत कई विभिन्न प्रांतों में विभाजित है। भारत के विभिन्न प्रांतों की संस्कृति, वेश–भूषा एवं भाषा पृथक–पृथक है। राष्ट्रीय इतिहास लेखन में हम क्षेत्रीय इतिहास एवं संस्कृति के साथ न्याय नहीं कर पाते। इसीलिए क्षेत्रीय इतिहास लेखन पर बल दिया जा रहा है। क्षेत्रीय इतिहास लिखकर ही हम प्रत्येक क्षेत्र की संस्कृति, रीति–रिवाज़, अर्थव्यवस्था आदि को सामने ला सकते हैं। क्षेत्रीय इतिहास में क्षेत्र विशेष की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थितियां सामने आती हैं। क्षेत्रीय इतिहास लिख कर ही हम राष्ट्रीय इतिहास को समृद्ध कर सकते हैं।

राष्ट्रीय इतिहास

राष्ट्रीय इतिहास से तात्पर्य समस्त देश के इतिहास से है। राष्ट्रीय इतिहास में स्थानीय एवं क्षेत्रीय इतिहास के प्रमुख–प्रमुख तत्व समाहित होते हैं। क्षेत्रीय इतिहास को राष्ट्रीय इतिहास की मुख्य धारा में जोड़कर देखा जाना चाहिए। राष्ट्रीय इतिहास द्वारा देशवासियों में राष्ट्र प्रेम के साथ–साथ अतीत के गौरव की भावनाओं का विकास किया जा सकता है। राष्ट्रीय इतिहास, विघटनकारी प्रवृत्तियों को रोकने में मददगार साबित हो सकता है। समस्त राष्ट्र की अखंडता के लिए राष्ट्रीय इतिहास लेखन अत्यधिक आवश्यक है। राष्ट्रीय इतिहास लिखकर ही हम देशवासियों में राष्ट्रवादी भावनाएं प्रतिरोपित कर सकते हैं। राष्ट्रीय इतिहास में समग्रता के साथ देश–विशेष का संपूर्ण इतिहास समाहित होता है।

विश्व इतिहास

वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा को चरितार्थ करने के लिए विश्व इतिहास का लेखन एवं अध्ययन समय की प्रमुख मांग है। वैश्वीकरण के इस दौर में हम राष्ट्रीय इतिहास पर केंद्रित होकर कूपमण्डूक बनकर नहीं रह सकते। क्षेत्रीय इतिहास एवं राष्ट्रीय इतिहास को विश्व इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। प्रो. एल्टन के अनुसार, "सभी उत्तम कृतियां विश्व इतिहास हैं ऐसा इसलिए कि इसके अंश का अध्ययन करते वक्त संपूर्ण का स्मरण होता है।"

सर्वप्रथम 'विश्व इतिहास' की रचना करने का श्रेय वाल्टर रेले को जाता है। एच. जी. वेल्स ने *'आउटलाइन्स ऑफ हिस्ट्री'* एवं टायन्वी ने 12 खंडों में *'स्टडी ऑफ हिस्ट्री'* का सृजन किया। विश्व इतिहास का सृजन आसान नहीं है, इसे लिखने में गागर में सागर भरना पड़ता है। विश्व इतिहास के लेखन के लिए आवश्यक है कि इतिहासकार को विश्व के सभी देशों की भौगोलिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की पूर्ण समझ हो।

अपनी प्रगति जांचिए

1. इतिहास को लक्ष्यहीन–अर्थहीन किसने कहा?
   (क) हीगेल (ख) वेकन
   (ग) कार्ल पापन (घ) गार्डनर
2. विश्व का सर्वाधिक प्राचीन संविधान होने का श्रेय किसे प्राप्त है?
   (क) वेद (ख) बाइबिल
   (ग) कुरान (घ) मनुस्मृति

1.3 तथ्यात्मक सामग्री का संकलन तथा डाटा, साक्ष्य तथा उसका संचरण, करणीयता एवं इतिहासवाद

सामग्री संकलन तथा डाटा संग्रहण, साक्ष्य तथा उसका संचरण, करणीयता और इतिहासवाद को क्रमशः निम्नानुसार समझा जा सकता है–

1.3.1 तथ्यात्मक सामग्री का संकलन एवं डाटा

इतिहास लेखन हेतु एक इतिहासकार सर्वप्रथम वर्ण्य–विषय का चयन करता है। वर्ण्य विषय के चयन के उपरांत इतिहासकार को वर्ण्य विषय संबंधी स्रोतों की खोज करनी होती है। बिना स्रोतों के इतिहासकार एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। वर्ण्य विषय हेतु स्रोतों की खोज इतिहास लेखन का प्रथम एवं महत्वपूर्ण चरण है। स्रोतों की खोज एवं संकलन के उपरांत इतिहासकार को वर्ण्य विषय के लिए आवश्यक स्रोतों का चयन करना होता है। स्रोतों के चयन के उपरांत उसके उपयोग से पूर्व इतिहासकार को उस स्रोत की प्रमाणिकता का मूल्यांकन करना होता है। स्रोत की प्रमाणिकता के मूल्यांकन में इतिहासकार का कौशल अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। स्रोत की प्रमाणिकता की जांच में इतिहासकार को स्वयं ही एक वैज्ञानिक एवं अधिवक्ता की भूमिका निभानी होती है। प्रमाणिकता की जांच के दौरान इतिहासकार के मस्तिष्क में अधिवक्ताओं की भांति जिरह होती है। उसके बाद इतिहासकार स्वयं न्यायाधीश की भूमिका निभाते हुए उस स्रोत की प्रमाणिकता का निष्कर्ष देता है। स्रोत की प्रमाणिकता सिद्ध होने पर ही उसका उपयोग इतिहास लेखन में किया जाता है।

इतिहास लेखन में स्रोतों का महत्व

इतिहास लेखन का प्रमुख आधार स्रोत सामग्री है। स्रोतों का उपयोग किए बिना इतिहासकार एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। इतिहास से स्रोतों के महत्व के कारण ही साहित्य पृथक है। जहां साहित्यकार कल्पना का उपयोग कर सृजन करता है वहीं इतिहास में कल्पना का कोई स्थान नहीं है। इतिहासकार इतिहास का सृजन स्रोतों के आधार पर करता है। स्रोत इतिहास लेखन के लिए महत्वपूर्ण हैं। आज इतिहास में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उपयोग किया जा रहा है। वैज्ञानिक इतिहास लेखन में स्रोतों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

इतिहास लेखन में स्रोतों से भी अधिक स्रोतों की प्रमाणिकता महत्वपूर्ण है। प्रमाणिक स्रोत के आधार पर लिखा इतिहास स्थायी होता है। यदि स्रोत के उपयोग से पूर्व उसकी प्रमाणिकता की जांच न की जाए तो वह इतिहास कभी भी गलत साबित हो सकता है। यही कारण है कि साहित्यक स्रोत की तुलना में पुरातात्विक स्रोत को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। साहित्यिक स्रोत का उपयोग करने से पूर्ण इसकी प्रमाणिकता की जांच पुरातात्विक स्रोतों की सहायता से की जाती है।

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में पुरातात्विक स्रोतों का महत्व साहित्यिक स्रोतों से अधिक है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन में साहित्यिक स्रोत अधिक महत्वपूर्ण हैं। आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन में अभिलेखागारीय स्रोतों का महत्व अन्य स्रोतों से अधिक है।

स्रोत सामग्री की खोज

स्रोत सामग्री की खोज इतिहासकार का सर्वप्रथम एवं महत्वपूर्ण कार्य है। इतिहासकार अपने वर्ण्य विषय के अनुरूप स्रोत सामग्री की खोज करता है। स्रोत सामग्री की खोज कोई आसान कार्य नहीं है। उसके लिए इतिहासकार की दृष्टि वैज्ञानिक होनी चाहिए। इतिहासकार जी.एम. ट्रेवेलियन ने कहा है, "ऐतिहासिक स्रोतों की खोज प्रणाली वैज्ञानिक होनी चाहिए।" इतिहास की वैज्ञानिक अवधारणा उन्नीसवीं सदी की देन है। चूंकि विज्ञान का प्रमुख आधार तथ्य होते हैं, अतः तथ्यवादी इतिहासकार इतिहास को तथ्यों का समूह मानने लगे। कार ने लिखा है कि तथ्यों के बिना इतिहासकार का प्रयास जड़विहीन तथा निरर्थक है। इतिहासकार के बिना तथ्य मृतप्राय एवं निरर्थक हैं।

ई.एच. कार का यह कथन स्रोतों के महत्व का परिचायक है। बिना स्रोतों की खोज किए लिखा गया इतिहास, इतिहास न होकर साहित्य ही रहेगा। इतिहास लेखन के पूर्व स्रोतों की खोज अति आवश्यक है। एक अच्छा इतिहासकार वह होता है जो इतिहास लेखन के पूर्व स्रोत सामग्री की खोज में अत्यधिक समय लगाता है। जितनी अधिक और बृहत स्तर पर स्रोत सामग्री की खोज की जाएगी, इतिहास उतना ही प्रमाणिक एवं महत्वपूर्ण होगा। इतिहासविद राहुल सांकृत्यायन एक महान यायावर थे। उन्होंने अपनी यात्राओं के दौरान मध्य एशिया का इतिहास लिखने के लिए बिपुल मात्रा में स्रोत सामग्री खोजी। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके द्वारा लिखे गए मध्य एशिया के इतिहास को अत्यधिक ख्याति प्राप्त हुई।

राहुल सांकृत्यायन द्वारा स्रोत सामग्री की खोज के संबंध में गुणाकर मुले ने लिखा है, "अपनी दो साल सन् 1945–47 ई. की रूस यात्रा में राहुल जी ने मध्य एशिया का इतिहास लिखने के लिए चार–पांच मन पुस्तकें जमा की थीं, पुस्तकों से बहुत से नोट लिए थे, विद्वानों से मिले थे और सन् 1951–52 ई. में दो बड़ी जिल्दों में करीब 1200 पृष्ठों में मध्य एशिया का इतिहास लिख डाला।

मध्य एशिया का प्रमाणिक इतिहास लिखने के कारण ही राहुल सांकृत्यायन को इतिहास जगत में प्रसिद्धि मिली। प्रख्यात समीक्षक नामवर सिंह ने भी उनकी स्रोत सामग्री की खोज के महत्व को इंगित करते हुए लिखा है, "राहुलजी ने एक अद्भुत ग्रंथ लिखा था। उसकी टक्कर का ग्रंथ आज अंग्रेज़ी में भी नहीं है, हिंदी और

अन्य भारतीय भाषाओं का तो सवाल ही नहीं उठता।" "हजारों वर्षों का इतिहास राहुल ने अकेले लिखा। राहुल लगभग 20 वर्ष तक स्रोत सामग्री एकत्रित करते रहे। उसके लिए उन्होंने अनेक भाषाएं सीखीं और उन भाषाओं के द्वारा कालानुक्रम में भूखंड में फैली घटनाओं को समझा और मध्य एशिया के इतिहास का विशाल ग्रंथ दो जिल्दों में लिखा। ... अब यह देखना है कि राहुल क्या जानते थे और इतिहास, दर्शन, धर्म तथा संस्कृति की कितनी बड़ी परंपराओं से उनका परिचय था तो मध्य एशिया का इतिहास देखें।"

राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखा गया यह ग्रंथ इस बात का सूचक है कि एक इतिहासकार के लिए स्रोत सामग्री की खोज कितनी आवश्यक है। स्रोत सामग्री जितनी अधिक एवं प्रमाणिक होगी उसके द्वारा लिखा गया इतिहास भी उतना ही प्रमाणिक होगा।

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन हेतु स्रोत सामग्री की खोज

स्रोत सामग्री की खोज से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि वह स्रोत सामग्री किस काल के इतिहास के लिए खोजी जा रही है। विभिन्न कालखंडों के इतिहास लेखन हेतु स्रोत सामग्री भी अलग–अलग होती है। प्राचीन भारत का इतिहास लिखने हेतु हमें पुरातात्विक स्रोतों की खोज करनी होती है। यद्यपि प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन से साहित्यिक स्रोतों की भी खोज आवश्यक है मगर उनकी प्रमाणिकता की जांच पुरातात्विक स्रोतों से करनी होती है।

पुरातात्विक स्रोतों के तहत आने वाली स्रोत सामग्री में–इन कालों में निर्मित स्मारक, भवन, दुर्ग, स्तंभ, गुफाएं, मंदिर, मूर्तियां, खिलौने, पाषाण उपकरण, धात्विक अवशेष, शैल चित्र, अभिलेख, मुहरें, मनके, भुर्ज पत्रावलियां, ताड़ पोथियां, काष्ठ अवशेष, अस्थि उपकरण, शंख उपकरण व चूड़ियां इत्यादि आते हैं। इस पुरातात्विक सामग्री की खोज में एक इतिहासकार के पास अतीत की परतों में झांक सकने वाली पारदर्शी ऐतिहासिक दृष्टि की आवश्यकता होती है। पुरातात्विक स्रोत सामग्री की खोज कोई आसान कार्य नहीं है इसके लिए एक इतिहासकार को पुरातत्व विज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है।

पुरातात्विक स्रोतों में अभिलेखों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये अभिलेख पाल प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में हैं। इन स्रोतों की खोज के लिए इतिहासकार को पाली, प्राकृत एवं संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। सिक्के भी प्राचीन भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री हैं। मुद्राशास्त्र का ज्ञान इस स्रोत सामग्री की खोज में सहायता करता है।

प्राचीन भारतीय इतिहास के साहित्यिक स्रोतों में धार्मिक एवं लौकिक साहित्य आता है। ये स्रोत भी अधिकांशतया संस्कृत भाषा में ही हैं। कुछ बौद्ध साहित्य पाली में हैं। अतः साहित्यिक स्रोतों की खोज में संस्कृत एवं पाली भाषा का ज्ञान आवश्यक है।

धार्मिक साहित्य के तहत वैदिक साहित्य, पुराण, ब्राह्मण ग्रंथ, बौद्ध एवं जैन साहित्य आता है। लौकिक साहित्य के तहत विभिन्न नाटक, कथा साहित्य एवं महाकाव्य आते हैं। इनमें चाणक्य का अर्थशास्त्र, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस, दंडी का दशकुमारचरित, भास का स्वप्नवासवदत्तम्, शूद्रक का मृच्छकटिकम्, कालिदास के

टिप्पणी

ग्रंथ–ऋतुसंहार, कुमारसंभव, मेघदूत, विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र, रघुवंश, बाण का हर्षचरित एवं कल्हण की राजतरंगिणी आदि प्रमुख हैं।

साहित्यिक स्रोतों में चूंकि कल्पना के तत्व अधिक होते हैं अतः इनकी तुलना पुरातात्विक स्रोतों से कर प्रमाणिक इतिहास लिखा जा सकता है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन हेतु स्रोत सामग्री की खोज

मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन की स्रोत सामग्री की खोज हेतु इतिहासकार को संस्कृत के साथ–साथ अरबी एवं फारसी भाषा का ज्ञान आवश्यक है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोतों का स्वरूप प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों से भिन्न है। जहां प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों में पुरातात्विक स्रोत महत्वपूर्ण हैं वहीं मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोतों में साहित्यिक स्रोत अधिक महत्वपूर्ण हैं।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अधिकांश स्रोत अरबी, फारसी एवं तुर्की भाषा में हैं। जहां प्राचीन भारतीय इतिहास के साहित्यिक स्रोतों में कल्पना के तत्वों की अधिकता है वहीं मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोतों में कल्पना के तत्व कम एवं ऐतिहासिक तत्व अधिक हैं। यूनान एवं रोम के बाद इसलाम इतिहास लेखन का विकास हुआ। अरबों, गजनी एवं गौरी के आक्रमण के समय एवं पश्चात मुसलिम इतिहासकार भारत आए। इन मुसलिम इतिहासकारों ने अरबी एवं फारसी भाषा में इतिहास लेखन का कार्य संपन्न किया।

जगदीश नारायण सरकार ने मुसलिम इतिहास लेखन को तीन चरणों में विभाजित किया है–

प्रथम चरण : अरबों का संपर्क एवं संघर्ष का काल (7वीं से 10वीं शताब्दी)

द्वितीय चरण : सल्तनत काल – (11वीं से 16वीं सदी)

तृतीय चरण : मुगलकाल – (16वीं से 18वीं सदी)

प्रथम चरण में अरबों के समय भारत आए इतिहासकारों का नाम आता है। उदाहरण के लिए अल–विलाजुरी ने अपनी कृति 'फुतुह–एल–बुलदान' में सिंध विजय का वर्णन किया है।

सल्तनतकालीन ग्रंथों में अलबरूनी की कृति' तारीख उल हिंद' *मिन्हास उस सिराज* की कृति *'तबकात–ए–नासिरी'* अमीर खुसरो की कृतियां *'खजाइन उल फतूह, तुगलकनामा 'मिफता–उल–फतूह', 'किरान–उस–सादेन', 'देवलरानी–खिज्रखां'* एवं *'एजाज–ए–खुशरबी'* जियाउद्दीन बरनी की कृति *'तारीख–ए–फिरोजशाही'* एवं *'फतवा–ए–जहांदारी',* इसामी की *'फुतुह–उस–सलातीन',* इब्नबतूता की *'किताब उल–रेहला'*, फिरोज शाह तुगलक की *'फुतुहात ए–फिरोजशाही',* याहया बिन अहमद सरहिंदी की कृति *'तारीख ए–मुबारक शाही'*, अहमद यादगार की कृति *'तारीख ए'* सलातीनी–अफगना' इत्यादि प्रमुख हैं।

उक्त स्रोतों में से इतिहासकार को अपने वर्ण्य विषय की स्रोत सामग्री खोजनी होती है। इनमें मिन्हास उस सिराज की *'तबकात–ए–नासिरी'* एवं जियाउद्दीन बरनी की कृति *'तारीख ए–फिरोजशाही'* सल्तनतकालीन इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत ग्रंथ हैं। सल्तनत काल से कुछ विदेशी यात्री भी भारत आए। विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य

टिप्पणी

में अनेक विदेशी यात्री आए। इन विदेशी यात्रियों–मार्कोपोलो, इब्नबतूता, अफनासी निकितिन, अब्दुर्रज्जाक, निकोलो कोंटी, डेमिन्गौस पेइज, आदि के यात्रा वृतांत्तों में भी इतिहासकार को अपने वर्ण्य विषय की स्रोत सामग्री खोजनी होती है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोतों के तृतीय चरण में मुगलकालीन इतिहास के स्रोत आते हैं। मुगलकालीन ऐतिहासिक स्रोतों में बाबर कृत *'बाबरनामा'* गुलबदन बेगम कृत *'हुमायूंनामा'* मिर्जा हैदर दोगलत कृत *'तारीख–ए–रशीदी*, ख्वांदामीर कृत *'कानून–ए–हुमायूं'* अबुलफजल की कृतियां– *'अकबर नामा'* एवं *'आइन–ए–अकबरी,* अब्दुल–कादिर–बदायूंनी कृत *'मुन्तखब–उत–तबारीख निजामुद्दीन'* अहमद कृत *'तारीख ए अकबरी'*, जहांगीर कृत *'तुजुक–ए–जहांगीरी'*, मोहम्मद कासिम, हिंदुशाह फरिश्ता की कृति *'तारीख–ए–फरिश्ता'*, मुहम्मद काजिम–बिन मुहम्मद अमीन कृत, आलमगीरनामा', मुहम्मद साकी मुस्तैद खां कृत *'मआसिर–ए–आलमगीरी'* भीमसेन कायस्थ कृत *'नुस्खा–ए–दिलकुशा'*, खाफी खां कृत *'मुन्तखब–उल–लुबाब'*, आदि प्रमुख हैं।

इनके अलावा मुगलकाल में भी कई विदेशी यात्री; जैसे पीटर मुंडी, जीन वैप्टिस्ट टैवर्नियर, निकोलो मनुची, फ्रांसिस बर्नियर, आदि के यात्रा वृत्तांत भी मुगलकालीन भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत हैं।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के साहित्यिक स्रोत विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं। इतिहासकार संस्कृत, अरबी एवं फारसी भाषा के ज्ञान का उपयोग कर वांछित स्रोत सामग्री की खोज कर सकता है।

आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन हेतु स्रोत सामग्री की खोज

आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोतों का स्वरूप प्राचीन एवं मध्य युगीन भारतीय इतिहास के स्रोतों से भिन्न है। पुरातात्विक स्रोतों एवं दरबारी इतिहासकारों के इतिहास के स्थान पर आधुनिक भारतीय इतिहास के निर्माण में अभिलेखागारीय स्रोतों का महत्व बढ़ जाता है। अभिलेखागारीय दस्तावेज आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन के प्रमुख स्रोत हैं। राज्य स्तरीय एवं राष्ट्रीय अभिलेखागारो में विभिन्न दस्तावेज़ों की कई फाइलें मिलती हैं। इन दस्तावेज़ों में ब्रिटिश अधिकारियों के पत्र, निजीपत्र, तद्युगीन समाचार पत्र, सरकारी फाइलें इत्यादि प्राप्त होती हैं।

आधुनिक भारत में कई पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हो चुका था। इन पत्र–पत्रिकाओं में विभिन्न लोगों के लेख एवं शोध पत्र रहते हैं। ये पत्र–पत्रिकाएं भी आधुनिक भारतीय इतिहास के निर्माण में अहम भूमिका निभाती हैं। आज ऐसे कई वृद्ध जीवित हैं जिन्होंने या तो 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लिया था या फिर वे भारत छोड़ो आंदोलन के प्रत्यक्षदर्शी हैं। इन्हें खोज कर इतिहासकार इनसे मौखिक साक्षात्कार कर महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री जुटा सकता है।

निजीपत्र एवं डायरियां भी आधुनिक भारतीय इतिहास के निर्माण का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। आज कुछ विशिष्ट व्यक्तियों, उदाहरणार्थ महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू इत्यादि के निजी पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। जिन लोगों के पत्र एवं डायरियां प्रकाशित नहीं हैं, इतिहासकार को चाहिए कि उन्हें स्वयं खोजे एवं उनसे महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री एकत्रित करे।

टिप्पणी

1857 की क्रांति के दौरान बुंदेलखंड के विभिन्न क्रांतिकारियों ने तात्या टोपे को जो पत्र लिखे, उनका संग्रह परशुराम शुक्ल 'विरही' द्वारा *'1857 की क्रांति के पत्र'* के नाम से नगरपालिका शिवपुरी म.प्र. के सौजन्य से तांत्या टोपे समिति शिवपुरी द्वारा प्रकाशित कराया गया।

'बुंदेलखंड की पूर्व रियासतों के पत्र–पांडुलिपियों का सर्वेक्षण' शीर्षक से तत्युगीन पत्र एवं पांडुलिपियों का प्रकाशन डॉ. कामिनी, डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव, डॉ. श्यामसुंदर सोनकिया एवं डॉ. सीता किशोर आदि ने 1994 में अनुराधा ब्रदर्स कानपुर से प्रकाशित कराया।

आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोतों के लिए नई दिल्ली स्थित नेहरू स्मारक संग्रहालय व ग्रंथालय (नेहरू मेमोरियल म्यूजियम लायब्रेरी) भी अत्यंत उपयोगी है। यह व्यक्तिगत पत्रों व गैर सरकारी दस्तावेज़ों का सबसे बड़ा संग्रहालय है। यहां का पांडुलिपि विभाग भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यहां अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पत्रों का संग्रह है। इनमें जवाहरलाल नेहरू, मोतीलाल नेहरू, गांधी जी, जय प्रकाश नारायण, बी.आर. अंबेडकर, मदनमोहन मालवीय, टी.टी. कृष्णमचारी, एम.एन. शाह एवं तेज़ बहादुर सप्रू आदि के पत्रों का संग्रह प्रमुख है। इसी प्रकार के संग्रहालय विभिन्न राज्यों में भी स्थित हैं। भोपाल का माधवराव सप्रे स्मृति समाचार–पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यहां विभिन्न पुराने समाचार पत्रों का संग्रह उपलब्ध है।

निष्कर्षतः आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन के स्रोतों की खोज हेतु इतिहासकार को ऊपर वर्णित देश–विदेश के विभिन्न पुस्तकालयों से संदर्भ जुटाना अत्यंत आवश्यक है।

स्रोतों का मूल्यांकन

इतिहासकार द्वारा इतिहास लेखन हेतु सर्वप्रथम स्रोतों की खोज की जाती है। स्रोतों के संकलन के उपरांत इतिहासकार वर्ण्य विषय के अनुसार आवश्यक स्रोतों का चयन करता है। चयनित स्रोतों के उपयोग से पूर्व इतिहासकार उनका मूल्यांकन करता है। मूल्यांकन द्वारा स्रोतों की प्रमाणिकता की जांच की जाती है। स्रोतों की खोज, संकलन, चयन एवं मूल्यांकन की प्रक्रिया से गुजरकर उनके आधार पर लिखा गया इतिहास ही प्रमाणिक इतिहास होता है।

स्रोतों का संकलन/डाटा संग्रहण

स्रोतों की खोज के उपरांत इतिहासकार उन स्रोतों से तथ्यों का संकलन करता है। तथ्य इतिहास लेखन का सर्वप्रमुख आधार हैं। अधिकांश विद्वानों ने तथ्य को इतिहास की रीढ़ माना है। तथ्य शाश्वत एवं पवित्र होता है, अतः यह परिवर्तन से परे होता है। स्रोत से प्राप्त तथ्यों से विभिन्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। सर जान क्लार्क ने इतिहास की तुलना गूदेदार फल से की है। उनके अनुसार, तथ्य उस इतिहास रूपी फल की गुठली होता है जिसमें फल का बीज निहित होता है। उन्होंने तथ्य से निकाले गए विभिन्न निष्कर्षों को फल का गूदा कहा था जो जायकेदार तो हो सकता है, मगर उसमें उत्पादन क्षमता नहीं होती। अतः उनका मानना था कि इतिहास के तथ्य तो स्थिर व निश्चित होते हैं मगर निष्कर्षों की स्थिति बालू की दीवार की तरह होती है, जो कभी भी ढह सकती है।

तथ्य एक ही होता है मगर विभिन्न इतिहासकार उससे अलग–अलग निष्कर्ष निकालते हैं। तथ्य अपरिवर्तनीय रहता है। तथ्य किसी एक निष्कर्ष से बंधा हुआ न होकर स्वतंत्र है। इस संबंध में सी.पी. स्काट ने लिखा है "तथ्य पवित्र हैं, मंतव्यों पर कोई बंधन नहीं।"

इतिहास की वैज्ञानिक अवधारणा 19वीं शताब्दी की देन है। पाश्चात्य इतिहासकारों का एक समूह 'तथ्य संप्रदाय' अर्थात तथ्यवादियों का था। इनका स्पष्ट मानना था कि इतिहास एक विज्ञान है। चूंकि विज्ञान का प्रमुख आधार प्रमाणिक स्रोतों से संकलित तथ्य होता है, अतः तथ्यवादी इतिहासकार इतिहास को तथ्यों का समूह मानने लगे। इसी कारण 19वीं शताब्दी को तथ्यों की शताब्दी माना गया। मि. ग्रेण्ड ग्राइड ने लिखा था कि "मुझे तथ्य चाहिए और जीवन में हमें केवल तथ्यों की आवश्यकता है।" उनका मानना था कि इतिहास में अधिकाधिक तथ्यों का समावेश होना चाहिए। 19वीं सदी के चौथे दशक में रॉके ने तथ्यों के यथावत प्रस्तुतीकरण पर बल दिया।

स्रोतों के संकलन की प्रक्रिया में एक परेशानी यह भी होती है कि आवश्यक स्रोतों के संकलन के साथ–साथ अनावश्यक स्रोत भी संकलित हो जाते हैं। स्रोतों के संकलन के उपरांत इतिहासकार को वर्ण्य विषय के अनुरूप स्रोतों के चयन की प्रक्रिया से गुजरना होता है। स्रोतों के संकलन की तुलना में आवश्यक स्रोतों के चयन की प्रक्रिया में इतिहासकार को अत्यधिक सावधानी, कौशल, ज्ञान, एवं दूरर्शिता का प्रयोग करना पड़ता है। स्रोतों के संकलन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण संकलित तथ्यों में से आवश्यक स्रोतों का चयन होता है। एक इतिहासकार का पुनीत कर्तव्य है कि वह अपने द्वारा संकलित स्रोतों के भंडार में से मात्र आवश्यक स्रोतों का चयन करे और अपनी व्याख्या के माध्यम से समसामयिक रुचि के अनुरूप चयनित स्रोतों की व्याख्या करे। समसामयिक रुचि के अनुरूप इतिहास लेखन को व्याख्या प्रधान बनाने के लिए स्रोतों का चयन अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

जो इतिहासकार स्रोतों का चयन न कर संकलित सभी स्रोतों को अपने इतिहास में स्थान देते हैं वे अपने वर्ण्य विषय के साथ न्याय नहीं कर पाते। आवश्यक स्रोतों के चयन के बिना लिखा गया इतिहास असंगत एवं बोझिल हो जाता है। यह भी समझ में नहीं आता कि आखिर इतिहासकार क्या सिद्ध करना चाहता है। इतिहासकार को यह नहीं भूलना चाहिए कि असंगत विचार जन सामान्य को नहीं समझाए जा सकते क्योंकि मानव मस्तिष्क की संरचना कुछ इस प्रकार से हुई है कि वह केवल तर्कसंगत विचारों को ही ग्रहण कर सकता है। अतः इतिहासकार को चाहिए कि वह असंगत तथ्यों का परित्याग करे एवं तर्कसंगत तथ्यों का चयन कर इतिहास लिखे जो कि पाठक के लिए बोधगम्य एवं ग्राह्य हो।

आवश्यक स्रोतों के चयन के लिए इतिहासकार को चाहिए कि अपने लेखन से संबंधित उसके विचार स्पष्ट हों और वह किसी प्रश्न का उत्तर देने के ख्याल से आवश्यक ऐतिहासिक तथ्यों का चयन करे। प्रो. लैगलोई एवं साइनोबो ने इस तारतम्य में लिखा है, "यदि इतिहास पर तथ्यों के ढेर में खो जाने की दुविधा व्याप्त हो तो अन्य विज्ञानों की तरह उसे प्रश्नोत्तर की प्रक्रिया से लिखना चाहिए। इतिहासकार अपने इतिहास को प्रश्नोत्तर परिकल्पनाओं द्वारा मुख्य धारा से भटकने से रोक सकता है।" इस संबंध में प्रो. गोटवाक ने भी लिखा है, "जब इतिहासकार तथ्यों को इकट्ठा कर

टिप्पणी

लेखन के चरण पर पहुंचता है तो उस समय तक प्रश्नवाचक परिकल्पना या विषय वस्तु स्पष्ट हो जानी चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता है तो उसे लेखन स्थगित कर देना चाहिए और यह विचार करना चाहिए कि वह किसी निष्कर्ष पर क्यों नहीं पहुंचा।"

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि इतिहासकार को स्रोतों के चयन में पूर्ण निष्ठा, वैज्ञानिक दृष्टि, कौशल एवं तर्कशक्ति का परिचय देना चाहिए।

1.3.2 साक्ष्य तथा उसका संचरण

कॉलिगवुड के अनुसार, स्रोतों पर आधारित इतिहास अतीत का विज्ञान है। जर्मनी में रॉके, इंग्लैंड में एक्टन, इटली में क्रोचे एवं अमेरिका में कार्ल बेकर इत्यादि ने इतिहास अध्ययन की वैज्ञानिक एवं तकनीकी विधाओं को प्रस्तुत कर क्रांति का नेतृत्व किया। इतिहास लेखन में प्रमाणिक स्रोतों का अनुप्रयोग आज के वैज्ञानिक युग में समय की पुकार है। समाज इतिहास में यथार्थता की प्रस्तुति चाहता है क्योंकि यथार्थता ही इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है। ऐसे में इतिहासकार का दायित्व और अधिक बढ़ जाता है कि वह संकलित स्रोतों की प्रमाणिकता की जांच करे।

विविध स्रोतों से साक्ष्य संचरण से पूर्व उनका मूल्यांकन अपरिहार्य होता है। ऐसा करने से साक्ष्यों का असंदिग्ध होना सुनिश्चित हो जाता है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार "ऐतिहासिक यथार्थवाद की रक्षा तभी हो सकती है जबकि इतिहास उस सामग्री पर आधारित हो जो कि व्यक्ति या वर्णित व्यक्ति या समाज के समसामयिक हो। समसामयिक चीज़ें अधिकतर भंगुर होती हैं, इसलिए जितने ही अधिक पुराने इतिहास की छानबीन हम करते हैं, उसकी सामग्री कम होती जाती है परंतु वह सामग्री कितनी भी कम क्यों न हो पर प्रत्यक्षदर्शी होने से सर्वश्रेष्ठ साक्षी का प्रमाण वही हो सकती है। वही इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है।"

स्रोतों का मूल्यांकन इसलिए आवश्यक है कि कतिपय शरारती तत्व स्रोतों के साथ छेड़–छाड़ करते हैं। ऐसी ही जालसाजी पर प्रकाश डालते हुए पुरात्त्वविद राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि 'इतिहासकार के.पी. जायसवाल को किसी ने उड़ीसा से सूचित किया था कि वहां अशोककालीन ब्राह्मी लिपि में एक तालपोथी मिली है। उन्होंने उसी समय कह दिया कि वह जाली होगी। बाइस–तेइस शताब्दियां पार करना हमारे देश में ताल पत्र के लिए संभव नहीं है। अधिक आग्रह करने पर देखा, वही बात सही निकली।' उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि इतिहास के क्षेत्र में कतिपय लोग इस प्रकार की जालसाजियां करते हैं। मुगलकालीन चित्रों में इस प्रकार की जालसाजियां अक्सर देखने को मिलती हैं। इन जालसाजियों का प्रमुख कारण यह है कि म्यूजियम और देश–विदेश के निजी संग्राहक अच्छे दाम पर ऐसे चित्रों को ले लेते हैं। इस प्रकार की जालसाजियों को पकड़ने के लिए इतिहासकार को अनुभवी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त होना आवश्यक है।

स्रोतों के मूल्यांकन के दौरान पुरातात्त्विक एवं साहित्यिक स्रोतों की जालसाजियों का पर्दाफाश करने में एक इतिहासकार को एक वैज्ञानिक एवं वकील की दोहरी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है।

एक वैज्ञानिक की भांति इतिहासकार अपने स्रोतों से प्राप्त तथ्यों की जांच साक्ष्य द्वारा करता है। पुरातात्विक स्रोतों के मूल्यांकन में वैज्ञानिक विधि अधिक कारगार है।

कोई पुरातात्विक अवशेष कितना पुराना है उसका काल निर्धारण कार्बन–14 (C-14) विधि द्वारा किया जा सकता है।

आवश्यकता पड़ने पर एक इतिहासकार को स्रोतों के मूल्यांकन में अधिवक्ता की भूमिका भी निभानी होती है। इतिहासकार अतीत के स्रोतों की प्रमाणिकता की जांच के लिए अतीत के ही अन्य ऐतिहासिक स्रोतों का साक्ष्य के रूप में उपयोग करता है। 1939 ई. में हिस्टोरिकल ऐशोसियेशन में भाषण देते हुए लार्ड सैकी ने स्पष्ट किया था कि इतिहासकार तथा अधिवक्ता द्वारा साक्ष्यों के प्रयोग में समानता है। दोनों का उद्देश्य साक्ष्यों के आधार पर घटना की प्रमाणिकता की जांच करना है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि एक अधिवक्ता के विपरीत एक इतिहासकार स्वयं ही वादी–प्रतिवादी होता है। यहां तक कि न्यायाधीश भी वह स्वयं ही होता है। किटसन क्लार्क इतिहासकार को साक्ष्यों के संकलन एवं प्रस्तुतीकरण में पूर्णतः स्वतंत्र नहीं मानते। उनके अनुसार, इतिहासकार समसामयिक तथा आने वाली पीढ़ी की रुचि द्वारा नियंत्रित होता है। कुछ हद तक उसकी स्वयं की अंतश्चेतना भी उसे नियंत्रित करती है। अपनी अंतश्चेतना एवं समसामयिक रुचि को देखते हुए ही एक इतिहासकार स्रोतों के संकलन एवं उनमें निहित तथ्यों के प्रस्तुतीकरण में स्वयं न्यायाधीश, जूरी, वादी, प्रतिवादी, अधिवक्ता, जांचकर्ता एवं गुप्तचर होता है। इतिहासकार भली–भांति जानता है कि उसकी थोड़ी–सी भी गलती आने वाली पीढ़ी द्वारा माफ नहीं की जाएगी। अतः इतिहासकार को स्रोतों के मूल्यांकन में हर संभव सावधानी बरतनी होती है।

निष्कर्षतः स्रोतों के संकलन एवं चयन की प्रक्रिया से गुजरने के पश्चात इतिहासकार अपने अनुभव, कौशल एवं अधिवक्ता व वैज्ञानिक की भूमिका निभाते हुए चयनित स्रोतों की प्रमाणिकता का मूल्यांकन करता है। एक ही विषयवस्तु के कई स्रोत मिलने पर उनका मूल्यांकन कर इतिहासकार उनका क्रम सुनिश्चित करता है और तद्नुसार ही उनका इतिहास लेखन में उपयोग करता है।

1.3.3 करणीयता एवं इतिहासवाद

इतिहास में घटित हर महत्वपूर्ण घटनाओं के पीछे कोई न कोई महत्वपूर्ण कारण अवश्य पाया जाता है। बिना कारण के किसी भी घटना का अस्तित्व नहीं है। इतिहास में घटित घटनाओं के कारणों का अग्रलिखित रूपों में अध्ययन किया जाता है–

इतिहास में करणीयता

कारण शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Causa' कौजा से हुई है। अंग्रेजी भाषा में इसे Cause कॉज कहा गया है। इतिहास अतीत की घटनाओं का अध्ययन है। किसी भी घटना के घटित होने के पीछे कुछ न कुछ कारण विद्यमान होते हैं। कॉलिंगवुड ने कहा है कि ''कारण वह प्रमुख तत्व है जो मनुष्य को कार्य करने के लिए प्रेरित, प्रोत्साहित एवं बाध्य करता है।''

सर्वप्रथम अरस्तू ने कारण के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा था कि कारणों के आभाव में किसी घटना या कार्य का होना संभव नहीं है। इतिहास में कारण की अवधारणा से इतिहास के जनक हेरोडोटस भी भली भांति परिचित थे। उन्होंने लिखा था कि मेरे इतिहास लेखन का एकमात्र उद्देश्य है ग्रीक तथा बर्वर जातियों के पारस्परिक

युद्धों का कारण बताना। मगर वास्तविक अर्थों में इतिहास में कार्य–कारण संबंध पर विशेष रूप से ध्यान 18वीं शताब्दी में दिया गया। फ्रांसीसी क्रांति में प्रमुख भूमिका निभाने वाले प्रख्यात दार्शनिक मान्टेस्क्यू (1689–1758) ने कहा था कि प्रत्येक राजवंश के उत्थान, राजत्व काल एवं पतन के पीछे कुछ नैतिक या भौतिक अर्थात सामान्य कारण होते हैं एवं जो कुछ भी घटित होता है इन्हीं कारणों के तहत होता है।

कार्य–कारण संबंध

ई.एच. कार ने कार्य–कारण संबंध को इतिहास की कुंजी कहा है। कार्य–कारण सिद्धांत के मूल में यह तथ्य निहित है कि प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण होता है और प्रत्येक कारण कार्य के रूप में प्रतिफलित होता है। कारण कार्य को उत्पन्न करता है और आगे चल कर वही कार्य अन्य कार्यों के लिए कारण बन जाता है। फलस्वरूप ऐतिहासिक घटनाएं क्रमबद्ध रूप से घटित होती रहती हैं इसीलिए ऐतिहासिक घटनाओं के स्वरूप को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उस घटना के लिए उत्तरदायी कारणों को भी समझा जाये।

कई विद्वानों ने घटना घटित होने के निर्णायक एवं तात्कालिक कारण को कारण एवं अन्य कारणों को परिस्थिति की संज्ञा दी है। मेंडलवाम ने किसी घटना के प्रमुख कारण को कारण एवं अन्य कारणों को परिस्थिति कहा है।

विलियम जेम्स के अनुसार इतिहासकार निष्कर्ष–प्राप्ति के उद्देश्य से कारण तथा परिणाम की खोज करता है। मुहम्मद तुलगक ने चार योजनाएं बनायीं, योजना बनाने के पीछे उसकी सोच रचनात्मक थी। अब इतिहासकार यह निष्कर्ष निकालने को बाध्य हो जाता है कि आखिर ये योजनायें असफल क्यों हुईं। अतः उद्देश्य तथा निष्कर्ष प्राप्ति की उत्कृष्ट अभिलाषा इतिहासकार को उन कारणों के अन्वेषण के लिए बाध्य करती है, जो किसी घटना अथवा कार्य के मूल में होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि घटना के कारण, परिस्थितियां एवं प्रभाव एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबद्ध हैं। स्थूल रूप से हमें कारण एवं परिस्थितियों में कोई अंतर नहीं दिखाई देता मगर सूक्ष्म अन्वेषण द्वारा हम कारण एवं परिस्थितियों के महत्व को भली–भांति समझ सकते हैं। कारण एवं परिस्थितियां दूर तक घटना के प्रभावों के स्वरूप को प्रभावित करती है। कॉलिंगवुड के अनुसार कारणों की क्रमबद्धता में इतिहासकार का पुनीत कर्तव्य है कि वह कारण तथा परिस्थिति के अंतर को स्पष्ट करे। परिस्थितियों के संदर्भ में ही कारण के निर्णायक प्रभाव का अध्ययन संभव है। इस तारतम्य में ओकशाट ने भी स्पष्ट किया है कि परिस्थितियों की व्याख्या में ही कारण के स्पष्ट प्रभाव को ढूंढ़ा जा सकता है।

ऐतिहासिक कारणों का वर्गीकरण

एक ऐतिहासिक घटना अनेक कारणों से घटित होती है और सभी कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से घटना के लिए उत्तरदायी होते हैं। कौन सा कारण किस सीमा तक घटना घटने के पीछे उत्तरदायी है, इसका निर्णय इतिहासकार अपने विवेक से करता है। किसी भी घटना के पीछे कुछ मूल कारण होते हैं एवं कुछ गौण कारण भी। अतः इतिहासकार अपने सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा गौण कारणों के संदर्भ में मूल कारण के व्यापक प्रभाव की भी व्याख्या करता है। पी. गार्डिनर ने इस तारतम्य में स्पष्ट किया है कि

इतिहासकार किसी भी घटना की व्याख्या में गौण कारण, मूल कारण, सहायक कारण, आकस्मिक कारण तथा अंतिम कारण को क्रमबद्धता प्रदान करता है।

किसी भी घटना से संबंधित कारणों का वर्गीकरण निम्नानुसार होता है–

1. **प्रारंभिक कारण**– किसी भी घटना के घटने के पीछे जब एक से अधिक कारण उत्तरदायी होते हैं तो इतिहासकार काल के सापेक्ष में यह खोजने का प्रयास करता है कि तथाकथित घटना के घटने के पीछे सबसे पहला कारण कौन सा था, यही प्रारंभिक कारण होता है। प्रारंभिक कारण में ही घटना का बीजारोपण हो जाता है। प्रथम विश्व युद्ध का प्रारंभिक कारण कई विद्वान 1871 ई. की फ्रैंकफर्ट संधि को मानते हैं, क्योंकि फ्रैंकफर्ट संधि की कठोर शर्तों में प्रथम विश्व युद्ध के अंकुर मौजूद थे।
2. **मूल कारण**– इतिहास में किसी घटना का मूल कारण वह होता है जिसके कारण घटना घटित हुई। कभी–कभी मूल कारण को केंद्र में रखकर घटना के घटित होने के लिए अन्य कारणों की तलाश की जाती है। अंग्रेजों एवं चीन के बीच 1839–42 ई. के प्रथम अफीम युद्ध का मूल कारण था–चीन में अंग्रेजों द्वारा अधिकाधिक व्यापारिक सुविधाओं को प्राप्त करने की उत्कृष्ट अभिलाषा। इनके अलावा मंचू शासकों की निरंकुशता, व्यापारिक प्रतिबंध, को हॉग माध्यम, कोतो प्रथा आदि अन्य गौण कारण थे।
3. **गौण कारण**– किसी भी घटना के घटित होने के पीछे जितने भी कारण उत्तरदायी होते हैं, उनमें कुछ सामान्य कारण भी होते हैं। इन सामान्य कारणों को गौण कारण माना जाता है क्योंकि ये कारण घटना के लिए मूलतः जिम्मेदार न होकर घटना में सहयोगी कारण मात्र होते हैं।
4. **सहायक कारण**– सहायक कारण भी गौण कारण की श्रेणी में ही आते हैं जो घटना के लिए अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार होते हैं।
5. **आकस्मिक कारण**– कोई भी घटना जब घटित होती है तो उस घटना के कुछ आकस्मिक कारण भी होते हैं। आकस्मिक कारण बहुत कुछ परिस्थिति पर निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिए मृत्यु का आकस्मिक कारण यह भी बन सकता है कि जिस समय रवि पान खाने के लिए सड़क पार कर रहा था, ठीक उसी समय डेविड शराब पीकर बिना ब्रेक की गाड़ी से वहां से निकला। अतः यह एक आकस्मिक संयोग था जो जॉन की मृत्यु का कारण बन गया।
6. **अंतिम एवं तात्कालिक कारण**– अंतिम एवं तात्कालिक कारण वे होते हैं जिनके होने से घटना घटित हो जाती है। प्रथम विश्व युद्ध के परिप्रेक्ष्य में ऑस्ट्रिया के राजकुमार फ्रांज़ फर्डीनेण्ड की हत्या युद्ध का तात्कालिक कारण सिद्ध हुई। द्वितीय विश्व युद्ध के परिप्रेक्ष्य में 1939 ई. में हिटलर का पोलैंड पर आक्रमण युद्ध का तात्कालिक एवं अंतिम कारण था।
7. **परिस्थितिजन्य कारण**– किसी भी घटना के पीछे कुछ परिस्थितिजन्य कारण भी जिम्मेदार होते हैं। मैडलबाम ने तो घटना के लिए मुख्यतः उत्तरदायी कारण को कारण एवं अन्य सहायक कारणों को परिस्थितिजन्य कहा जाता है।

टिप्पणी

8. **विविध कारण**– विश्व की अनेक घटनाओं के लिए उपर्युक्त कारणों के साथ–साथ कुछ विविध कारण भी उत्तरदायी होते हैं, यथा–सामाजिक कारण, धार्मिक कारण, राजनीतिक कारण, आर्थिक कारण एवं भौगोलिक कारण आदि।

कारण और अवश्यंभाविता

जॉन डेवी ने कारण–कार्य के समीकरण को रेल की पटरी की भांति समानान्तर बताया है अर्थात कारण के साथ–साथ उसका परिणाम भी चलता है। कारण परिणाम को अवश्यंभावी बनाता है। परंतु यहां यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि कारण के माध्यमों से भविष्य में होने वाले परिणाम का परिमाण अन्य कारणों परिस्थितियों से भी प्रभावित होता है। कारण का परिणाम कब सामने आएगा एवं उसका स्वरूप क्या होगा? इसके बारे में निश्चित भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। इतिहासकार कॉलिंगवुड ने इसीलिए कहा भी है कि कोई घटना अवश्यंभावी नहीं होती। इसके विपरीत धार्मिक एवं भाग्यवादी अवधारणा में ऐतिहासिक अवश्यंभाविता को प्रायः स्वीकार किया गया है।

गीता 4.7–8 में अवतार को अवश्यंभावी बताते हुए लिखा है कि धर्म की हानि होने पर दुर्जनों के संहार और सज्जनों की रक्षार्थ अवश्य ही भगवान अवतार लेते हैं। गीता की ही तरह गोस्वामी तुलसीदास ने भी अवतार को अवश्यंभावी बताया है। उन्होंने रामचरितमानस के बाल कांड में दोहा क्रमांक 120 घ के बाद भी चौपाई क्रमांक 3–4 में लिखा है।

जब जब होय धरम कै हानि।
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।।
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा।
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा।।

कार्ल मार्क्स, टालस्टाय एवं ई.एच. कार ने विभिन्न तर्कों के आधार पर घटनाओं की अवश्यंभाविता को व्याख्यायित किया है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं ज्ञान सापेक्ष इतिहासकार, ऐतिहासिक अवश्यंभाविता के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते। उनका स्पष्ट अभिमत है कि इतिहास में कुछ भी अवश्यंभावी नहीं होता। कई कारणों के उपस्थित होने पर भी आकस्मिक परिस्थितियों के कारण घटना उस प्रकार नहीं घटती जैसी की लोगों ने कल्पना की थी। उदाहरण के लिए 1857 के दौरान क्रांतिकारियों ने क्रांति के लिए 31 मई की तिथि निश्चित की थी। मगर आकस्मिक कारण से क्रांति मेरठ में 10 मई 1857 को ही प्रारंभ हो गई। इसलिए इतिहास में अवश्यंभावी अथवा अनिवार्य शब्द के स्थान पर संभाव्य शब्द का प्रयोग करने की वकालत की गई है।

कारण और नियतिवाद

मैंडलबाम ने विश्व की ऐतिहासिक घटनाओं को नियति का परिणाम बताया है। उनके अनुसार कारण एक दूसरे से संबंधित होते हैं और नियतिवाद को जन्म देते हैं। यह सार्वभौमिक नियम है कि प्रत्येक घटना और मानवीय कार्य–व्यापार कारणों की नियति का परिणाम है। हीगेल एवं मार्क्स ने कहा है कि इतिहास में अवश्यंभावी कुछ नहीं होता, कारणों के आधार पर परिणामों की संभावना व्यक्त की जाती है।

कोई भी ऐतिहासिक घटना बहुत से कारणों का परिणाम होती है। कई बार संयोग एवं आकस्मिक कारण से घटना उस तरह घटित नहीं होती जिस तरह कि उसके घटित होने की संभावना थी। उदाहरणार्थ पानीपत के द्वितीय युद्ध 1556 ई. में हेमू की विजय अवश्यंभावी नजर आ रही थी। उसी समय आकस्मिक रूप से एक तीर हेमू की आंख में लगा और परिणाम बदल गया। अकबर की विजय हुई। इस प्रकार अनुकूल परिस्थितियों एवं कारणों के उपरांत भी आकस्मिकता एवं संयोग घटनाओं के स्वरूप एवं परिणाम को प्रभावित करते हैं। पालिबियस, टैसियस, गिबन, ब्यूरी एवं फिशर आदि विद्वानों ने इसीलिए ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने से संयोगो को महत्वपूर्ण माना है।

कारणत्व के प्रमुख सिद्धांत

इतिहास लेखन में इतिहासकार घटना के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का विश्लेषण करता है। वह अपने विश्लेषण के दौरान कारणत्व के किसी न किसी सिद्धांत का अनुपालन करता है। कारणत्व के प्रमुख सिद्धांत निम्नवत हैं–

• दैवी नियोजन का सिद्धांत

मिस्र, यूनान, एवं बेवीलोन के कुछ इतिहासकारों ने घटना के कारणों में दैवी नियोजन के सिद्धांत के महत्व को स्वीकार किया है। इन्होंने नायकों, पुरोहितों एवं राजाओं द्वारा संभव कार्यों की व्याख्या की। जिन कारणों की व्याख्या करने में वे असमर्थ रहे उन्हें उन्होंने दैवीय इच्छा कहकर छोड़ दिया। इतिहास की कई घटनाओं के कारण तब संभावित परिणाम से अलग हटकर परिणाम देते हैं तो विद्वान इसमें दैवीय इच्छा का सिंद्धांत जोड देते हैं। दैवी नियोजन के सिद्धांत के तहत कभी कभी दैवीय इच्छा एवं भाग्य भी इतिहास का निर्माण करता है। सर इसाइया बर्लिन का कथन है कि मानवीय व्यवहार के पीछे दैवीय शक्ति निर्णायक होती है। वर्तमान समय में इतिहास लेखन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रमुखता से परिलक्षित होता है अतः आधुनिक काल में दैवीय नियोजन सिद्धांत का अनुपालन नहीं किया जाता।

• बुद्धिवादी सिद्धांत

वर्तमान समय में इतिहासकार दैवीय नियोजन के सिद्धांत के स्थान पर बुद्धिवादी सिद्धांत का अनुप्रयोग कारण खोजने में लगे रहते हैं। 17वी 18वी सदी से बुद्धिवादी सिद्धांत को गति मिली।

• मार्क्सवादी सिद्धांत

कार्ल मार्क्स ने इतिहास की आर्थिक व्याख्या की एवं भौतिकवादी सिद्धांत प्रस्तुत किया। मार्क्स ने इतिहास की प्रत्येक घटना को आर्थिक चश्मे से देखा। उन्होंने बताया कि विश्व में दो वर्ग है एक शोषक एवं दूसरा शोषित। शोषक वर्ग शोषित वर्ग का शोषण करता है, एवं प्रत्येक काल के इतिहास से यही शोषण दृष्टि गोचर होता है। आज भी कई इतिहासकार मार्क्सवादी सिद्धांत का उपयोग करते हुए इतिहास लेखन में संलग्न हैं। मार्क्सवादी सिद्धांत का उपयोग करने वाले इतिहासकार वर्ग संघर्ष को प्रमुखता देते हैं। प्रत्येक घटना के कारणों के पीछे आर्थिक कारण खोजते हैं। बर्तेण्ड रसेल ने मार्क्स के सिद्धांत का विरोध किया था।

मानवीय मनोभाव का सिद्धांत

इतिहास की घटनायें मानवीय कार्य व्यापार का परिणाम हैं। काम, क्रोध, मद, लोभ, ईर्ष्या–द्वेष, राग, आवेश, भावना, तृष्णा, इत्यादि मनोगत प्रवृत्तियां मानवीय कार्य–व्यवहार को प्रभावित करती हैं। अतः मानव द्वारा किये गये कार्यों की व्याख्या करते समय इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये कि इस कार्य के पीछे कौन सी मनोवृत्ति कार्य कर रही थी। मानव की मनोवृत्ति को यदि समझ लिया जाए तो उसके द्वारा किये गये कार्य को भी बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। हीगेल, काम्टे, एवं साइमन इस सिद्धांत के प्रमुख समर्थक रहे हैं।

• वैज्ञानिक सिद्धांत

इतिहास की वैज्ञानिक अवधारणा 19वीं सदी की देन है। रांके के नेतृत्व से इतिहासकारों ने ऐतिहासिक घटनाओं के पीछे वैज्ञानिक दृष्टि से कारण खोजे। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कारणों की व्याख्या इतिहास को बोधगम्य बनाती है। वैज्ञानिक सिद्धांत से कारणों को खोजने पर इतिहास में वस्तुनिष्ठता आती है।

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि इतिहास में कारणत्व के अनेक सिद्धांत है, जो अपने–अपने ढंग से ऐतिहासिक घटनाओं और उनके घटने के उत्तरदायी कारणों की व्याख्या करते हैं।

इतिहास में कारण और इतिहासकार

कारणों के साथ इतिहासकार का संबंध अन्योन्याश्रित है। कारणों की खोज इतिहासकार का प्रमुख कार्य है। किसी भी घटना के घटित होने के पीछे निहित कारणों की खोज इतिहासकार की योग्यता को दर्शाती है। इतिहासकार अपनी शोधपरक दृष्टि से कारणों की खोज करता है। एक ही घटना के कारणों की खोज विभिन्न इतिहासकार कारणत्तव के विभिन्न सिद्धांतों का उपयोग कर करते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से तथ्य एवं कारणों की खोज ही इतिहास है। डेलकार्ट पार्सन के अनुसार इतिहास एक चयन प्रक्रिया है। इतिहासकार वास्तविक कारणों को बोधगम्य तथा अनुभवगम्य बनाता है। जिस प्रकार इतिहासकार तथ्यों के महासमुद्र से आवश्यक तथ्यों का चयन करता है, उसी प्रकार कारण तथा कार्य की कतिपय श्रृंखलाओं से इतिहासकार केवल उन्हीं कारणों का चयन करता है, जिनका ऐतिहासिक महत्व होता है।

इतिहासकार इतिहास लेखन के दौरान, व्याख्या एवं प्रभाव की अपेक्षा कारण को अधिक महत्व देता है। इस तारतम्य में डेवी ने लिखा है कि प्रभाव की अपेक्षा कारण का स्थान अधिक श्रेष्ठ होता है। इतिहासगत कारणों की व्याख्या में कल्पना का भी स्थान होता है। कल्पना ही वह गोंद है जो तथ्यपरक कारणों को जोड़ती है। इस गोंद रूपी कल्पना के अभाव में कारणों की क्रमबद्धता मुश्किल है। कॉलिंगवुड ने तो कल्पना को ऐतिहासिक ज्ञान का मूल स्रोत माना है। इस प्रकार इतिहास में इतिहासकार एवं उसके द्वारा कारणों की खोज का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

विभिन्न विद्वानों ने तथ्यों को इतिहास की रीढ़ एवं आंख माना है। नीत्शे एवं फूको ने इतिहास को अतीत के यथार्थ चित्रण की कोशिश कहा है अर्थात् इतिहास पूर्णतः यथार्थ न होकर यथार्थ चित्रण की कोशिश है। उनका कहना है कि तथ्य तो मात्र एक होता

है परंतु अनेक इतिहासकार उस एक तथ्य की अपने–अपने दृष्टिकोण से अलग–अलग व्याख्याएं करते हैं। कार ने तथ्यों को अतीत के अगाध समुद्र में तैर रही मछलियां माना है जिनमें से इतिहासकार अपनी रुचि के तथ्य चुनता है और अपनी रुचि के अनुसार उनकी व्याख्या करता है। अतः व्याख्या तथ्य के स्वरूप को बदल सकती हैं अर्थात् तथ्य एक और जितने इतिहासकार, उनकी उतनी व्याख्याएं। और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि अतीत हमारे सामने तो है नहीं, हम अतीत को जानने के लिए विभिन्न पुरातात्विक एवं साहित्यक स्रोतों पर आश्रित होते हैं। पुरातात्विक स्रोतों की अपनी सीमाएं हैं, अतः बहुधा हम उनका उपयोग साहित्यिक स्रोतों की यथार्थता को परखने में करते हैं परंतु साहित्यिक स्रोत समकालीन व्यक्तियों द्वारा लिखे गये हैं एवं वह भी सब कुछ तो नहीं लिख सकता और ऊपर से उसकी रुचि व पूर्वाग्रह तो होंगे ही ऐसे में अतीत को हम अपनी बुद्धि एवं विवेक द्वारा ही चित्रित कर सकते हैं और इतिहासकार एक मनुष्य है जिसकी बौद्धिक क्षमता न तो एक दिशा में सोचती और न ही एक समान होती, अतः प्रत्येक इतिहासकार अपने स्वविवेक से इतिहास की रचना करता है और प्रत्येक इतिहासकार अपनी विषय–वस्तु के अनुसार तथ्य संकलन–चयन की प्रक्रिया से गुजरता है और अपनी अलग–अलग व्याख्याएं करता है, ऐसे में विवाद तो होना स्वाभाविक ही है। उदाहरण के लिए, इतिहासकारों का एक वर्ग औरंगजेब को धर्मांध मानता है तो दूसरा वर्ग उसे धर्मांध मानने से इनकार करता है। अपने मतों को पुष्ट करने के लिए दोनों ही वर्ग तथ्यपरक प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार इतिहास में विवादों का होना स्वाभाविक ही है। इतिहास की विषय–वस्तु को लेकर विवाद तो होते ही हैं, सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इतिहास की अपनी परिभाषा पर भी आज तक सभी विद्वान एकमत नहीं हो पाये हैं। इतिहास कला है अथवा विज्ञान, इस पर भी विवाद बना रहा है। प्राचीन भारतीय इतिहास में आर्यों के मूल निवास को लेकर, मध्यकालीन भारतीय इतिहास में औरंगजेब की धर्मांधता को लेकर, आधुनिक भारतीय इतिहास में 1857 ई. में की क्रांति के स्वरूप को लेकर एवं विश्व इतिहास में क्रीमिया युद्ध के औचित्य को लेकर भारत में सामंतवाद को लेकर, पूंजीवाद के उदय एवं साम्राज्यवाद के उद्‌भव को लेकर, और ऐसे अनेकानेक विवाद इतिहास में सदा से बने रहे हैं। अतः इतिहास के विभिन्न विवादों के अध्ययन में भी इतिहास के पाठक की रुचि होना स्वाभाविक है। इतिहास के विवाद भी इतिहास के क्षेत्र में समान ही अत्यधिक हैं, अतः इतिहास के सभी विवादों की सांगोपांग विवेचना यहां करना संभव नहीं है, उसके लिए तो पृथक् पुस्तक का सृजन किया जाना आवश्यक है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. इतिहास लेखन हेतु एक इतिहासकार सर्वप्रथम क्या करता है?

   (क) वर्ण्य–विषयक का चयन (ख) सामग्री संकलन

   (ग) स्रोतों की खोज (घ) डाटा संग्रहण

4. इनमें क्या मुसलिम इतिहास लेखन के चरणों में शामिल नहीं है?

   (क) अरबों का संपर्क एवं संघर्ष काल (ख) सल्तनत काल

   (ग) मुगलकाल (घ) आधुनिककाल

1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (घ)
3. (क)
4. (घ)

1.5 सारांश

इतिहास ज्ञान का एक ऐसा स्रोत है, जो अपने आप में कई विषयों को समेटे हुए है। इतिहास का सर्वप्रमुख अर्थ यही है कि लोग वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में इससे प्रेरणा लेकर सुखद भविष्य का निर्माण करें। इतिहासकार का दायित्व है कि वह अतीत को अपने मस्तिष्क में सजीव कर इतिहास को एक सार्थक अर्थ प्रदान करे, जिससे कि लोग प्रेरणा ले सकें। वर्तमान को नियंत्रित कर सुखद भविष्य के लिए प्रेरणा प्रदान करना ही इतिहास का मूलभूत अर्थ है।

कालिंगवुड भी मानते हैं कि, "इतिहास एक विशेष प्रकार का विज्ञान है। यह घटनाओं का अध्ययन करता है जिसका पर्यवेक्षण संभव नहीं है। इन घटनाओं का अध्ययन अनुमान द्वारा किया जाता है, जो कुछ साक्ष्यों पर आधारित है।"

गोविन्द चंद्र पांडे के अनुसार, "इतिहास में यथार्थता के साथ–साथ विवरण संबंधी कुशलता, रोचकता, दृष्टांतों का चयन तथा चरित्र चित्रण की विशेषताओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस गंभीर अर्थ में इतिहास निश्चित तौर पर कला है।"

इतिहास के स्वरूप में कला एवं विज्ञान का सम्मिश्रण होना चाहिए, ताकि निर्जीव एवं नीरस ऐतिहासिक तथ्यों को वैज्ञानिक प्रविधि से परिष्कृत कर कलात्मक ढंग से लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया जा सके। जी.एम. ट्रेबेलियन ने भी इतिहास को कला एवं विज्ञान दोनों मानते हुए कहा है, "ऐतिहासिक तथ्यों की खोज प्रणाली वैज्ञानिक होनी चाहिए, किंतु पाठकों के सामने उसे कला की सहायता से प्रस्तुत करना चाहिए।

बिना स्रोतों के इतिहासकार एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। वर्ण्य विषय हेतु स्रोतों की खोज इतिहास लेखन का प्रथम एवं महत्वपूर्ण चरण है। स्रोतों की खोज एवं संकलन के उपरांत इतिहासकार को वर्ण्य विषय के लिए आवश्यक स्रोतों का चयन करना होता है। स्रोतों के चयन के उपरांत उसके उपयोग से पूर्व इतिहासकार को उस स्रोत की प्रमाणिकता का मूल्यांकन करना होता है। स्रोत की प्रमाणिकता के मूल्यांकन में इतिसकार का कौशल अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। स्रोत की प्रमाणिकता की जांच में इतिहासकार को स्वयं ही एक वैज्ञानिक एवं अधिवक्ता की भूमिका निभानी होती है।

अपनी अंतश्चेतना एवं समसामयिक रुचि को देखते हुए ही एक इतिहासकार स्रोतों के संकलन एवं उनमें निहित तथ्यों के प्रस्तुतीकरण में स्वयं न्यायाधीश, जूरी, वादी, प्रतिवादी, अधिवक्ता, जांचकर्ता एवं गुप्तचर होता है। इतिहासकार भली–भांति जानता है कि उसकी थोड़ी–सी भी गलती आने वाली पीढ़ी द्वारा माफ नहीं की जाएगी। अतः इतिहासकार को स्रोतों के मूल्यांकन में हरसंभव सावधानी बरतनी होती है।

किसी भी घटना के घटित होने के पीछे निहित कारणों की खोज इतिहासकार की योग्यता को दर्शाती है। इतिहासकार अपनी शोधपरक दृष्टि से कारणों की खोज करता है। एक ही घटना के कारणों की खोज विभिन्न इतिहासकार कारणत्तव के विभिन्न सिद्धांतों का उपयोग कर करते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से तथ्य एवं कारणों की खोज ही इतिहास है। डेलकार्ट पार्सन के अनुसार इतिहास एक चयन प्रक्रिया है। इतिहासकार वास्तविक कारणों को बोधगम्य तथा अनुभवगम्य बनाता है।

1.6 मुख्य शब्दावली

- **दृष्टिगोचर** : दिखाई देना।
- **मतैक्य** : एक मत।
- **मनोवृत्ति** : मन की आदत/स्वभाव।
- **आकस्मिक** : अचानक।
- **दैवी** : अलौकिक।
- **नियतिवाद** : भाग्यवाद।
- **उत्कृष्ट** : श्रेष्ठ/उत्तम।
- **अंतश्चेतना** : आंतरिक चेतनता।
- **जालसाजी** : धोखाधड़ी।
- **शाश्वत** : हमेशा कायम रहने वाला।

1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. इतिहास की प्रकृति से क्या आशय है?
3. तथ्यात्मक सामग्री से आप क्या समझते हैं?
4. राजनैतिक इतिहास से क्या तात्पर्य है?
5. कारणत्व के दो सिद्धांत बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास को परिभाषित करते हुए इसके क्षेत्र की विवेचना कीजिए।
2. इतिहास विज्ञान है, कला है या दोनों? विश्लेषण करते हुए लिखिए।
3. इतिहास लेखन में स्रोतों के महत्व पर प्रकाश डालिए।
4. साक्ष्य तथा उनके संचरण से क्या आशय है? व्याख्यात्मक उत्तर दीजिए।
5. 'करणीयता और इतिहासवाद' पर सारगर्भित टिप्पणी लिखिए।

1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. कार ई.एच., इतिहास क्या है, अनुवाद अशोक चक्रधर, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1993.
2. चौबे झारखंडे, इतिहास दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1999.
3. थापर रोमिला, इतिहास की पुनर्व्याख्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991.
4. पांडेय गोविंद चंद्र, इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धांत, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1993.
5. पांचाल एवं बघेला, इतिहास के सिद्धांत एवं पद्धतियां, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर.
6. बुद्ध प्रकाश, इतिहास दर्शन, हिंदी समिति, प्रयाग, 1962.
7. राय कौलेश्वर, इतिहास दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, 1999.
8. लोहिया राममनोहर, इतिहास चक्र, लहर प्रकाशन, इलाहाबाद, 1935.
9. वर्मा लालबहादुर, इतिहास के बारे में, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000.
10. शर्मा रामविलास, इतिहास दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995.
11. सांकृत्यायन राहुल, अतीत से वर्तमान, विद्या मंदिर प्रेस, वाराणसी, 1956.
12. श्रीवास्तव बी.के., इतिहास लेखन : अवधारणा, विधाएं एवं साधन, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा, 2008.

इकाई 2 इतिहास तथा अन्य शास्त्र : पुरातत्व विज्ञान, भूगोल, मानव विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, राजनीति शास्त्र एवं साहित्य

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 इतिहास और पुरातत्व विज्ञान
2.3 इतिहास और भूगोल
2.4 इतिहास और मानव विज्ञान
2.5 इतिहास और समाजशास्त्र
2.6 इतिहास और अर्थशास्त्र
2.7 इतिहास और दर्शनशास्त्र
2.8 इतिहास और राजनीति शास्त्र
2.9 इतिहास और साहित्य
2.10 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.11 सारांश
2.12 मुख्य शब्दावली
2.13 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.14 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

विद्वानों ने इतिहास को सभी विषयों के निवास गृह की संज्ञा दी है। अर्नोल्ड जे. टायंबी ने लिखा है–'मानव जीवन से संबंधित समस्त कार्य–व्यापार इतिहास की विषय–वस्तु है।' ए.एल. राइज ने इतिहास की विषय–वस्तु के अंतर्गत भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, भू–व्यवस्था, प्रशासनिक व्यवस्था, उद्योग व्यापार आदि सभी पक्षों को रखा है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इतिहास की परिधि अत्यंत व्यापक है। इतिहास एक ऐसा विषय है जिसे कभी पुरातत्व से, कभी–कभी भूगोल से, कभी मानव विज्ञान से, कभी समाज शास्त्र में, कभी अर्थशास्त्र में तो कभी विज्ञान के साथ सह संबंधित किया जाता है। इन विषयों के साथ इतिहास का सह संबंध कई महत्वपूर्ण तथ्य उजागर करता है। डॉ. जान्सन ने तो इतिहास को सभी विज्ञानों की पृष्ठभूमि कहा है।

समय के साथ इतिहास लेखन की परंपरा में भी परिवर्तन आया है। आज इतिहास मात्र राजा–रानियों की गाथा एवं उत्थान पतन की कहानी न होकर मानव के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संबंधों का लेखा–जोखा भी है। राजनीतिक इतिहास के स्थान पर आज सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक इतिहास लेखन पर जोर दिया जा रहा है। आज इतिहास मात्र अतीत की घटनाओं का लेखा जोखा न रहकर

सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का दायित्व निभा रहा है। वर्तमान में प्रखर अर्थशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ समस्याओं का समाधान अतीत के उदाहरणों अर्थात इतिहास में खोजने का प्रयास करते हैं। अर्थशास्त्रियों एवं राजनीतिज्ञों द्वारा प्रस्तुत समाधान ही आगामी इतिहास की पृष्ठभूमि का निर्माण करता।

पुरातत्व इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है। इतिहास के अध्ययन में भौगोलिक मानचित्र का अध्ययन अति आवश्यक है। अतः इतिहास के अध्ययन में सभी विषयों का अध्ययन आवश्यक है। ट्रेवेलियन ने इतिहास को सभी विषयों का आवास स्थल बताया है। ऐतिहासिक तथ्यों की व्याख्या में विभिन्न विषयों का समन्वय उन्हें सहज, सरल एवं बोधगम्य बनाता है।

इस इकाई में हम इतिहास के पुरातत्व विज्ञान, मानव विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान आदि के साथ सह–संबंध की विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- इतिहास का पुरातत्व विज्ञान एवं भूगोल से संबंध जान पाएंगे;
- इतिहास मानव विज्ञान, समाजशास्त्र व अर्थशास्त्र से कैसे संबंधित है– यह समझ पाएंगे;
- इतिहास का दर्शनशास्त्र, राजनीति शास्त्र एवं साहित्य से सह–संबंध रेखांकित कर पाएंगे।

2.2 इतिहास और पुरातत्व विज्ञान

पुरातत्व इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है। इतिहासविद एवं पुरातत्ववेत्ता राहुल सांकृत्यायन ने कहा है कि जिस ऐतिहासिक तथ्य को पुरातत्व का समर्थन प्राप्त नहीं है उसकी नींव बालू पर टिकी होती है। इतिहास के तहत हम अतीत में मानव के क्रिया–कलाप का अध्ययन करते हैं। पुरातत्व विज्ञान के अंतर्गत अतीत में मानव के क्रिया–कलापों का स्वरूप निर्धारित किया जाता है। इस तरह इतिहास एवं पुरातत्व दोनों की विषय वस्तु अतीत में मानव के क्रिया–कलाप हैं। प्राचीनतम अतीत में जब कागज का आविष्कार नहीं हुआ था तब मानव द्वारा उत्कीर्ण शिला–लेख, उसके द्वारा निर्मित एवं प्रयुक्त वस्तुएं पुरातत्व के अध्ययन की परिधि में आती हैं।

पुरातत्व विज्ञान के तहत अतीत में निर्मित स्मारक, भवन, किले, स्तंभ, मंदिर, मूर्तियां, खिलौने, गुफाएं, पाषाण उपकरण, धात्विक अवशेष, शैलचित्र, सिक्के, अभिलेख, मुहरें, मनके, ताम्रपत्र, अस्थि उपकरण, कष्ठ अवशेष, शंख उपकरण, व चूडियां, अन्न के दाने इत्यादि का अध्ययन किया जाता है। इतिहास के अध्ययन में भी ये सभी पुरातात्विक स्रोतों के तहत उपयोग किया जाता है। प्रागैतिहास के तहत पाषाण कालीन आदि मानव द्वारा उपयोग में लाए पाषाण उपकरण, उसके द्वारा मारे गये पशुओं की अस्थियों, खाए गए फलों के अवशेष, एवं अन्य जैविक व वनस्थलीय अवशेषों का अध्ययन किया जाता है।

इतिहास में कालक्रम का विशेष महत्व है। पुरातात्विक अवशेषों का काल निर्धारण कर उस समय विशेष का इतिहास पता किया जा सकता है। कालक्रम निर्धारण हेतु सी–14 विधि एवं परागकण विधि का उपयोग किया जाता है। पुरातात्विक अवशेषों की व्याख्या कर इतिहासकार, इतिहास का निर्माण करता है। विभिन्न इतिहासकार, अपने–अपने दृष्टिकोण से इन पुरावशेषों की व्याख्या एवं विश्लेषण करते हैं।

इतिहास का यदि किसी विषय से निकट का अथवा घनिष्ठ संबंध है तो वह विषय पुरातत्व विज्ञान ही है। इतिहास लेखन में मुख्यतः दो प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया जाता है। एक साहित्यिक स्रोत एवं दूसरे पुरातात्विक स्रोत। चूंकि पुरातात्विक स्रोत अधिक प्रमाणिक होते हैं अतः साहित्यिक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों की पुष्टि पुरातात्विक स्रोतों से करके ही उनका उपयोग इतिहास लेखन में किया जाता है। पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर लिखा गया इतिहास ही प्रमाणिक इतिहास माना जाता है।

पुरातत्वविद राहुल सांकृत्यायन इतिहास में यथार्थवाद से एक जौ भी इधर–उधर होने को क्षम्य नहीं मानते। पुरातात्विक सामग्री के महत्व को रेखांकित करते हुए वे लिखते हैं कि 'ऐतिहासिक यथार्थवाद की रक्षा तभी हो सकती है, जबकि इतिहास उस सामग्री पर आधारित हो जो वर्णित व्यक्ति, या समाज की समसामयिक हो। समसामयिक चीजें अधिकतर भंगुर होती हैं, इसलिये हम जितने अधिक पुराने इतिहास में घुसते हैं, उसकी सामग्री कम होती जाती है। चाहे वह सामग्री कितनी ही कम क्यों न हो पर प्रत्यक्षदर्शी होने से सर्वोपरि साक्ष्य या प्रमाण वही हो सकती है। बड़ी (पुरातात्विक सामग्री) इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है।

सुदूर अतीत से संबंधित होने के कारण प्राचीन इतिहास के स्रोत बिखरे हुए हैं। ये बिखरे हुए ठीकरें इतिहास की स्रोत सामग्री के रूप में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं। प्राचीन कालीन साहित्यिक स्रोतों में साहित्यकार की कल्पना, तिथि का अभाव एवं क्षेपकों की उपस्थिति के कारण उनके अंतर्निहित तथ्यों की प्रमाणिकता संदिग्ध रहती है। ऐसी स्थिति में हम पुरातात्विक स्रोतों का उपयोग कर वास्तविकता की तह तक पहुंचते हैं।

प्राचीन इतिहास को प्रागैतिहासिक, आद्य ऐतिहासिक काल एवं ऐतिहासिक काल में बांटा गया है। प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य को लिपि की जानकारी नहीं थी। आद्य ऐतिहासिक काल में लिपि के साक्ष्य तो प्राप्त हुये हैं मगर वह लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। ऐतिहासिक काल वह काल है जिसमें लिपि के साक्ष्य भी है व वह लिपि पढी भी जा सकती है। अतः प्रागैतिहासिक काल एवं आद्य ऐतिहासिक काल की जानकारी के लिए हमें पूर्णतः पुरातात्विक स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है।

पुरातात्विक स्मारकों में प्राचीन इमारतें, मंदिर, मूर्तियां, स्तूप, राजप्रसाद आदि आते हैं। इनसे काल विशेष की कला शैली एवं वास्तुज्ञान का पता चलता है। ये स्मारक तद्युगीन सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति का भी बोध कराते हैं। खजुराहो, भुवनेश्वर एवं चालुक्य तथा चोलकालीन मंदिर प्राचीन भारतीय हिंदू वास्तु एवं स्थापत्य कला के उत्कृष्ट स्वरूप के परिचायक हैं।

उक्त विभिन्न पुरातात्विक साक्ष्यों को जोड़कर देखने पर इतिहास की सही तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत होती है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार बिखरे हुए पुरातात्विक ठीकरें अलग देखने पर वह अपनी कहानी नहीं बतला सकते, उनके मुंह से

पूरी कहानी तभी सुनी जा सकती है जबकि वह जोड़ दिये जाएं। इतिहास के यह ठीकरे बर्तनों के ठीकरें भी हैं। आदमी के हाथ से कटे–गढ़े ईंट और पत्थर तो और भी अधिक महत्व रखते हैं, शिलालेख ताम्रलेख और सिक्कों के बारे में तो कहना ही क्या?

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुरातात्विक वस्तुएं इतिहास जानने का सर्वश्रेष्ठ साधन हैं परंतु इसके लिए वैज्ञानिक प्रविधि से यह देखना होता है कि वह पुरातात्विक वस्तु किस काल की है। पुरातत्वविदों द्वारा प्रतिपादित काल निर्णय के स्तरीकरण सिद्धांत के द्वारा उस वस्तु की प्राचीनता का पता चलता है। पिटरिवर्स (1835–1902 ई.) ने पुरातत्व स्तरीकरण के वैज्ञानिक अध्ययन एवं विवेचना की नींव डाली। भारत में पुरातत्व के स्तरीकरण के सिद्धांत के अनुसार, यदि कोई भू–गार्भिक उथल–पुथल नहीं हुआ है तो सबसे निचले स्तर से प्राप्त पुरावशेष प्राचीनतम एवं सबसे ऊपर के स्तर से प्राप्त होने वाले पुरावशेष नवीनतम होंगे।

स्तरीकरण के सिद्धांत के अलावा अन्योन्याश्रय कलानुक्रम के सिद्धांत द्वारा भी पुरातात्विक अवशेषों का काल निर्धारित किया जा सकता है। अन्योन्याश्रय कलानुक्रम के महत्व की ओर पुरातत्ववेत्ताओं का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय मिस्र के फ्लिण्डर्स पैरी को जाता है। जय नारायण पांडेय के अनुसार, ''जब अज्ञात पुरावशेषों, स्तरों, सांस्कृतिक कालों तथा पुरास्थलों का कालक्रम किसी ज्ञात पुरावषेश या पुरावषेशों के आधार पर निर्धारित किया जाता है तो उसे अन्योन्याश्रय कलानुक्रम कहा जाता है।''

2.3 इतिहास और भूगोल

एक विषय के रूप में इतिहास के अध्ययन के लिए भूगोल का अध्ययन अति आवश्यक प्रतीत होता है। जॉनसन ने लिखा है कि भूगोल के बिना इतिहास तथा इतिहास के बिना भूगोल दोनों की ही कल्पना करना असंभव है। इतिहास के चार प्रमुख साधनों व्यक्ति, स्थान, घटना एवं काल में से प्रथम तीन साधनों व्यक्ति, स्थान एवं घटना का संबंध भूगोल से ही है। इतिहास में हम मानवीय कार्य व्यापार का अध्ययन करते हैं और भौगोलिक कारक भारतीय कार्य व्यापार को प्रभावित करते हैं, अतः एक इतिहासकार को भौगोलिक कारकों के परिप्रेक्ष्य में ही मानवीय कार्य व्यवहार का अध्ययन करना होता है। इतिहास में हम कुछ ऐसे विशिष्ट स्थानों का भी अध्ययन करते हैं जहां विशिष्ट घटनाएं घटित हुई हों। घाटे के अनुसार मानव को अपनी भूमिका अभिनय करने के लिए भूगोल (स्थान के रूप में) एक रंगमंच प्रस्तुत करता है। यहीं नहीं, विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं को भी भौगोलिक कारकों ने प्रभावित किया है।

भौगोलिक खोजों एवं उपकरणों का इतिहास में महत्व

इतिहास को गति, दिशा एवं अर्थ प्रदान करने में भौगोलिक खोजों एवं भौगोलिक उपकरणों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भौगोलिक खोजों का आधुनिक इतिहास में बड़ा महत्व है क्योंकि इनके परिणामस्वरूप विश्व में एक नवीन युग का प्रादुर्भाव हुआ। यूरोप एवं एशिया की जो सभ्यताएं पहले एक दूसरे से अलग थीं, भौगोलिक खोजों के द्वारा वे एक दूसरे के घनिष्ठ रूप से संपर्क में आयीं। इस प्रकार समुद्र से दूर यूरोपीय राष्ट्रों की भौगोलिक खोजों संबंधी उपलब्धियों के फलस्वरूप विश्व इतिहास के उत्कर्ष का आरंभ हुआ।

चौदहवीं शताब्दी के पहले यूरोपीयों का भौगोलिक ज्ञान न केवल अपूर्ण था अपितु अंधविश्वासों से युक्त था। मध्ययुग में वे पृथ्वी को चपटी मानते थे परंतु भौगोलिक अनुसंधानों से उन्हें इस वास्तविकता का पता चला कि पृथ्वी गोल है एवं पश्चिम की ओर समुद्र में यात्रा करके भी पूर्व में पहुंचा जा सकता है। वैज्ञानिक उपकरणों की खोज ने अब समुद्र में यात्रा करना सुगम बना दिया। 13वीं शताब्दी के अंत में यूरोपीयों को सर्वप्रमुख भौगोलिक उपकरण 'कुतुबनुमा' (दिशासूचक यंत्र) का ज्ञान हुआ। उसके बाद वे एस्ट्रोलेव (अक्षांश जानने का उपकरण) से भी परिचित हुए। विश्व इतिहास को दिशा एवं गति प्रदान करने में इन भौगोलिक उपकरणों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अब यूरोपीयों ने समुद्र यात्रा पर विजय प्राप्त कर ली। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है, इस कथन के परिप्रेक्ष्य में नौचालन उपकरणों में सुधार हुआ एवं अधिक पालों और पतवारों वाले जहाज निर्मित किये जाने लगे।

पुर्तगाल के राजकुमार हेनरी (1394–1460 ई.) जिसे 'हेनरी द नेवीगेटर' भी कहा जाता है, ने भौगोलिक खोजों को प्रोत्साहन दिया। पुर्तगाल के वार्थोलोम्युडियाज, स्पेन के क्रिस्टोफर कोलम्बस, पुर्तगाल के वास्कोडिगामा एवं मैगलन आदि के प्रयासों ने सारे विश्व को भौगोलिक अनुसंधानों द्वारा खोज निकाला। इन खोजों के परिणामस्वरूप लोग समूचे संसार से परिचित हुए और विश्व के देश एक दूसरे के संपर्क में आये। यूरोप के आर्थिक इतिहास की दृष्टि से उक्त भौगोलिक खोजों ने उनके व्यापार एवं वाणिज्य में क्रांतिकारी परिवर्तन किए और इन्हीं भौगोलिक खोजों ने यूरोप के लोगों को इतिहास में प्रमुखता प्रदान की व समस्त विश्व का भाग्य विधाता बना दिया।

वर्तमान में भी न केवल इतिहासकारों को अपितु इतिहास के शिक्षक, विद्यार्थियों एवं पाठकों को भी इतिहास लिखने, पढने एवं समझने के लिए भौगोलिक मानचित्र, रेखाचित्र, एटलस, ग्लोब आदि काफी सहयोग कर सकते हैं। विश्व के प्रमुख युद्धों, विभिन्न साम्राज्यों के सीमा विस्तार को भौगोलिक मानचित्रों द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। विभिन्न युद्धों में रेखाचित्रों द्वारा दोनों पक्षों की सेना की जमावट को देखकर हम युद्ध की जीत हार का सूक्ष्म विश्लेषण कर सकते हैं। कई युद्धों की जीत–हार में भौगोलिक परिस्थितियों ने भी महती भूमिका निभाई है। अतः बिना भूगोल के इतिहास को लिखना, समझना एवं आत्मसात करना काफी मुश्किल कार्य है।

इतिहास लेखन में भूगोल की भूमिका

राहुल सांकृत्यायन इतिहास लेखन में भौगोलिक अध्ययन को महत्वपूर्ण मानते थे। उनके अनुसार 'ऐतिहासिक अनौचित्य से बचने के लिए जिस तरह तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री और इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन आवश्यक है, वैसे ही भौगोलिक अध्ययन की भी आवश्यकता है।' इतिहास लेखन के समय भौगोलिक मानचित्रों की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उन्होंने यह भी लिखा था कि ''जिस तरह ऐतिहासिक मानदंड स्थापित करने के लिए तत्कालीन राजाओं के राज्य और शासनकाल की पहले से ही तालिका बनाकर उसमें वर्णनीय घटनाओं के अध्याय क्रम को टांक लेना जरूरी है, उसी तरह भौगोलिक स्थानों, उनकी दिशाओं और दूरियों का ठीक–ठीक अंदाज रखने के लिए तत्संबंधी नक्शे का खाका हर वक्त हमारे सामने रखना चाहिये। नक्शा तो बल्कि हमारे मानस पटल पर अंकित हो जाना चाहिए।''

इतिहास लेखन में भौगोलिक मानचित्रों एवं रेखाचित्रों का प्रयोग वर्तमान समय की प्रमुख मांग है। आज के इतिहास का विद्यार्थी एवं पाठक वही इतिहास पढ़ना पसंद करता है जो कि भौगोलिक मानचित्रों एवं रेखाचित्रों से परिपूर्ण हो। वस्तुतः इतिहास की कुछ घटनाएं यदि भूगोल की मदद से समझाई जाएं तो पाठकों के लिए वे आसानी से बोध गम्य हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, सिकंदर का भारत पर आक्रमण का मार्ग, फाह्यान एवं हवेनसांग की भारत यात्रा का मार्ग, प्राचीन भारत के व्यापारिक मार्ग, समुद्रगुप्त का दिग्विजय अभियान, नेपोलियन बोनापार्ट का विजय अभियान, भौगोलिक खोजें, अशोक के अभिलेख प्राप्ति स्थल, हड़प्पा सभ्यता के प्रमुख स्थल, अशोक, समुद्रगुप्त, अलाउद्दीन खिलजी, अकबर, औरंगजेब एवं डलहौजी के समय भारतीय साम्राज्य की सीमाएं, 1815 ई. की वियेना कांग्रेस की व्यवस्था, बर्लिन सम्मेलन में परिवर्तित मानचित्र व्यवस्था, पेरिस शांति सम्मेलन द्वारा निर्धारित सीमाएं, प्रथम एवं द्वितीय अफीम युद्ध में चीन में अंग्रेजों द्वारा प्राप्त बंदरगाह आदि को यदि मानचित्र व रेखाचित्र द्वारा भी समझा दिया जावे तो उक्त सभी घटनाक्रम को पाठक आसानी के साथ समझ सकेगा। भौगोलिक मानचित्रों एवं रेखाचित्रों द्वारा ऐतिहासिक घटनाक्रम को हवा की स्थिति से वास्तविक धरातल पर लाया जा सकता है। यहां यह अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिये कि मानचित्रों एवं रेखाचित्रों का उपयोग प्रकरण को लिखते समय उपयुक्त स्थल पर किया जाना चाहिये। जिस स्थान पर हम यह जिक्र कर रहे हैं कि 1842 ई. की नानकिंग संधि द्वारा अंग्रेजों ने चीन में केंटन, अमोय, फूची, निगप्पो, शंघाई आदि पांच बंदरगाहों में व्यापार हेतु सुविधाएं प्राप्त कीं तो इसी स्थान पर पांच बंदरगाहों का मानचित्र लगाया जाना चाहिये।

ऐतिहासिक घटनाओं पर भौगोलिक कारकों का प्रभाव

विश्व की विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं पर भौगोलिक कारकों का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। किसी न किसी रूप में भौगोलिक कारक इतिहास पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। भूगोल एक स्वयं सिद्ध विज्ञान है जिसके उपयोग से विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं के कारण, प्रभाव और कार्यों को बोधगम्य तरीके से समझा व समझाया जा सकता है। इतिहास में वर्णित विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं अन्य प्रकार की घटनाएं किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षतः भौगोलिक कारणों से प्रभावित होती हैं।

अन्य कारणों के साथ–साथ भौगोलिक कारक किस प्रकार इतिहास की दिशा बदलते हैं, इसका भारतीय संदर्भ में एक अच्छा उदाहरण शेरशाह सूरी द्वारा हुमायूं की चौसा एवं विलग्राम के युद्ध में हुई पराजय के रूप में मिलता है। इन दोनों ही युद्धों में भौगोलिक कारकों का लाभ उठाकर शेरशाह सूरी ने न केवल हुमायूं को परास्त किया अपितु भारत में मुगल साम्राज्य को कुछ समय के लिए समाप्त कर अफगान साम्राज्य की स्थापना की। हुमायूं चौसा के युद्ध के समय तीन माह (अप्रैल से 26 जून, 1939 ई. तक) शेरशाह के सामने सेना सहित डटा रहा लेकिन आक्रमण नहीं किया। उधर चतुर शेरशाह बरसात के मौसम आने का इंतजार कर रहा था क्योंकि मुगल शिविर कर्मनाशा और गंगा नदी के बीच निचले स्थान पर था। हुमायूं अदूरदर्शी था अतः वह यह तथ्य न समझ पाया। जैसे ही वर्षा आरंभ हुई, मुगल शिविर में पानी भरने के कारण अव्यवस्था फैल गई, शेरशाह ने 26 जून, 1539 ई. को आक्रमण कर हुमायूं को

परास्त कर दिया। इससे भी हुमायूं ने कोई सबक नहीं सीखा और एक बार पुनः 17 मई, 1540 ई. को विलग्राम के युद्ध में यही भौगोलिक कारक उसकी हार का कारण बने। मुगल शिविर विलग्राम के निकट गंगा से तीन मील की दूरी पर लगा था। 15 मई, 1540 ई. को भारी वर्षा के कारण मुगल कैम्प में पानी भर गया। इससे पहले कि मुगल ऊंचे स्थल पर शिविर लगाने की सोचते, शेरशाह ने उक्त भौगोलिक कारकों को अपने पक्ष में भुनाते हुए एक तीव्र आक्रमण कर न केवल हुमायूं को परास्त किया अपितु भारत में अफगान साम्राज्य की स्थापना की। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि साम्राज्यों के उत्थान एवं पतन में भी किसी हद तक भौगोलिक कारक अपनी भूमिका निभाते हैं।

भारत में बाबर द्वारा मुगल साम्राज्य की स्थापना पानीपत के प्रथम युद्ध 21 अप्रैल, 1526 ई. में इब्राहिम लोदी को परास्त कर की गई थी। इस युद्ध में बाबर की विजय का एक कारण युद्ध स्थल पर तुलुगमा का प्रयोग एवं सेना के अग्रभाग की रक्षा के लिए जंजीर से बंधी हुई गाड़ियों की कतार से सम्पन्न सैन्य जमावट थी। इस कुशल सैन्य सजावट पर प्रकाश डालते हुए डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि ''बाबर ने सात सौ गतिशील गाड़ियों की पंक्तियों को गीला खाल के रस्सों से आपस में बांधकर अपनी सेना की रक्षार्थ फौज के आगे खड़ा कर दिया था। गाड़ियों के बीच उसने काफी रास्ता छोड़ रखा था जिसमें होकर उसके सैनिक आक्रमण कर सकें। उसने तोपों के प्रत्येक जोड़े के मध्य छः सात गतिशील बचाव स्थान टूरा खड़े कर रखे थे जिससे तोपचियों को शरण प्राप्त हो सके। इस रक्षात्मक श्रेणी के पीछे ही तोपखाना व्यवस्थित था। उस्ताद अली प्रमुख तोपची दाहिनी ओर था और मुस्तफा प्रमुख तोपचीं बायीं ओर। तोपखाने के पीछे उसके अग्रगामी रक्षकों का जमाव था जिसकी कमान खुसरू कोकुल्ताश और मुहम्मद अली जंग के हाथों में थी। इसके पीछे सेना का केंद्र स्थल (गुल) था जहां बाबर स्वयं संचालक के रूप में उपस्थित था। यह केंद्र दाहिना केंद्र और बायां केंद्र के नाम से दो खंड़ों में विभाजित था। बाबर की सेना का दाहिना अंग कटे हुए पेड़ों तथा मिट्टी की दीवार और खाइयों से सुरक्षित किया गया था। सेना के दाहिने अंग की कुछ दूरी पर तुलुगमा नियुक्त किया गया था और सेना के बायें अंग की बायीं तरफ कुछ दूर दूसरे तुलुगमा को स्थान दिया गया था। इस पंक्ति की दाहिनी ओर ठीक सिरे पर किलेबंदी करने वाला दाहिना दल (दाहिना तुलुगमा) अवस्थित था।''

बाबर की सेना की उक्त जमावट से स्पष्ट है कि उसने युद्ध क्षेत्र में एक कुशल वैज्ञानिक प्रणाली का समन्वय किया था। मगर मात्र लिखकर हम इस सैन्य जमावट को अच्छी तरह से अपने पाठकों को नहीं समझा सकते। इसे यदि भौगोलिक रेखाचित्र द्वारा समझाया जाए तो पाठक आसानी से इसे समझ सकते हैं।

ठीक इसी प्रकार अहमदशाह अब्दाली एवं सदाशिव राव भाऊ के बीच 1761 ई. में सम्पन्न पानीपत के तृतीय युद्ध की सैन्य जमावट को रेखाचित्र द्वारा आसानी से समझा जा सकता है।

युद्ध स्थिति को प्रदर्शित करने वाले रेखाचित्रों के द्वारा युद्ध स्थल की भौगोलिक जमावट को आसानी से समझाया जा सकता है। इनका सूक्ष्म अवलोकन कर पाठक स्वविवेक से भी समझ सकता है कि विजयी पक्ष क्यों जीता एवं पराजित की हार क्यों हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास लेखन, इतिहास शिक्षण एवं इतिहास अध्ययन तीनों में ही भौगोलिक मानचित्रों का प्रयोग इतिहास को एक ठोस धरातल

प्रदान करता है। इतिहास में मानव के कार्य व्यवहार का अध्ययन किया जाता है एवं मानवीय कार्य व्यापार भौगोलिक कारकों द्वारा प्रभावित रहता है अतः इतिहास में भौगोलिक परिस्थितियों के सापेक्ष में ही घटनाओं को समझा जाना चाहिये। जॉनसन ने तो काल एवं भूगोल को इतिहास का नेत्र बताकर इतिहास तथा भूगोल के संबंधों के महत्व को रेखांकित किया है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इतिहास एवं भूगोल एक दूसरे के पूरक हैं। वे अन्योन्याश्रित रूप से एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबद्ध हैं। अतः इतिहास तथा भूगोल एक दूसरे को परस्पर प्रभावित करते हैं। अंततः भूगोल के अनुप्रयोग द्वारा इतिहास लेखन, शिक्षण एवं अध्ययन को वैज्ञानिक के साथ–साथ सहज, सरल एवं सुबोध बनाया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. पुरातत्व स्तरीकरण के वैज्ञानिक अध्ययन एवं विवेचना की नींव किसने डाली?
   (क) राहुल सांकृत्यायन (ख) डॉ. जॉनसन
   (ग) पिटरिवर्स (घ) जयनारायण पांडेय
2. इतिहास के प्रथम तीन साधनों व्यक्ति, स्थान एवं घटना का संबंध इनमें से किससे है?
   (क) भूगोल (ख) पुरातत्व विज्ञान
   (ग) मानव विज्ञान (घ) अर्थशास्त्र

2.4 इतिहास और मानव विज्ञान

एक विषय के रूप में मानवशास्त्र इतिहास का ही प्रमुख अंग है। यह कहना भी अतिश्योक्ति न होगी कि मानवशास्त्र इतिहास का एक ऐसा अंग है जिसे पृथक नहीं किया जा सकता। इतिहास एवं मानवशास्त्र दोनों के ही अध्ययन का प्रमुख केंद्र मानव है। इतिहास में जहां हम मानव के क्रियाकलापों के अध्ययन पर जोर देते हैं, वहीं मानवशास्त्र के तहत हम मानव के उद्‌भव एवं विकास का अध्ययन करते हैं परंतु मानव एवं उसकी संस्कृति का अध्ययन इतिहास तथा मानवशास्त्र दोनों की ही प्रमुख विषय–वस्तु है।

एक स्वतंत्र वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में मानव विज्ञान का विकास उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हुआ, इससे पूर्व यह विषय सामान्यतः इतिहास का ही अंग माना जाता है। संभवतः मानवशास्त्र का एक स्वतंत्र विषय के रूप में उद्‌भव इतिहास संबंधी 19वीं शताब्दी की वैज्ञानिक अवधारणा की देन है। डिल्थे के अनुसार, "विज्ञान के तहत प्रकृति का अध्ययन किया जाता है तथा इतिहास में अध्ययन का प्रमुख केंद्र मानव होता है।" सर जॉन मायर्स के अनुसार, "प्रकृति तथा मनुष्य का संबंध इतना घनिष्ठ है कि इसे एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। अतः इतिहास को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने के पीछे एकमात्र निहित लक्ष्य समाज में मानवीय अवस्था एवं परिस्थितियों को नियंत्रित करने वाले कारकों का प्रकटीकरण था। विज्ञान प्रकृति का अध्ययन है, अतः अन्य परिस्थितियों के साथ–साथ प्राकृतिक परिवेश में भी मानवीय कार्यों एवं उपलब्धियों का अध्ययन इतिहास में किया जाता है।"

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्राकृतिक विज्ञानों का विकास आरंभ हुआ। प्राणी जगत के अन्य सदस्यों के साथ मनुष्य जाति के भिन्न–भिन्न समूहों के वैज्ञानिक वर्गीकरण के प्रथम प्रयत्न इसी समय हुए। मनुष्य को प्रकृति का अंग मानकर उसका अध्ययन करने के इन प्रारंभिक प्रयत्नों में मानव विज्ञान का जन्म हुआ। नेतृत्ववेत्ता (Anthropologist) शब्द अरस्तू द्वारा गढ़ा गया है। अठारहवीं शताब्दी के जर्मन आदर्शवादी कांट ने 1789 ई. में एंथ्रोपोलोजी शीर्षक की एक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने मनुष्य की पशु उत्पत्ति को प्रस्तावित किया। 1822 ई. में ब्रिटिश इनसाइक्लोपीडिया में इस शब्द का समावेश हुआ। अंग्रेजी भाषा में एंथ्रोपोलोजी नेतृत्व शब्द की उत्पत्ति दो मूल शब्दों एंथ्रोपॉस और लॉगॉस से हुई है जिनके अर्थ क्रमशः मनुष्य और विज्ञान हैं। एडवर्ड टेलर ऐसे प्रथम व्यक्ति थे जिन्हें ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में 1884 ई. में शिक्षक का स्तर मिला। एडवर्ड टेलर मानवशास्त्र के महान प्रणेताओं में से एक थे। सामान्य मानवशास्त्र का पहला पाठ्यक्रम वर्माण्ट यूनिवर्सिटी में सर्वप्रथम 1885 ई. में लागू किया गया।

इतिहास एवं मानवशास्त्र में समानताएं

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानवशास्त्र वस्तुतः इतिहास की ही संतति है। अतः इतिहास से मानवशास्त्र को पूर्णतः पृथक करके नहीं देखा जा सकता। अब हम इतिहास एवं मानवशास्त्र की कुछ परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में इनके सह–संबंध को देखने का प्रयास करेंगे।

ई.ए. होबल ने अपनी कृति 'मैन इन प्रिमिटिव वर्ल्ड' में मानवशास्त्र को परिभाषित करते हुए लिखा है–"मानवशास्त्र मानव एवं उसके संपूर्ण कार्यों का अध्ययन है।"

राल्फ बील्स के अनुसार, "मानवशास्त्र मनुष्य के शारीरिक और सांस्कृतिक विकास के नियमों तथा सिद्धांतों का अनुसंधान करने वाला विज्ञान है।"

टी.के. पन्निमैन के अनुसार, "मानवशास्त्र मानव का विज्ञान है। एक दृष्टिकोण से यह प्राकृतिक इतिहास की एक शाखा है जिनके अंतर्गत जीवन प्रकृति के क्षेत्र में मानव की उत्पत्ति और स्थान का अध्ययन आता है। दूसरे दृष्टिकोण से मानवशास्त्र इतिहास का विज्ञान है।"

फैंज बोआस के अनुसार, "मानवशास्त्र मानव का अध्ययन एक सामाजिक प्राणी के रूप में करता है।"

ई.ए. होबेल ने सामाजिक मानवशात्र की परिभाषा भी दी है जो इस प्रकार है– "सामाजिक मानवशास्त्र सामाजिक व्यवहार और सामाजिक समूहों के संगठन अथवा समाज रचना के अध्ययन पर अपना लक्ष्य केंद्रित करता है।"

अब हम इतिहास की कुछ परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे।

सर चार्ल्स फर्थ के अनुसार, "इतिहास मानव समाज का लेखा जोखा है। यह उन परिवर्तनों को बतलाता है जिनसे समाज गुजरा है। यह उन विचारों को भी बतलाता है जिसने समाज के क्रियाकलापों तथा भौतिक दशाओं को प्रभावित किया है।" ए.एल. राउज के अनुसार, "इतिहास प्रधानतः समाज में मानव का, उसके भौगोलिक एवं भौतिक पर्यावरणों का लेखा–जोखा है।"

कालिंगवुड के अनुसार, "इतिहास अतीत संबंधी मानवीय कार्यों का अध्ययन है।"

प्रो. गुस्तावन ने तो इतिहास को मानव ज्ञान की शिखर चोटी की संज्ञा दी है।

मानवशास्त्र एवं इतिहास की उक्त परिभाषाओं का अध्ययन करें तो ये दोनों ही विषय एक दूसरे से पूरी तरह सह–संबंधित (Corelated) प्रतीत होते हैं। ई.ए. होबल की मानवशास्त्र की एवं कॉलिंगवुड की इतिहास की परिभाषाओं को देखें तो दोनों ही विषयों का संबंध मानवीय कार्यों के अध्ययन से है। होबल की सामाजिक मानवशास्त्र की परिभाषा एवं फ्रैंज बोआज की मानवशास्त्र की परिभाषा, चार्ल्स फर्थ एवं ए.एल. राउज की इतिहास की परिभाषाओं से मिलती जुलती हैं जिनका प्रमुख केंद्र मानव समाज का अध्ययन है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास एवं मानवशास्त्र की परिभाषाओं में स्थूल रूप से देखने पर समानताएं दृष्टिगोचर होती हैं।

मानवशास्त्र को प्रमुख रूप से दो भागों में बांटा गया है और यह विभाजन ई.ए. होबल की मानवशास्त्र की परिभाषा मानवशास्त्र मनुष्य एवं उसके संपूर्ण कार्यों का अध्ययन है को चरितार्थ करता है। यह विभाजन निम्नानुसार है–

1. शारीरिक मानव विज्ञान, जिसके तहत मनुष्य के उद्‌भव एवं आदिकाल से लेकर वर्तमान काल तक के मनुष्य के शारीरिक विकास का अध्ययन किया जाता है।
2. सांस्कृतिक मानव विज्ञान, जिसके अंतर्गत मनुष्य के कार्यों का अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत मानव समाज के स्वरूप एवं इतिहास का भी अध्ययन किया जाता है।

मानवशास्त्र के उक्त विभाजन में शारीरिक मानव विज्ञान इतिहास से बहुत कुछ स्वतंत्र प्रतीत होता है किंतु सांस्कृतिक मानवशास्त्र इतिहास से घनिष्ठ रूप से संबद्ध दिखाई देता है। इतिहास की भांति ही सांस्कृतिक मानवशास्त्र का विस्तार क्षेत्र भी व्यापक है जिसमें समाज व्यवस्था, कला, साहित्य, धर्म एवं अर्थव्यवस्था का अध्ययन किया जाता है।

राल्फ पिंडिगटन ने मानवशास्त्र को चार शाखाओं में विभाजित किया है–

1. शारीरिक मानवशास्त्र,
2. प्रागैतिहासिक पुरातत्व,
3. सांस्कृतिक मानवशास्त्र एवं
4. सामाजिक मानवशास्त्र।

शारीरिक मानवशास्त्र इतिहास से स्वतंत्र भले ही हो लेकिन एक शारीरिक नेतृत्ववेत्ता को प्रागैतिहासिक (Pre-history) के बारे में कुछ ज्ञान होना आवश्यक है अन्यथा वह जीवाश्म फासिल मनुष्य का अध्ययन नहीं कर पायेगा और आदि मानव के जीवाश्म का अध्ययन एक शारीरिक नेतृत्ववेत्ता के लिए परम आवश्यक है।

प्रागैतिहासिक पुरातत्व मानवशास्त्र की वह शाखा है जिसमें मानव तथा उसकी संस्कृति के उद्‌भव, उत्थान तथा पतन एवं भौगोलिक वितरण आदि का अध्ययन किया जाता है। सरल शब्दों में, पुरातत्वशास्त्र के द्वारा प्राचीन संस्कृतियों तथा आधुनिक सभ्यताओं की भूतकालीन अवस्थाओं का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार इतिहास की तरह पुरातत्वशास्त्र मानवशास्त्र की भी प्रमुख कसौटी है।

प्रागैतिहासिक का शाब्दिक अर्थ प्राक्+इतिहास इतिहास के पूर्व के युग से है। वस्तुतः इतिहास का विभाजन, प्रागैतिहास, आद्य इतिहास, एवं इतिहास तीन भागों में किया गया है। वह काल जिसका कोई लिखित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, प्रागैतिहास के तहत आता है। भारतीय इतिहास में पाषाणकालीन संस्कृति प्रागैतिहास के तहत आती है।

कुछ विद्वानों ने प्रागैतिहासिक पुरातत्व को सांस्कृतिक मानवशास्त्र का ही अंग माना है। प्रागैतिहास और सांस्कृतिक नेतृत्व के बीच काफी घनिष्ठ संबंध है। ऐतिहासिक तथ्यों की अनुपस्थिति में लागू होनेवाली सीमाओं के बावजूद प्रागैतिहास, प्रागैतिहासिक कालों का सांस्कृतिक नतृत्व है। पुरातत्वीय, भू–वैज्ञानिक और जीवाश्म तथा संबद्ध प्रमाणों के आधार पर उन कालों के अधिकाधिक अध्ययन का प्रयास प्रागैतिहास द्वारा किया जाता है। अतः प्रागैतिहास के बिना सांस्कृतिक नेतृत्व मूलरहित जड़विहीन और सांस्कृतिक नेतृत्व के बिना प्रागैतिहास मूल रहित है।

इतिहास की शाखा प्रागैतिहास एवं मानवशास्त्र की शाखा सांस्कृतिक मानवशास्त्र की सह–संबद्धता को रेखांकित करते हुए रोबर्ट रेडफील्ड ने स्पष्ट किया है कि मानव इतिहास में विचारों की जो भूमिका रही है, उसके अध्ययन की चेष्टा करते हुए उन्होंने प्रागैतिहास और सांस्कृतिक नेतृत्व की उपलब्धियों के संयोग से कतिपय उल्लेखनीय परिणाम प्राप्त किये हैं। उन्होंने बताया कि इनमें से प्रत्येक विषय दूसरे के बिना अधूरा है।

इतिहास और मानवशास्त्र में अंतर

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानवशास्त्र एवं उसकी शाखाएं किसी न किसी रूप में इतिहास अथवा उसकी शाखा से संबंधित हैं। अब प्रश्न उठता है कि जब मानवशास्त्र इतिहास का ही अंग है तो पृथक रूप से मानवशास्त्र एक विषय के रूप में अस्तित्व में क्यों आया। अतः निश्चित रूप से इतिहास एवं मानवशास्त्र में कुछ मूलभूत अंतर अवश्य होंगे। ये सूक्ष्म अंतर निम्नानुसार हैं–

1. इतिहास में मात्र मनुष्य के कार्यों का ही अध्ययन नहीं होता अपितु उससे संबंधित अन्य घटनाक्रमों, यथा– साम्राज्यों का उत्थान–पतन, युद्ध, शांति समझौते इत्यादि का अध्ययन भी किया जाता है, जबकि मानवशास्त्र में प्रत्येक अध्ययन मनुष्य के इर्द–गिर्द ही घूमता है। ए.एल.क्रोबर एवं जी. क्लूखोन के अनुसार, मनुष्य के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने वाले समस्त विज्ञानों में से मानवशास्त्र ही एक ऐसा विज्ञान है जो मनुष्य के संपूर्ण अध्ययन के सबसे निकट है।
2. इतिहास में मनुष्य के कार्यों पर अधिक जोर दिया जाता है जबकि मानवशास्त्र में मानव की उत्पत्ति एवं शारीरिक विकास पर अधिक जोर दिया जाता है। जेकेब्स एवं स्टर्न के अनुसार, मानवशास्त्र मनुष्यजाति के जन्म से लेकर वर्तमान तक का मानव के शारीरिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास एवं व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन है। श्यामाचरण दुबे के अनुसार, विशाल प्राणीवर्ग के अनेक प्राणियों में से केवल मनुष्य के विकास तथा उसकी शारीरिक तथा उसकी शारीरिक विशेषताओं का अध्ययन शारीरिक मानव विज्ञान के रूप में स्वतंत्र दिशा में विकसित हुआ है।
3. इतिहास की तुलना में मानवशास्त्र मानवीय समूहों में पायी जाने वाली विषमताओं के अध्ययन पर विशेष बल देता है। इस हेतु सांस्कृतिक मानवशास्त्र के तहत प्रजातिशास्त्र एवं भाषा विज्ञान के आधार पर नृजातिशास्त्री जन समूहों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाता है।
4. इतिहास में हम मुख्य बल उन समाजों के अध्ययन पर देते हैं जिनकी कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि हो तथा जिन्होंने इतिहास को गति, दिशा एवं अर्थ दिया हो, जबकि सामाजिक मानवशास्त्र में ऐसे समाजों के अध्ययन पर विशेष बल दिया

जाता है जिनके बारे में न तो कोई प्रमाण मिलते हैं और न जिनकी कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। अतः सामाजिक मानवशास्त्र ऐसी संस्कृतियों का अध्ययन है जिनके आवरण में ढके लोग सभ्य समाजों के लिए अपरिचित जैसे हैं। इसीलिए सामाजिक मानवशास्त्र में मुख्यतः आदिम जनजातियों का अध्ययन किया जाता है।

5. इतिहास में कालक्रम का विशेष महत्व होता है, अतः इतिहासकार काल के सापेक्ष में गतिशील अवस्था में विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन करता है, जबकि सांस्कृतिक मानवशास्त्र में स्थिर अवस्था में एक संस्कृति विशेष के काल विशेष का ही अध्ययन किया जाता है। अतः एक सांस्कृतिक नेतृत्ववेत्ता विभिन्न संस्कृतियों के अपने अध्ययन में कालक्रम का ध्यान नहीं रखता तथापि उसका अध्ययन संपूर्ण संस्कृति के बारे में होता है।

इस प्रकार हम देखते है कि जहां इतिहास एवं मानवशास्त्र एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सह–संबंधित हैं, वहीं सैद्धांतिक रूप से इनमें कुछ सूक्ष्म अंतर भी स्पष्टतः परिलक्षित होते हैं।

2.5 इतिहास और समाजशास्त्र

मानवशास्त्र में सामाजिक मानवशास्त्र जिस प्रकार से इतिहास से सह–संबंधित है, ठीक उसी प्रकार समाजशास्त्र भी इतिहास से घनिष्ठ रूप से सह–संबंधित है। 20वीं सदी में अधिकांश इतिहासकारों ने सामाजिक इतिहास की ओर विशेष ध्यान देना आरंभ किया है। यद्यपि इतिहास में मानवीय कार्य व्यापार का अध्ययन किया जाता है तथापि इतिहास का विकास व्यक्तियों तथा राष्ट्रों से नहीं बल्कि विभिन्न युगीन समाजों से हुआ है। अतः इतिहास की प्रमुख आधारशिला समाज को ही माना जाता है। ट्रेवेलियन के अनुसार सामाजिक इतिहास के तहत अतीत में मनुष्यों के दैनिक जीवन, परिवार का स्वरूप, आर्थिक सह–संबंध, गृहस्थ जीवन, श्रमिकों की दशा, सांस्कृतिक जीवन, प्रकृति के प्रति मानवीय दृष्टिकोण, सामान्य परिस्थितियों में उत्पन्न धर्म, साहित्य, संगीत, शिक्षा एवं साहित्य का अध्ययन किया जाता है।

इस प्रकार सामाजिक इतिहास को अत्यधिक लोकप्रिय बनाने का श्रेय ट्रेवेलियन को जाता है। ट्रेवेलियन द्वारा सामाजिक इतिहास की यह परिभाषा समाजशास्त्र की भी परिभाषा प्रतीत होती है। समाजशास्त्र में भी एक सामाजिक प्राणी के रूप में मानव का उसके समाज के साथ अंतर्संबंधों का अध्ययन किया जाता है। वस्तुतः समाजशास्त्र का विकास सामाजिक इतिहास के परिवेश में हुआ है। सामाजिक विकास तथा परिवर्तन की गतियों का अध्ययन समाजशास्त्र के माध्यम से प्रारंभ हुआ है। काम्टे के अनुसार इतिहास सामाजिक भौतिकशास्त्र है जिसके तहत मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों का अध्ययन किया जाता है। मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों का अध्ययन एक समाजशास्त्री भी समाजशास्त्र के तहत करता है। अतः मानव, मानव का सामाजिक व्यवहार एवं उसके सामाजिक क्रियाकलाप आदि सभी इतिहास के साथ–साथ समाजशास्त्र के अध्ययन की भी मुख्य विषय–वस्तु हैं। इस दृष्टि से इतिहास एवं समाजशास्त्र एक दूसरे से संबद्ध प्रतीत होते हैं।

1870 ई. से प्रथम विश्व युद्ध के वर्षों से ही सामाजिक विज्ञान के विषयों का आरंभ होता है। ये इस विश्वास पर आधारित हैं कि मानव जीवन की व्याख्या निर्वैयक्तिक और व्यवस्थित प्रणाली से की जा सकती है। मैक्स बेबर का मानना है कि यदि मनुष्य का संपूर्ण रूप में सरलता से अध्ययन नहीं किया जा सकता तो मानव अस्तित्व के विभिन्न वर्गों सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पक्ष को समष्टि से निकालकर अलग–अलग समझा जा सकता है। बेबर की प्रमुख रुचि समाजशास्त्र में थी जिसमें मनुष्य का सामाजिक जीवन के रूप में अध्ययन किया जाता है। यह मनुष्य को उसके सामाजिक अस्तित्व तथा उसकी संपूर्ण अंतर्संबद्धता में समझने के प्रयास के रूप में इतिहास के सबसे निकट है।

टायन्बी के अनुसार भी इतिहास का निर्माण सामाजिक अणुतत्वों से हुआ है। मार्क्स ने भी मनुष्य की परिभाषा वर्ग संघर्ष के आधार पर की और यह दावा किया कि मनुष्य वर्ग के सदस्य की तरह सामूहिक रूप से कार्य करते हैं और उनके समान मूल्य होते हैं। फ्रैंक वैन आल्स्ट ने मार्क्स की उक्त परिभाषा के संदर्भ में लिखा है कि मनुष्य का समाज के सदस्य के रूपमें अध्ययन का यह प्रयास एक सीमा तक इतिहासकार भी करते हैं। इसी सादृश्य के कारण इतिहास और समाजशास्त्र एक दूसरे का अतिव्यापन करते हुए दृष्टिगत होते हैं और वस्तुतः जर्मनी में इतिहास ही समाजशास्त्र बन जाता है।

वर्तमान में इतिहासकार अतीत के समाज को एक समाजशास्त्री की भांति समग्र रूपमें समझने का प्रयास करते हैं, ताकि आधुनिक समाज के व्यवहार को भी अतीत के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सके। पालवर्थ के अनुसार, संस्कृति और संस्थाओं का इतिहास समाजशास्त्र को समझने और उसकी सामग्री जुटाने में सहायक होता है। आरनॉल्ड टायन्बी ने सामाजिक अणुतत्वों से इतिहास का निर्माण तो माना ही है, साथ ही अपनी सर्वप्रसिद्ध कृति 'ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री' में सभ्यता को ऐतिहासिक अध्ययन की प्रमुख इकाई माना है।

विभिन्न सभ्यताओं के उत्थान एवं पतन में एक इतिहासकार जब राजनीतिक एवं आर्थिक कारकों के अलावा सामाजिक कारकों का अध्ययन करता है तो उसे समाजशास्त्रियों के तत्ससंबंधी निष्कर्षों से विशेष लाभ मिलता है क्योंकि सभ्यताओं के उत्थान व पतन का मूल्यांकन एक समाजशास्त्री द्वारा बेहतर ढंग से किया जा सकता है। वर्तमान में एक इतिहासकार अंतःअनुशासनात्मक उपागम के तहत बेहतर परिणाम पाने के लिए अपने ऐतिहासिक अध्ययन में सामाजिक संगठन के सिद्धांत पर समाजशास्त्रियों के निष्कर्षों का लाभ उठाते हुए अपनी सामग्री को संयोजित करता है। यहीं नहीं, समाजशास्त्री भी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विभिन्न सामाजिक अंतर्संबंधों को समझने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार इतिहास और समाजशास्त्र एक दूसरे से घनिष्ठतः सह–संबंधित प्रतीत होते हैं।

इतिहास और समाजशास्त्र में अंतर

एक विषय के रूप में जो अंतर इतिहास एवं सामाजिक मानवशास्त्र में हैं, लगभग वही अंतर इतिहास एवं समाजशास्त्र में भी दृष्टिगोचर होते हैं। इतिहास एवं समाजशास्त्र के कुछ मौलिक अंतरों को हम निम्नानुसार देख सकते हैं–

1. फ्रेंक वैन आल्स्ट के अनुसार, '' इतिहास समाजशास्त्र की तरह मनुष्य को सामाजिक अंतर्संबंधों के साथ ही नहीं देखता अपितु उसको भी समय के प्रवाह में रखकर निरंतर परिवर्तनशील विकास में भी देखता है। समाजशास्त्री मनुष्य को समय के प्रवाह से अलग करके देखता है, वह समय को स्थिर कर देता है और यही कारण है कि यह अध्ययन यथार्थ से दूर हो जाता है– मनुष्य समय के प्रवाह में जीता है और उसके जीवन का निष्कर्ष यही है कि वह गतिशील है।
2. सामान्यतः इतिहास में कुछ विशिष्ट उल्लेखनीय एवं असाधारण सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है जिन्होंने इतिहास की गति एवं दिशा को प्रभावित किया हो, जबकि समाजशास्त्र उन सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करता है जिसकी पुनरावृत्तियां अधिक हुई हों।
3. इतिहास देश, काल एवं परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में घटनाओं का विश्लेषण करता है और संभावित निष्कर्ष निकालता है, जबकि समाजशास्त्र देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार घटनाओं से मर्यादित न रहकर सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक निष्कर्ष निकालता है।
4. इतिहास की प्रमुख विषय–वस्तु अतीतकालीन समाज का अध्ययन है, जबकि समाजशास्त्र की प्रमुख विषय–वस्तु वर्तमान समाज का अध्ययन है। एक समाजशास्त्री अतीत के समाज के अध्ययन में वहीं तक रूचि रखता है जहां तक कि उन घटनाओं से वर्तमान समाज को समझने में मदद मिल सकती हो।
5. इतिहास में यथार्थता पर विशेष बल रहता है। अतः वह ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर अतीत का अध्ययन करता है और कुछ संभावित निष्कर्ष निकालने का प्रयास करता है, जबकि समाजशास्त्र वैज्ञानिक पद्धति एवं प्रयोगात्मक तरीकों से सामाजिक घटनाओं का अवलोकन करता है। समाजशास्त्र सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण के साथ–साथ उन्हें सुलझाने हेतु सुझाव भी प्रस्तुत करता है।
6. पार्क के अनुसार इतिहास मानव एवं मानव प्रकृति का एक मूर्त विज्ञान है, जबकि समाजशास्त्र इन्हीं का एक अमूर्त विज्ञान है। इतिहास अतीत में घटी हुई किसी भी घटना के घटने के पश्चात उनके कारणों एवं परिस्थितियों का विश्लेषण करता है, जबकि समाजशास्त्र कई घटित घटनाओं का प्रायोगिक परीक्षण कर उन प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है जिनके कारण घटनाएं घटती हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. स्वतंत्र वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में मानव विज्ञान का विकास कब हुआ?

   (क) 17वीं शताब्दी में (ख) 19वीं शताब्दी में

   (ग) 19वीं शताब्दी के अंत में (घ) 20वीं शताब्दी में

4. सामाजिक इतिहास को अत्यधिक लोकप्रिय बनाने का श्रेय किसे प्राप्त है?

   (क) पालवर्थ (ख) टायन्बी

   (ग) फ्रेंकवैन आल्स्ट (घ) ट्रेवेलियन

2.6 इतिहास और अर्थशास्त्र

आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य की जिस प्रकार से भौतिक प्रगति हुई है, तथा मानवीय आवश्यकताओं में निरंतर उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है उसके परिणामस्वरूप आर्थिक अध्ययन एक आवश्यकता बन चुका है। सामाजिक विज्ञान के सभी क्षेत्रों में अर्थशास्त्र ही एक ऐसा विज्ञान है जिसकी गणना सामाजिक कल्याण व मानवीय प्रगति के लिये अग्रिम श्रेणी में की जाती है।

वास्तविकता तो यह है कि आज की दुनिया की संपूर्ण आर्थिक संरचना केवल आर्थिक धुरी के ऊपर विद्यमान है। यदि किसी भी समस्या का गहराई से विश्लेषण किया जाय तो आज की दुनिया में प्रत्येक समस्या के जड़ में आर्थिक कारण ही विद्यमान हैं। चाहे वह समस्या श्रम और पूंजी के विवाद के रूप में हो, चाहे साम्राज्यवाद और स्वतंत्रता की लड़ाई हो अथवा समाजवाद और पूंजीवाद का मामला हो, सभी विवादों के मूल कारण आर्थिक ही है।

इतिहास और अर्थशास्त्र के पारस्परिक संबंध के विषय में हम कह सकते हैं कि अतीत की कोई भी घटना क्यों न हो, चाहे वहां किसी साम्राज्य का उत्थान हो या पतन, चाहे कोई युद्ध, सभी के मूल में आर्थिक कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निहित रहते हैं। भारतीय इतिहास के संदर्भ में महमूद गजनबी, मुहम्मद गौरी, तैमूरलंग एवं नादिर शाह आदि के भारत पर आक्रमण का एक प्रमुख कारण भारतीय धन–समृद्धि को लूटना भी था।

इतिहास अर्थशास्त्र का संबंध भी उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव सभ्यता का इतिहास। इतिहास में मुख्य रूप से मनुष्य तथा उससे संबंधित क्रियाकलापों का अध्ययन किया जाता है। अर्थात मनुष्य के प्रादुर्भाव के साथ ही इतिहास का आरंभ हो जाता है। आदि मानव ने अपनी जीविका को चलाने के लिये जैसे–जैसे साधनों के खोज में प्रगति की, इसके परिणामस्वरूप इतिहास को भी गति, दिशा एवं अर्थ मिलता गया। उस समय आजीविका के साधन ही अर्थव्यवस्था के प्रमुख आधार थे।

समाज की अर्थव्यवस्था ही प्रागैतिहासिक काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक इतिहास की प्रमुख विषयवस्तु रही है।

पाषाणकालीन मानव की आजीविका का प्रमुख स्रोत आखेट एवं खाद्य संग्रह था। सिन्धु घाटी की सभ्यता में विभिन्न स्थलों पर हुए उत्खनन से हमें पता चलता है कि इस सभ्यता की अर्थव्यवस्था व्यापार प्रधान थी।

ऋग्वैदिक काल में कृषि एवं पशुपालन ही अर्थव्यवस्था के प्रमुख आधार माने गये। अतः हम कह सकते हैं कि, 'इतिहास एवं अर्थशास्त्र की विषयवस्तु में एकरूपता है क्योंकि इतिहास के अध्ययन में, अर्थशास्त्र की प्रमुख विषयवस्तु अर्थव्यवस्था को उपेक्षित नहीं किया जा सकता।' उदाहरणार्थ मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन में अलाउद्दीन खिलजी की बाजार व्यवस्था एवं उसके आर्थिक सुधारों को अनदेखा नहीं कर सकते। कुछ प्रमुख इतिहासकार व अर्थशास्त्रियों की कृतियों का अध्ययन आधुनिक भारतीय इतिहास को भली भांति समझने के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार आधुनिक भारतीय इतिहास को समझने के लिए एम.जी. रानाडे एवं दिनशावाचा के आर्थिक विचार भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

1929–30 ई. में आयी विश्वव्यापी आर्थिक मंदी आज भी इतिहासकारों के अध्ययन की विषयवस्तु है। इसी प्रकार अर्थशास्त्र में भी 1929–30 में आयी आर्थिक मंदी के कारणों का अध्ययन विश्लेषण किया जाता है।

अतः उपरोक्त विश्लेषण के परिणामस्वरूप हम प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्शल के शब्दों में कह सकते हैं कि "अर्थशास्त्र जीवन के साधारण व्यापार में मनुष्य का अध्ययन है।" यह व्यक्तिगत और सामाजिक कार्यों के उस भाग का परीक्षण करता है जिनका भौतिक पदार्थों की प्राप्ति एवं उनके प्रयोग के साथ अत्यंत घनिष्ठ संबंध है।

समान उद्देश्य

उद्देश्य की दृष्टि से भी इतिहास और अर्थशास्त्र का सह–संबंध सिद्ध होता है। इतिहास का उद्देश्य सामाजिक कल्याण है। इतिहास के अध्ययन में हम अपने अतीत की घटनाओं का अध्ययन करके एवं उनका विश्लेषण करके वर्तमान को सुखी बना सकते हैं तथा अतीत की भूलों को न दोहराकर भविष्य के लिए कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त करके हम सामाजिक कल्याण की ओर अग्रसर होते हैं। इसी प्रकार अर्थशास्त्र का उद्देश्य आर्थिक कल्याण करना है।

मार्शल के मतानुसार, "अर्थशास्त्री के सम्मुख जो नैतिक मान्यता सदैव रहनी चाहिए, वह यह है कि उत्पादन तथा मौद्रिक व्यवस्थाएं, दोनों ही इस प्रकार से संगठित की जाएं ताकि एक सुसंस्कृत व उत्कृष्ट जीवन के लिए भौतिक साधन उपलब्ध हो सकें।"

राज्य की नीति आर्थिक अवस्थाओं पर निर्भर : उदाहरण स्वरूप अलाउद्दीन खिलजी साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। इसके लिए उसे भारी संख्या में सैनिकों की भर्ती की आवश्यकता पड़ी। किंतु उसके इस कदम से राज्य पर आर्थिक दबाब पड़ता, क्योंकि इतने सारे सैनिकों को पारिश्रमिक देना पड़ता। अतः उसने इस समय एक अर्थशास्त्री की भांति सोचते हुए अपने साम्राज्य विस्तार की नीति के लिए वस्तुओं के मूल्यों को नियंत्रित किया, अर्थात कम कर दिया, ताकि सैनिकों को पारिश्रमिक देने का अतिरिक्त आर्थिक भार राज्य पर न पड़े। 18वीं सदी में इंग्लैण्ड और यूरोप के अन्य देशों में जो औद्योगिक क्रान्ति हुई उसके परिणामस्वरूप ही इन देशों ने उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की नीति अपनायी।

ऐतिहासिक घटनाएं आर्थिक गतिविधियों के परिणाम : अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएं आर्थिक गतिविधियों के परिणामस्वरूप ही घटित हुई हैं। स्पेन की गणतंत्रीय सरकार ने श्रमिक वर्ग के हित में 1935 में जब कानून बनाने का प्रयत्न किया तो सामन्त वर्ग, चर्च के पादरी, और सेना के जनरल फ्रेंको के नेतृत्व में संगठित होकर गणतंत्रीय सरकार का तख्ता पलट दिया। इसी प्रकार 1830 की विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के परिणामस्वरूप हिटलर का उदय, तथा द्वितीय विश्वयुद्ध की भूमिका तैयार हुई।

साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद जैसी विचारधाराओं की उत्पत्ति के मूल में प्रमुख कारण आर्थिक गतिविधियां ही रहीं हैं।

इतिहास की अर्थशास्त्र को देन

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक की अर्थव्यवस्था अथवा आर्थिक नीतियों का अवलोकन हम इतिहास के अंतर्गत करते हैं। वर्तमान के अर्थशास्त्री इन अध्ययनों का लाभ उठाकर वर्तमान में अर्थशास्त्र संबंधी नीतियों का निर्धारण करते हैं। ऐतिहासिक अर्थव्यवस्थाओं का अध्ययन आज हमारे आर्थिक नियोजन का प्रमुख आधार बन गया

है। रूस की क्रांति 1917 ई. के पश्चात वहां पर अपनायी गई, आर्थिक नियोजन प्रणाली से प्रेरणा लेकर भारत में पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारंभ किया गया है।

कार्ल मार्क्स ने अर्थशास्त्र को इतिहास की आधारशिला माना है। उनके शब्दों में, "इतिहास की व्याख्या केवल आर्थिक घटनाओं के माध्यम से की जा सकती है। किसी भी शासन–व्यवस्था के संबंध में सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए, यह सदैव आवश्यक है कि देश की तत्कालीन आर्थिक घटनाओं और दशाओं का ज्ञान हो।"

इतिहास की दिशा एवं गति को प्रभावित करने में अर्थव्यवस्था की भूमिका को देखते हुए वर्तमान में आर्थिक इतिहास के लेखन पर विशेष बल दिया जा रहा है। अर्थशास्त्र में भी आर्थिक विचारों का इतिहास और विभिन्न देशों के आर्थिक इतिहास का अध्ययन किया जाने लगा है।

2.7 इतिहास और दर्शनशास्त्र

इतिहास तथा दर्शन शास्त्र के सह–संबंध को समझने के लिए यह अति आवश्यक है कि पहले हम दर्शन शास्त्र के अर्थ को समझने का प्रयत्न करें। दर्शन शब्द को समझने के भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार 'दर्शन' शब्द दर्शनार्थक दृश् धातु से बनता है जिसका सामान्य भाषा में अर्थ होता है देखना या अवलोकन करना। अतः व्युत्पत्ति के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अर्थात जिसके द्वारा देखा जाय, वह दर्शन है। किंतु इस परिभाषा से यह कौतूहल जाग्रत होता है कि किसके द्वारा देखा जाय और क्या देखा जाय? साधारणतः हम अपनी आंखों से रूपादि को देखते हैं। परंतु आंखों से रूप का ज्ञान देखना दर्शन नहीं हो सकता, अतः यह स्पष्ट है कि 'देखना' दर्शन का साधारण अर्थ है।

दर्शन शास्त्र में दर्शन का एक विशेष अर्थ है – तत्व के प्रकृत स्वरूप का अवलोकन तत्व का यथार्थ स्वरूप साधारण दृष्टि से नहीं जाना जा सकता, क्योंकि तत् सर्वनाम है और सर्व ब्रह्म है। अतः ब्रह्म का नाम 'तत्' है, उसके भाव को अर्थात ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप को तत्व कहते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि तत्व अर्थात ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप का सम्यक् ज्ञान ही दर्शन है। ब्रह्म का यथार्थ स्वरूप बाह्य दृष्टि से नहीं जाना जा सकता उसे समझने के लिए अंतः दृष्टि की आवश्यकता है।

ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है :

"हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापि हितं मुखम्।

तत्वं पूषन्नपावणु सत्यधर्माय दृष्टये।।"

अर्थात आदित्य मण्डल में स्थित ब्रह्म का मुख ज्योतिर्मय पात्र से ढका है। हे पूषन! मुझ सत्यधर्मी को आत्मा की उपलब्धि कराने के लिए तू उसे उघाड़ दे, अर्थात् उस पात्र को सामने से हटा दे।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि दर्शन का मुख्य कार्य सत्य के स्वरूप का अनावरण करना है। परम सत्य या परम तत्व भारतीय दर्शन में एक मात्र ब्रह्म या आत्मा को ही माना गया है। अतः आत्मा या ब्रह्म की उपलब्धि ही दर्शन का प्रयोजन बतलाया गया है। आत्मदर्शन या ब्रह्म–दर्शन का एकमात्र फल है अमरत्व की प्राप्ति उदाहरणार्थ श्वेताश्वतर उपनिषद में कहा गया है – जिस समय योगी दीपक के समान प्रकाशस्वरूप

आत्मभाव से ब्रह्मतत्व का साक्षात्कार करता है उस समय उस अजन्मा निश्चल और समस्त तत्वों से विशुद्ध देव को जानकर वह सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय दर्शन अध्यात्म विद्या है और इस अध्यात्म विद्या का मुख्य विषय है आत्मदर्शन।

इतिहास एवं दर्शन शास्त्र का सह–संबंध

जिस प्रकार दर्शन का सामान्यतः अर्थ आत्मनिरीक्षण है उसी प्रकार इतिहास का अर्थ अतीत का ज्ञान माना गया है। इतिहास एवं दर्शन का जब परस्पर सह संबंध स्थापित हो जाता है जो एक इतिहासकार ऐतिहासिक दृष्टिकोण के साथ–साथ दार्शनिक दृष्टिकोण से भी अतीत की घटनाओं की खोज करता है। तत्पश्चात् दार्शनिक दृष्टिकोण से बुद्धि एवं विवेक द्वारा इन घटनाओं का आत्म निरीक्षण भी करता है।

पूर्व में जब दर्शन और इतिहास सह संबद्ध नहीं थे तब केवल अतीत की घटनाओं को ही इतिहास मान लिया जाता था। किंतु दर्शन के इतिहास से संबंधित होने पर इतिहासकार इसके प्रभाव में आकर अतीत की घटनाओं में मानव मस्तिष्क की क्या भूमिका हो सकती है इसे दार्शनिक दृष्टिकोण से भी सोचने पर बाध्य हो गया।

अतः हम कह सकते हैं कि जब एक इतिहासकार दार्शनिक दृष्टि से अतीत की घटनाओं के आंतरिक सतह में प्रवेश कर मानवीय मस्तिष्क की प्रक्रिया को समझने का प्रयत्न करता है तो इतिहास दर्शन का स्वरूप धारण कर लेता है।

पाश्चात्य मत के अनुसार दर्शन का अर्थ

दर्शन के लिए पाश्चात्य जगत में फिलॉसफी (Philosophy) शब्द का प्रयोग किया जाता है।

वस्तुतः लोग दर्शन तथा फिलॉसफी दोनों का अर्थ एक ही रूप में ग्रहण करते हैं, जबकि दोनों में काफी भेद है। फिलॉसफी शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों के मेल से बना हैः फिलॉस और सोफिया। फिलॉस का तात्पर्य है अनुराग और सोफिया का अर्थ है ज्ञान। अतः फिलॉसफी का अर्थ हुआ ज्ञान के लिए प्रेम या अनुराग।

पाश्चात्य जगत के मतानुसार फिलॉसफी की यह परिभाषा केवल मनुष्य की बुद्धि से संबंध रखती है जीवन से नहीं।

इसके विपरीत भारतीय दर्शन में विद्या (ज्ञान) का संबंध सिर्फ मन–मस्तिष्क से नहीं अपितु मनुष्य के सर्वांगीण विकास से है। भारतीय दर्शन में विद्या को अमृत कहा गया है।

अतः हम कह सकते हैं कि विद्या का संबंध केवल बुद्धि से ही नहीं वरन जीवन से भी है। यथार्थ विद्या वही है जिसके द्वारा जन्म–मरण के चक्र का विनाश होता है। इस प्रकार भारतीय दर्शन का जीवन से घनिष्ठ संबंध है। अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय मतानुसार दर्शन जीवन जीने का साधन है, कोई बौद्धिक व्यायाम नहीं। हमारे ऋषियों ने जिन सत्यों का आविष्कार किया है उनको अपने जीवन में चरितार्थ करके भी दिखाया।

दर्शन एवं इतिहास के घनिष्ठ संबंध के विषय में हम कह सकते हैं कि व्यवहार के बिना बुद्धि का कोई प्रयोजन नहीं, कर्म के बिना ज्ञान तो शुद्ध भार है। अतः एक

इतिहासकार को दर्शन से जो बुद्धि विवेक प्राप्त होता है उसे अतीत की घटनाओं के अन्वेषण में प्रयोग में लाना आवश्यक है।

इतिहासकार गोविन्द चन्द्र पांडेय के मतानुसार इतिहास की घटनाओं में युक्ति संगत अर्थ देखने का सबसे महत्वपूर्ण प्रयास हीगल ने किया है।

हीगल के मतानुसार इतिहास की प्रक्रिया भी दर्शन की भांति अपने विकास क्रम में द्वन्दात्मकता का अनुसरण करती है। तर्कसंगत द्वन्द्वात्मकता का प्रयोग कर एक दार्शनिक इतिहासकार अतीत के विकास में सत्य की खोज के लिए पहले किसी पक्ष को स्वीकार करता है फिर उसे परखने के लिए उसके विपक्ष की ओर अग्रसर होता है और अंत में पक्ष और विपक्ष दोनों की एकाग्रिता को समझकर उनके समन्वय की उद्भावना करता है।

अतः हम कह सकते हैं कि दर्शन न केवल एक मानसिक प्रक्रिया है बल्कि एक सैद्धान्तिक प्रक्रिया भी है जिसका लक्ष्य सत्य की खोज है।

इतिहास में घटनाओं की प्रधानता होती है एवं दर्शन में विवेक की। अतः जब इतिहास एवं दर्शन परस्पर संबंधित हो जाते हैं तब इतिहास में विवेकपूर्ण विचारों द्वारा घटनाओं का परीक्षण किया जाता है यहीं इतिहास दर्शन है।

हीगल अपने इतिहास संबंधी विचारों को इतिहास दर्शन की संज्ञा देते हैं।

गोविन्द चन्द पांडेय के अनुसार इतिहास को विवेक से जोड़ना वस्तुतः असंतोषजनक प्रतीत होता है, क्योंकि इतिहास तथ्य प्रधान होता है और विचार उसके अधीन होते हैं। इसके विपरीत दर्शन में विचार अपने अस्तित्व निरपेक्ष स्वराज्य में विचरण करते हैं।

अतः दर्शन को इतिहास से संबंधित करने पर यह आशंका सदैव बनी रहेगी कि दर्शन की प्राक्कल्पनाएं कहीं ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत न करे।

किंतु यह आशंका निराधार है, क्योंकि दर्शन इतिहास के पास एक ही पूर्व कल्पना लेकर जाता है वह है बुद्धि या विवेक की।

दर्शन यह मानकर चलता है कि बुद्धि विश्व पर शासन करती है, अतएव विश्व का इतिहास एक बुद्धि संगत प्रक्रिया है। दार्शनिक प्रतिपत्ति के सहारे ही इतिहास के तथ्य परखे जाते हैं।

जो इतिहासकार यह कहते हैं कि वे बिना कल्पना का सहारा लिये मात्र तथ्यों का यथावत प्रतिबिम्बिन करते हैं वे भी कहीं न कहीं अपनी बुद्धि का सक्रिय प्रयोग करते हैं।

किसी भी विधा के पदार्थ अपने मूल रूप में कल्पनाएं होती हैं और बौद्धिक दृष्टि का प्रयोग किए बिना उनका विकास संभव नहीं है। बौद्धिक दृष्टि से विश्व को देखने से विश्व भी बुद्धि संगत दिखाई देता है।

हीगल के सन्दर्भ में गोविन्द चन्द्र पांडेय का उपरोक्त कथन इतिहास एवं दर्शन के संबंध के महत्व एवं समस्याओं पर प्रकाश डालता है।

इतिहास एवं दर्शन के परस्पर संबंध को हम हीगल द्वारा प्रतिपादित द्वन्दवाद के परिपेक्ष्य में समझने का प्रयत्न करेंगे। गोविन्द चन्द्र पांडेय के अनुसार द्वन्दवाद में दार्शनिक दृष्टि से ऐतिहासिक घटनाक्रम का अध्ययन करने पर इतिहास का स्वरूप गूढ़ दर्शन बन जाता है। हम इस कथन को प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् पेरिस शांति सम्मेलन (1919 ई.) में मित्र राष्ट्रों द्वारा जर्मनी पर थोपी गई वर्साय संधि (28 जून, 1919 ई.) के परिप्रेक्ष्य में देखेंगे। उदाहरणस्वरूप – वर्साय की संधि एक घटना थी। इतिहासकार

चाहे तो इस संधि की शर्तों का उल्लेख करके आगे बढ़ सकता है, परंतु जब दर्शन इतिहास से संबद्ध होता है तो इतिहासकार बुद्धि या विवेक की मदद से यह जानने के लिए बाध्य हो जाता है कि आखिर संधि की शर्तें इतनी कठोर क्यों रखी गयी और इतिहासकार अब जुट जाता है कि संधि के प्रमुख कर्ता–धर्ताओं फ्रांस के प्रधानमंत्री क्लीमेंशू एवं ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लायड जार्ज की मनोस्थिति जानने में क्योंकि इन्हीं के मस्तिष्क की उपज थी वर्साय की संधि की कठोर धाराऐं।

संधि की शर्तों की कठोरता जानने के लिए हीगल के द्वन्द्ववाद का अनुप्रयोग

वाद पक्ष : संभव है क्लीमेंशु व लायड जार्ज आदि ने संधि की शर्तों की अधिक कठोरता के विषय में विचार न किया हो।

प्रतिवाद पक्ष : मगर उनके मन यह भी विचार आया होगा कि क्या जर्मनी जीतता हमारे ऊपर आसान संधि शर्तें थोपता।

समन्वय पक्ष (संवाद पक्ष) : वाद पक्ष एवं विवाद पक्ष के द्वन्द्व में संभवतः उनका ध्यान 1871 ई. की फ्रेंकफर्ट संधि की ओर गया होगा जिसे जर्मनी ने फ्रांस पर काफी कठोरतापूर्वक शर्तों के साथ थोपा था। उसके दो महत्वपूर्ण क्षेत्र अल्सास एवं लारेन छीनकर फ्रांस को आर्थिक दृष्टि से पंगु बनाने की कोशिश की थी। अतः वाद–विवाद के द्वन्द्व में समन्वय द्वारा संवाद पक्ष यह बना होगा कि जर्मनी जीतने पर फ्रैंकफर्ट की संधि को पुनः दोहराता। अतः जर्मनी पर भी जैसे को तैसा की तर्ज पर कठोर शर्तें थोपना चाहिये।

जब एक इतिहासकार दार्शनिक दृष्टिकोण से उक्त परिकल्पना के तहत वास्तविकता का पता लगता है तो बहुत कुछ प्रतिमान सही साबित होते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यदि इतिहासकार इतिहास की किसी भी घटना (चाहे वह वर्साय की संधि ही क्यों न हो) को दार्शनिक दृष्टि से उस घटना के पीछे काम करने वाले व्यक्तियों के विचारों के परिपेक्ष्य में अवलोकित करे तो घटनाक्रम बहुत कुछ स्पष्ट समझ में आ जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दर्शन के प्रयोग से इतिहास की अमूर्त घटनायें भी हमारे सामने मूर्तिमान होकर उभरने लगती हैं।

मानव जीवन को ठीक तरह से समझने के लिए उसकी आंतरिक स्थिति एवं बाह्य परिवेश दोनों को समझना अत्यंत आवश्यक है। दर्शन में जो घटनाएं बुद्धि एवं विवेक के प्रयोग से प्रत्यक्ष होती हैं वहीं घटनाएं इतिहास में कालक्रम से मूर्त होती है और इन दोनों का निरूपण ही इतिहास दर्शन है।

एक इतिहासकार एवं एक दार्शनिक दोनों ही अपने–अपने दायरे में तथ्यों की एवं मानव जीवन की विवेचना करते हैं किंतु दोनों ही सम्पूर्ण नहीं है। किंतु हीगल में इन पक्षों का जिन्हें तथ्यात्मक और विचारात्मक, ऐतिहासिक और दार्शनिक कह सकते हैं, एक अपूर्व समन्वय मिलता है।

"हीगल के पहले न किसी दार्शनिक को इतना इतिहास का ज्ञान था, न किसी इतिहासकार को इतने दर्शन का ज्ञान था।" हीगल एक प्रखर विद्वान थे, वे न केवल दर्शन अपितु धर्म, कला, नैतिकता, कानून, सामाजिक संस्थाएं, राजनीतिक व्यवस्थाएं इन सबको उतनी ही सूक्ष्म समझ से परखते है, जितना वे विशुद्ध तर्क मनोविज्ञान, अध्यात्म विद्या को।

हीगल द्वारा प्रतिपादित इतिहास में कुछ त्रुटियां संभव होते हुए भी उनका यह इतिहास दर्शन का उद्देश्य प्रशंसनीय है।

हीगल ने इतिहास को दर्शन से संबद्ध किया तथा इतिहासकार को दार्शनिक दृष्टि से सोचने के लिए बाध्य किया, यह सब कार्य अद्‌भुत प्रतिभा के धनी व्यक्ति के लिए ही संभव था। हम कह सकते हैं कि इतिहास में दर्शन के समवाय से ही उसमें इतिहासत्व आया है। इतिहास को एक वैज्ञानिक आधार प्राप्त हुआ है। अतः हीगल के इतिहास दर्शन की जितनी प्रशंसा की जाय वह कम ही है।

जहां वाल्टेयर इतिहास दर्शन को वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन के रूप में स्वीकार करते हैं, वहीं दूसरी ओर हीगल अपनी कृति 'Lectures on Philosophy of History' के माध्यम से इतिहास को एक गूढ़ दर्शन के रूप में समाज के सामने रखते हैं।

हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार इतिहास दर्शन 18वीं तथा 19वीं सदी के विचारकों की इतिहास को एक सर्वोत्कृष्ट देन है उसी प्रकार इतिहास का दर्शन से समवाय हीगल द्वारा इस दिशा में किया गया उल्लेखनीय प्रयास है। फ्रैक वैन आल्स्ट के अनुसार, "इतिहास दर्शन के विकास तथा दर्शन में इतिहास के भाव को लाने में हीगेल के योगदान का सही मूल्यांकन करना कठिन है।"..... हीगल ने अनुभूति की, ईसाई अवधारणा को इतिहास में अपनाकर उसे उस दार्शनिक व्यवस्था का अंग बना दिया जिसकी मूल संकल्पना यूनानी है। दोनों के समन्वय से बने प्रारूप में कोई बड़ा विरोधाभास नहीं है। इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि दर्शन का ऐतिहासीकरण हो गया है एवं इतिहास वह क्षेत्र हो गया है जहां विश्वात्मा का वास्तवीकरण हो जाता है।.... इतिहास और दर्शन के समन्वय के द्वारा हीगेल यह प्रस्थापित करता है कि संपूर्ण इतिहास विवेकपूर्ण है। यह अर्थपूर्ण अथवा कम के कम, बोधगम्य है। उसका सबसे बड़ा योगदान यह है कि उसने दर्शन को इतिहास के सम्मुख किया।

इतिहास एवं दर्शन में भिन्नता

इतिहास एवं दर्शन परस्पर एक–दूसरे से संबंधित होते हुए भी उनमें कुछ मूलभूत अंतर है। इतिहास किसी भी घटना का अध्ययन समय सीमा में आबद्ध होकर ही कर सकता है, जबकि दर्शन समय से निरपेक्ष रहकर घटना के घटित होने पर चिन्तन मनन करता है।

इतिहासकार चूंकि समय सीमा में आबद्ध रहते हुए भिन्न–भिन्न युग के समाजों का अध्ययन करता है अतः उसके निष्कर्ष भी अलग–अलग समाजों को अभिव्यक्त करते हैं। सम्पूर्ण मानवता का इनमें प्रतिनिधित्व नहीं होता।

इसी प्रकार विभिन्न समाजों का दर्शन भी युग के अनुरूप संचालित होता है। क्रोचे के अनुसार "इतिहास की नित्यता दर्शन की नित्यता की आक्षेप करती है और प्रत्येक युग का अपना दर्शन होता है। दार्शनिक की प्रमाणिकता उस ऐतिहासिक युग या समाज तक सीमित नहीं होती जिसमें दार्शनिक विचार करता है, जिन पूर्ववर्ती उपागमों की वह उपलब्धि करता है। वह किसी विशेष समाज या ऐतिहासिक युग के न होकर चित्त की क्रिया मात्र के होते हैं। इसी कारण से दार्शनिक की प्रमाणिकता का दावा कालातीत होता है, न कि ऐतिहासिक क्योंकि चित्त के स्वरूपगत तत्व किसी विशेष ऐतिहासिक युग के नहीं होते।" इसी सन्दर्भ में क्रोचे का कथन है कि "इतिहास निरन्तर बदलता है अतः दर्शन को भी निरन्तर नवीन होना पड़ेगा।"

हम कह सकते हैं कि इतिहास में जब हम किसी तत्व का विशेष, प्रत्यक्ष, सामान्य आदि विकल्पों के माध्यम से चिन्तन करते हैं तो दर्शन उसमें स्वतः ही शामिल हो जाता है और यही प्राकृतिक समन्वय इतिहास एवं दर्शन की अभिन्नता का कारण बनता है। क्रोंचे का मत है कि "विशिष्ट सत्ताओं के विषय में निर्णय होने के कारण इतिहास उद्देश्य और विधेय, प्रतिभास और प्रत्यय का समन्वय होता है किंतु यही वर्णन दर्शन पर भी लागू होगा क्योंकि यदि इतिहास तार्किक अर्थात् दार्शनिक तत्व के बिना संभव नहीं है तो दर्शन भी प्रत्यक्ष अथवा ऐतिहासिक तत्व के बिना संभव नहीं है। किंतु इन दोनों को एक–दूसरे से अलग नहीं मानना चाहिये, न एक–दूसरे पर आश्रित क्योंकि वे दो रूप नहीं है बल्कि एक ही रूप है, परस्पर आश्रित नहीं बल्कि परस्पर अभिन्न हैं। जो पूर्व सिद्ध समन्वय विशेष निर्णय और लक्षण यथार्थ है, वहीं दर्शन और इतिहास का यथार्थ।"

निष्कर्षतः इतिहास एवं दर्शन परस्पर एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से सह–संबंधित हैं। इतिहास को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने में दर्शन की महती भूमिका है। जब से दर्शन का इतिहास से समवाय हुआ है तभी से इतिहास न केवल कला अपितु एक विज्ञान विषय के रूप में भी स्वीकार किया जाने लगा है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. इनमें से किसने अर्थशास्त्र को इतिहास की आधारशिला माना है?

   (क) मार्शल (ख) एम.जी. रानाडे

   (ग) दिनशावाचा (घ) कार्ल मार्क्स

6. 'इतिहास की प्रक्रिया भी दर्शन की भांति अपने विकास क्रम में द्वंद्वात्मकता का अनुसरण करती है।' यह दृष्टिकोण किसका है?

   (क) हीगल (ख) गोविंदचंद्र पांडेय

   (ग) वाल्टेयर (घ) क्रोचे

2.8 इतिहास और राजनीति शास्त्र

इतिहास का राजनीति शास्त्र से संबंध जानने के लिए हमें सर्वप्रथम यह जानना होगा कि राजनीति शास्त्र क्या है? इस संबंध में विभिन्न विचारकों के भिन्न–भिन्न मत हैं।

राजनीति शास्त्र का अर्थ एवं परिभाषाएं

'राजनीति' का पर्यायवाची अंग्रेजी शब्द पॉलिटिक्स यूनानी भाषा के शब्द से बना है, जिसका तात्पर्य उस भाषा में नगर अथवा राज्य होता है। उस समय यूनान छोटे–छोटे नगर राज्यों में विभाजित था और इसी कारण यूनान के लोग नगर तथा राज्य में कोई अंतर नहीं समझते थे। कालांतर में राज्य का स्वरूप बदला और आज इन राज्यों का स्थान राष्ट्रीय राज्यों ने ले लिया है। अतः राज्य के इस विकसित और विस्तृत स्वरूप का अध्ययन जिस विषय के अंतर्गत किया गया उसे राजनीति विज्ञान कहा जाने लगा। किंतु सीले और लीकाक आदि विद्वानों ने सरकार के अध्ययन को राजनीति विज्ञान की संज्ञा दी।

इसके विपरीत गिलक्राइस्ट ने राजनीति शास्त्र की परिभाषा देते हुए कहा है "राजनीति शास्त्र राज्य और सरकार की सामान्य समस्याओं का अध्ययन करता है।"

लेकिन उपरोक्त परिभाषाएं मानवीय पक्ष की अवहेलना के कारण अपूर्ण नजर आती है, क्योंकि कोई भी समाजविज्ञान, मानवीय तत्व के अध्ययन के बिना पूरा नहीं हो सकता। फिर राजनीति शास्त्र में तो राज्य और सरकार का विस्तृत अध्ययन इसलिए किया जाता है क्योंकि ये संस्थाएं मानवीय जीवन को बहुत अधिक प्रभावित करती हैं। एनसाइक्लोपेडिया ऑफ सोशल साइंसेज में 'हरमन' हेलेट ने तो यहां तक कहा है कि "राजनीति विज्ञान के संपूर्ण स्वरूप का निर्धारण उसकी मानव विषयक मौलिक मान्यताओं द्वारा ही होता है।"

राजनीति शास्त्र की तर्क संगत परिभाषा देते हुए यह कहा जा सकता है कि राजनीति विज्ञान समाज विज्ञान का वह अंग है जिसमें मानवीय जीवन के राजनीतिक पक्ष से संबंधित संस्थाओं, राज्य सरकार तथा अन्य संगठनों का अध्ययन किया जाता है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद ज्ञान के क्षेत्र में नवीन दृष्टिकोणों का प्रादुर्भाव हुआ फलस्वरूप राजनीति शास्त्र की परिभाषा में इस परंपरागत स्वरूप को अस्वीकार किया जाने लगा। इन वर्षों में यह स्वीकार किया जाने लगा कि मानव जीवन के विविध पक्षों (राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक) को एक–दूसरे से विभक्त नहीं किया जा सकता। अतः राजनीति शास्त्र को ऐसा विषय नहीं समझना चाहिए जो केवल मनुष्य की राजनीतिक गतिविधियों का ही अध्ययन करता है अपितु यह कहना उचित प्रतीत होता है कि राजनीति शास्त्र मुख्यतः व्यक्ति के राजनीतिक क्रियाकलापों तथा इसके संदर्भ में मानव जीवन के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा अन्य पक्षों का अध्ययन करता है।

राजनीति शास्त्र की परंपरागत और आधुनिक परिभाषाओं में समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए पिनॉक और स्मिथ लिखते हैं "इस प्रकार राजनीति शास्त्र किसी भी समाज में उन सभी शक्तियों, संस्थाओं तथा संगठनात्मक ढांचों से संबंधित होता है जिन्हें उस समाज की सुव्यवस्था की स्थापना और संधारण अपने सदस्यों के अन्य सामूहिक कार्यों के संपादन तथा उनके मतभेदों का समाधान करने के लिए सर्वाधिक अंतर्भावी और अंतिम माना जाता है।"

राजनीति शास्त्र और इतिहास का सह–संबंध

राजनीति शास्त्र और इतिहास एक–दूसरे से स्वाभाविक रूप से संबंधित हैं। इतिहास में व्यक्ति, समाज एवं राज्य के भूतकालिक जीवन का अध्ययन किया जाता है और राजनीति विज्ञान में राज्य के तीनों कालों भूत, वर्तमान और भविष्य का अध्ययन किया जाता है। इन दोनों विषयों का पारस्परिक संबंध बतलाते हुए 'सीले' लिखते हैं कि "राजनीति शास्त्र के बिना इतिहास का मूल नहीं और इतिहास के बिना राजनीति शास्त्र का कोई मूल नहीं।" अर्थात प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक इतिहास को गति दिशा एवं अर्थ देने का कार्य राजनीति शास्त्र ने ही किया है।

प्राचीन काल में राजनीतिक संस्थाएं, एवं राज्य ही इतिहास लेखन की मुख्य विषय वस्तु थी, उदाहरणार्थ ऋग्वैदिक काल में 'सभा', 'समिति' एवं 'विदथ' जैसी राजनीतिक संस्थाओं को इतिहासकारों ने अपने अध्ययन की विषयवस्तु बनाया जिसके परिणामस्वरूप राजनीतिक इतिहास को गति एवं दिशा मिली।

अतः हम कह सकते हैं कि इतिहास तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं का साक्षी है। सीले का कथन है कि "इतिहास मूल है और राजनीति शास्त्र फल है।" ए.एल. राउज ने तो "राजनीति शास्त्र को इतिहास की रीढ़ माना है।"

राजनीति शास्त्र में जिन समस्याओं का अध्ययन किया जाता है उनके गर्भ में उनका अपना इतिहास छिपा होता है। अतः इतिहास से परिचित हुए बिना न तो इन समस्याओं को ठीक रूप से समझा जा सकता है और न ही हल किया जा सकता है, क्योंकि कोई भी राज्य, राजनीतिक संस्था, राजनीतिक घटना का निर्माण एक विशेष समय पर नहीं होता। बल्कि इनका निर्मित होना एक विकास प्रक्रिया का ही परिणाम है, और किसी भी घटना, संस्था, राज्य इत्यादि को पूर्णतया समझने के लिए इतिहास के आधार पर उनके विकास का क्रम ज्ञान प्राप्त किया जाना आवश्यक है। अतः इतिहास का ज्ञान आवश्यक है।

हम कह सकते हैं कि राजनीति शास्त्र इतिहास पर निर्भर है क्योंकि वर्तमानकालीन राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन और भविष्य के लिए आदर्श व्यवस्था का चित्रण ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर भी किया जा सकता है।

इतिहास राजनीति की प्रयोगशाला या पथ प्रदर्शक भी है। विभिन्न समयों में मानवों द्वारा अपने जीवन में राजनीतिक क्षेत्र में अनेकों कार्य किये गये जिनके परिणाम और सफलता–असफलता का वर्णन इतिहास से प्राप्त होता है। राजनीतिक क्षेत्र के ये भूतकालीन कार्य, एक प्रयोग के समान ही होते हैं और ये भूतकालीन प्रयोग भविष्य के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करते हैं। उदाहरणार्थ भारतीय इतिहास के अध्ययन से हमें अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति का पता चलता है जिसके आधार पर अकबर ने एक विशाल एवं मजबूत साम्राज्य की स्थापना की। इसके विपरीत औरंगजेब के द्वारा धार्मिक पक्षपात की नीति अपनाने का परिणाम यह हुआ कि साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो गया।

जियाउद्दीन बरनी सल्तनत काल का प्रमुख इतिहासकार था। उसने सर्वप्रमुख कृति तारीख–ए–फिरोजशाही में लिखा है कि 'यदि मेरे ग्रंथ में प्रशासन के नियमों एवं संघर्ष समाप्त करने के उपायों को खोजा जायेगा तो वे इसमें मिलेंगे।' बरनी का मानना था कि वर्तमान शासक यदि अतीत के शासकों के क्रियाकलाप एवं उनकी समस्याओं को इतिहास द्वारा समझ लें तो वे इस प्रकार की समस्याओं से निजात पा सकते हैं। बरनी का यह कथन इतिहास एवं राजनीति शास्त्र के सह–संबंध को रेखांकित करता है।

मनुष्य अपने ऐतिहासिक अनुभव के आधार पर वर्तमान राजनीतिक जीवन में सुधार करते हुए भविष्य के लिए मार्ग निश्चित कर सकता है। लॉर्ड एक्टन के शब्दों में कहा जा सकता है कि "राजनीति शास्त्र इतिहास की धारा में उसी भांति संचित है जैसे कि नदी की रेत में सोने के कण।" इतिहास एवं राजनीति का सह–संबंध प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। कौटिल्य ने अपने ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में राजाओं को राजधर्म की शिक्षा ऐतिहासिक उदाहरणों के आधार पर ही दी थी।

इतिहास एवं राजनीति के सह–संबंध का उल्लेख करते हुए हम कह सकते हैं कि इतिहास संपूर्ण भूतकालीन जीवन का ब्यौरा प्रस्तुत करता है, लेकिन प्रमुख रूप से इसमें मानव की राजनीतिक गतिविधियों का ही अध्ययन किया जाता है।

भारत के इतिहास में से यदि हम चन्द्रगुप्त, अशोक, बाबर, अकबर, शाहजहां, औरंगजेब इत्यादि के राजनीतिक कार्यों और उपलब्धियों को अलग कर दिया जाय तो

उसमें शेष क्या रह जाएगा। 17वीं सदी का यूरोप का इतिहास, राष्ट्रवाद, व्यक्तिवाद, साम्राज्यवाद और समाजवाद जैसी राजनीतिक विचारधाराओं के अध्ययन के बिना महत्वहीन ही माना जाएगा। इसी प्रकार यदि हम 20वीं सदी के भारतीय इतिहास का अध्ययन करना चाहते हैं तो हमें राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना, सांप्रदायिक निर्वाचन का प्रारंभ और मुसलिम लीग का उदय, भारतीय शासन अधिनियम, द्वैद्य शासन, साइमन कमीशन, नेहरू रिपोर्ट, सविनय अवज्ञा आंदोलन, गोलमेज सम्मेलन, क्रिप्स कमीशन, भारत छोड़ो आंदोलन, केबिनेट मिशन, अंतरिम सरकार की स्थापना, भारत की स्वतंत्रता, भारत के वर्तमान संविधान का निर्माण और भारतीय संविधान के अंतर्गत हुए आम चुनाव का अध्ययन अनिवार्य है। इस प्रकार लीकॉक के शब्दों में हम कह सकते हैं कि "इतिहास का बहुत कुछ भाग राजनीति शास्त्र है।"

राजनीति शास्त्र के द्वारा इतिहास को वह दृष्टिकोण प्रदान किया जाता है जिसके परिपेक्ष्य में घटनाओं को उनके वास्तविक अर्थों में समझा जा सकता है।

एस.के. कोचर ने इतिहास तथा राजनीति के सह–संबंध को दर्शाते हुए लिखा है कि "शासन और इतिहास का संबंध कुछ ऐसा ही है जैसा कि वनस्पति शास्त्र का वनस्पति से तथा जीव शास्त्र का प्राणियों से।"

इतिहास एवं राजनीति के सह–संबंध में हम यह भी कह सकते हैं कि ऐतिहासिक घटनाएं राजनीतिक विचारधाराओं का परिणाम होती हैं अर्थात राजनीतिक विचारधाराएं ऐतिहासिक घटनाओं को जन्म देती हैं। उदाहरणार्थ कार्ल मार्क्स के विचारों का सोवियत रूस की राज्य क्रांति पर तथा महात्मा गांधी के विचारों का भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन पर निर्णायक प्रभाव पड़ा।

स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय जैसे राजनीतिक विचार भूतकाल से लेकर आज तक ऐतिहासिक घटनाओं को प्रभावित कर रहे हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इतिहास और राजनीति अन्योन्याश्रित है। दोनों की पारस्परिक निर्भरता के विषय में उल्लेख करते हुए सीले लिखते हैं कि "राजनीति उच्छश्रृंखल हो जाती है, यदि इतिहास द्वारा उसे उदार नहीं बनाया जाता और इतिहास कोरा साहित्य रह जाता है, यदि राजनीति से उसका संबंध विच्छेद हो जाता है।" इसी प्रकार बर्गेस भी लिखते हैं कि "यदि राजनीति शास्त्र और इतिहास का संबंध विच्छेद कर दिया जाय तो उसमें से एक मृत नहीं तो पंगु अवश्य हो जाएगा और दूसरा केवल आकाश कुसुम बनकर रह जायेगा।"

इतिहास और राजनीति शास्त्र में अंतर

इतिहास एवं राजनीति शास्त्र एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हुए भी एक–दूसरे से, कुछ भिन्नता लिए हुए भी हैं।

प्रो. बार्कर के शब्दों में – "यद्यपि इतिहास तथा राजनीति शास्त्र की सीमाएं प्रारंभ से अंत तक समान हैं परंतु वास्तव में ये दोनों भिन्न तथा स्वतंत्र हैं।"

इन दोनों विज्ञानों में निम्नलिखित अंतर प्रमुख हैं।

अध्ययन पद्धति का अंतर : इतिहास अध्ययन वर्णनात्मक पद्धति के आधार पर किया जाता है क्योंकि इसमें घटनाओं का क्रमबद्ध रूप से अध्ययन किया जाता है जबकि राजनीति शास्त्र में पहले विषयवस्तु अर्थात अध्ययन सामग्री का चयन किया जाता है तत्पश्चात पर्यवेक्षात्मक और विचारात्मक पद्धति के आधार पर अध्ययन सामग्री का अध्ययन किया जाता है।

क्षेत्र का अंतर : तुलनात्मक रूप से इतिहास का क्षेत्र राजनीति शास्त्र की अपेक्षा बहुत अधिक विस्तृत रूप लिए हुए है। इतिहास मनुष्य के भूतकालीन जीवन के विविध पक्षों जैसे राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक सभी पहलुओं का अध्ययन करता है।

उद्देश्य का अंतर : इतिहास का उद्देश्य घटनाओं को उनके मूल रूप में, तथा क्रमिक रूप में प्रस्तुत करना है किंतु अमुक घटना का भविष्य में क्या परिणाम होना चाहिए इस बात की जानकारी हमें इतिहास से नहीं मिलती अर्थात 'भविष्य में क्या होना चाहिए' इस बात से इतिहास संबंध नहीं रखता। जबकि इसके विपरीत राजनीति शास्त्र काल की तीनों अवस्थाओं भूत, वर्तमान तथा भविष्य का अध्ययन करता है। अतः हम कह सकते हैं कि इतिहास का अध्ययन यथार्थ पर आधारित है जबकि राजनीति शास्त्र का अध्ययन आदर्शात्मक है।

2.9 इतिहास और साहित्य

पूर्व में वर्णित विषय राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शन शास्त्र आदि, इतिहास के ही अभिन्न अंग थे। इतिहास उपरोक्त वर्णित विषयों के सहसंबंध के बिना अधूरा सा जान पड़ता है। हम यह कह सकते हैं राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शन शास्त्र इतिहास रूपी सूत्र के तार इस तरह एक दूसरे से लिपटे हुए हैं कि एक के बिना दूसरे की अलग कल्पना करना असंभव सा प्रतीत होता है।

साहित्य का इतिहास से संबंध कुछ भिन्न प्रकार का है, इतिहास का आरंभ साहित्य के एक अंग के रूप में हुआ। चाहे किसी भी युग का साहित्य हो वह अपनी विषयवस्तु तत्कालीन समाज व उसमें होने वाली घटनाओं से ही लेता है। इसी प्रकार इतिहास भी प्रमुख रूप से अपनी विषयवस्तु अतीतयुगीन समाज को ही बनाता है। अतः दोनों के पारस्परिक संबंध को समझने के लिए हमें साहित्य का भी अवलोकन करना आवश्यक है क्योंकि वर्तमान में घटित कोई भी घटना, समय व्यतीत हो जाने पर इतिहास बन जाती है। हमें इतिहास को समझने के लिए अतीत को समझना होगा और अतीत को समझने के लिए तद्युगीन साहित्य को समझना होगा। दूसरी ओर इतिहास को साहित्य की सर्वप्रमुख अभिव्यक्ति माना गया है। अतः हम कह सकते हैं कि इतिहास एवं साहित्य परस्पर अन्योन्याश्रित है।

प्राचीन समय में यह परंपरा थी कि इतिहास का, साहित्य के एक माध्यम के रूप में धर्म, नीति तथा राजनीति के प्रचार हेतु आश्रय लिया जाता था।

इतिहास को कला एवं साहित्य के आवरण में ढंककर प्रस्तुत करने का श्रेय मैकाले, कार्लाइल मोरले इत्यादि को जाता है। हमें इतिहास एवं साहित्य का समन्वय इनकी रचनाओं में पर्याप्त रूप से देखने को मिलता है।

परंतु कुछ समय पश्चात् नवीन युग का आरंभ हुआ। 19वीं शताब्दी के मध्य में इतिहास को वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत करने का प्रारंभ हुआ। इतिहास को साहित्यजनित कल्पना एवं रोचकता से मुक्त किया गया। इतिहास को वैज्ञानिक रीति से तथ्यात्मक रूप में विशुद्ध तरीके से प्रस्तुत करने के प्रयास आरंभ हुए। इतिहास को कला के साथ–साथ विज्ञान का भी दर्जा दिया जाने लगा। इतिहास की वैज्ञानिक अवधारणा के बावजूद भी इतिहास को साहित्य से पूर्णतः विलग करने की कल्पना कसौटी पर खरी

नहीं उतरती और इतिहास का साहित्य से संबंध पूरी तरह से खत्म नहीं किया जा सकता। व्यावहारिक रूप में हम यह कह सकते हैं कि इतिहास एवं साहित्य का संबंध हर युग की पुकार रही है और रहेगी, इन्हें पृथक किया जाना कदापि तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता।

डॉ. जॉनसन इसके कारण का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि, "इतिहास मानव के कार्यों का लेखा–जोखा है। साहित्य मानव के विचार एवं भावनाओं का अभिलेख है। एक अभिलेख को दूसरे अभिलेख के अध्ययन किए बिना कैसे समझा जा सकता है ? वस्तुतः इन दोनों अभिलेखों को परस्पर निकट लाने तथा उनकी तुलना करने पर ही साहित्य तथा इतिहास का अध्ययन सुदृढ़ बनाया जा सकता है।"

जी.आर. एल्टन के मतानुसार "इतिहास लेखन को वैज्ञानिक विधियों से परिष्कृत करने के बावजूद इसके प्रस्तुतीकरण में एवं व्याख्या में साहित्यिक शैली की नितान्त आवश्यकता होती है।"

जी.एम. ट्रेवेलियन के मतानुसार, "ऐतिहासिक तथ्यों की खोज प्रणाली वैज्ञानिक होनी चाहिए किंतु पाठकों के सामने उसे पेश करने की विधि कला है। शब्दों की लेखन कला साहित्य है।" साहित्य का इतिहास के साथ सह संबंध इस बात से भी प्रमाणित होता है कि इतिहास को जानने का सर्वप्रमुख स्रोत साहित्य ही है। हमारे वेद–पुराण, उपनिषद, सूत्र, वेदांग, वैदिक कालीन इतिहास की जानकारी देते हैं।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र यद्यपि साहित्य की ही प्रमुख कृति है। किंतु इतिहास में भी इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। इसी प्रकार कल्हण की कृति राजतरंगिणी को भी साहित्यिक कृति होते हुए भी राजनीति का प्रमुख ग्रंथ माना जाता है इसके साथ ही उसे इतिहास में भी अति विशिष्ट स्थान प्राप्त है, क्योंकि उसके अध्ययन से ही तद्युगीन राजाओं तथा उनकी राज्य व्यवस्था एवं समाज व्यवस्था से भली भांति परिचित हुआ जा सकता है।

इसी प्रकार विशाखदत्त का मुद्राराक्षस, कालिदास कृत कुमारसंभव, रघुवंश, अभिज्ञानशाकुन्तलम् आदि कृतियां अजर–अमर हैं तथा उस युग की सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को समझने का प्रमुख स्रोत हैं।

इसके अतिरिक्त हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति, बाण भट्ट का हर्ष चरित, चंदवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो, पद्म गुप्त कृत नवसाहसांक चरित आदि साहित्यिक कृतियां प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के प्रमुख स्रोत के रूप में उपयोग में लाई जाती हैं। अतः इतिहास एवं साहित्य का अटूट संबंध दृष्टिगोचर होता है और हम कह सकते हैं कि भारत में धार्मिक साहित्य एवं धर्मनिरपेक्ष साहित्य तद्युगीन इतिहास जानने का प्रमुख साधन है।

अन्य साहित्यिक कृतियों में अलबरूनीकृत तहकीक–ए–हिन्द, अमीर खुसरो कृत तारीखे अलाई, तुगलकनामा, जयदेवकृत गीत गोविन्द, मलिक मोहम्मद जायसी रचित 'पद्मावत' आदि ग्रंथ उल्लेखनीय हैं, जिनके द्वारा सल्तनतकालीन इतिहास को समझने में सहायता मिलती है।

मुगलकालीन व्यवस्था को समझने में 'बाबरनामा', गुलबदन बेगमकृत 'हुमायूंनामा', अबुल फजल कृत 'अकबरनामा' एवं आइने अकबरी, पदम सुन्दरकृत 'अकबर शाही' आदि साहित्यिक स्रोत प्रमुख रूप से उपयोग में लाये जाते हैं।

इसी प्रकार कुछ आधुनिक कृतियां गुलाम हुसैन कृत 'सियाल–उल–मुत्खैरीन', महात्मा गांधी कृत 'मेरी आत्मकथा', अबुल कलाम आजाद कृत 'इण्डिया विन्स फ्रीडम', इकबाल कृत 'तराना–हिन्द', बंकिम चन्द्र चटर्जी कृत 'आनन्द मठ' आदि प्रमुख रूप से तद्युगीन इतिहास पर प्रकाश डालती हैं। इसी प्रकार हमें क्षेत्रीय इतिहास जानने के लिए क्षेत्रीय साहित्यकारों की कृतियों का अवलोकन करना पड़ता है। क्योंकि क्षेत्रीय रीति–रिवाजों, सामाजिक व्यवस्था, आदि को समझने का श्रेष्ठ साधन क्षेत्रीय साहित्य ही है।

इसके अतिरिक्त आंचलिक इतिहास को जानने के लिए हमें अंचल विशेष में प्रचलित लोकगीतों, लोक मुहावरों, एकांकी, लोक कथाओं इत्यादि का अध्ययन साहित्यिक स्रोत के अंतर्गत करना पड़ता है। अतः इस रूप में साहित्य को इतिहास लेखन का प्रमुख आधार माना जा सकता है।

इतिहास के अध्ययन में साहित्य की आवश्यकता

वस्तुतः इतिहास एक नीरस विषय माना जाता है एवं आधुनिक युग में इतिहास में वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं नित नई–नई वैज्ञानिक विधियों का समावेश हो जाने के कारण यह और भी दुरूह बन गया है। ऐतिहासिक तथ्यों की निर्जीवता एवं नीरसता के कारण प्रायः विद्यार्थी इतिहास अध्ययन को पसंद नहीं करते। इसलिए इतिहास को रूचिकर बनाने एवं विद्यार्थियों को इतिहास अध्ययन की ओर प्रेरित करने के लिए उसमें साहित्य का समावेश अत्यंत आवश्यक है। इतिहास प्रस्तुतीकरण के समय तथ्यों की छेड़छाड़ न करते हुए उसमें साहित्यिक शैली का समावेश इतिहास को रूचिकर बनाने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगा। उदाहरणार्थ यदि किसी राजा या रानी की राजव्यवस्था का उल्लेख करने में यदि उसके रंग रूप का वर्णन साहित्यिक शैली में कर दिया जाय तो विद्यार्थी को वह राजा या रानी अपने सामने जीवन्त दृष्टिगोचर होंगे एवं विद्यार्थी राजा या रानी के व्यक्तित्व के संदर्भ में उसकी राजव्यवस्था को भी उचित प्रकार से आत्मसात कर पायेंगे।

अतः इतिहास को सहज, सरल, सरस, रोचक एवं सुबोध बनाने के लिए इतिहास में साहित्यिक शैली का ऐतिहासिक दायरे में रहते हुए समन्वय आवश्यक है।

किंतु यहां पर यह ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है कि साहित्यिक शैली का प्रयोग वहीं तक उचित है जहां तक किसी तथ्य की ऐतिहासिकता अक्षुण्ण रहे। वरना फिर वह इतिहास नहीं कोरी कल्पना रह जायगा। यह सर्वविदित है कि यर्थाथता ही इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है।

अंततः हम यही कह सकते हैं कि उचित सीमा रेखा का ध्यान रखते हुए इतिहास एवं साहित्य का परस्पर विद्यार्थियों के लिए संबंध लाभप्रद सिद्ध होता है।

साहित्य में इतिहास की भूमिका

इतिहास लेखन में साहित्य की भूमिका तो है ही, साहित्य में भी इतिहास की अहम भूमिका रही है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के कई साहित्यकारों के साहित्य की प्रमुख विषय वस्तु इतिहास रहा है। प्राचीनयुगीन साहित्य तो अधिकांशतः इतिहास से ही भरा पड़ा है। मध्य युग में हम अमीर खुसरो को एक ऐसे साहित्यकार के रूप में पाते हैं जिनकी प्रायः सभी कृतियों की मुख्य विषय वस्तु इतिहास पर ही केंद्रित रही। आधुनिक काल में हम महापंडित राहुल सांकृत्यायन को भी इसी परंपरा को आगे बढ़ाता देखते हैं। राहुल जी एक महा यायावार थे। अपनी घुमक्कड़ी के दौरान

उन्होंने कई पुरातात्विक वस्तुयें एवं ऐतिहासिक तथ्य एकत्रित किये थे। अपने द्वारा अर्जित इस ऐतिहासिक ज्ञान में वे आम जनता की भागीदारी चाहते थे। अतः उन्होंने साहित्य के माध्यम से रोचक इतिहास लिखा। राहुलजी की इतिहास की विषय वस्तु पर केंद्रित प्रमुख साहित्यिक कृतियां – 'वोल्गा से गंगा', 'कनैला की कथा', 'दिवोदास', 'सिंह सेनापति', 'जय योधेय', 'विस्मृत यात्री' इत्यादि थीं। उक्त कहानी संग्रह एवं उपन्यास अत्यंत रोचकता के साथ इतिहास प्रस्तुत करते हैं। इस तारतम्य में स्वयं राहुल जी ने लिखा है – 'मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी कि भारत की ऐतिहासिक सामग्री को इस्तेमाल करते हुए कुछ ऐसे उपन्यास एवं कहानियां लिखी जायें जिससे हमारी प्रगतिशीलता को समझने में मदद मिले।'

राहुल सांकृत्यायन द्वारा सृजित कृति 'वोल्गा से गंगा' न केवल भारत अपितु समस्त विश्व में 'इतिहास एवं साहित्य' के समवाय का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती है। यह एक ऐसी कृति है जिसका कि विश्व की सर्वाधिक भाषाओं में अनुवाद हुआ। विद्वानों का मानना है कि – 'किसी भी भारतीय भाषा में इस हिन्दी पुस्तक के समान अन्य ग्रंथ नहीं है। इसमें उन्होंने प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास को सहज, सरल, सुबोध एवं सरस ढंग से प्रस्तुत किया है।' इस कृति के बारे में डॉ. नगेन्द्र का यह कथन उल्लेखनीय है कि 'लेखक की सृजन शक्ति का परिचय वातावरण की सृष्टि से भी मिलता है, इतिहास के प्रस्तर खण्डों को बड़े कौशल से जोड़कर उन्होंने प्रत्येक युग के वातावरण की सजीव सृष्टि की है।' भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने राहुल जी की ऐतिहासिक कहानियों को कहानियां कम, इतिहास अधिक माना है। डॉ. प्रताप नारायण टंडन ने राहुल के ऐतिहासिक उपन्यासों को 'सांस्कृतिक इतिहास निरूपित किया है।'

मध्य युग में भारत के प्रमुख राजपूत शासक पृथ्वीराज चौहान पर भी उत्कृष्ट कोटि का साहित्य लिखा गया। कवि चंदवरदायी कृत पृथ्वीराज रासो तो आज हिन्दी साहित्य का अभिन्न अंग बन चुकी है। संस्कृत भाषा में विरचित जीवनी परक ऐतिहासिक महाकाव्यों में जयानक कृत 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्यम' एक उत्कृष्ट कोटि की साहित्यिक कृति है। यह एक ऐसी साहित्यिक रचना है जिसका उपयोग किये बिना पृथ्वीराज चौहान का प्रमाणिक इतिहास नहीं लिखा जा सकता। पृथ्वीराज चौहान से संबंधित जितने भी शोध इतिहास जगत में हुये उनमें जयानक की इस कृति का उपयोग एक प्रमाणिक प्राथमिक स्रोत के रूप में किया गया है।

इतिहास और साहित्य को समन्वित कर ऐतिहासिक साहित्य के सृजन में अमीर खुसरो, जयानक, चंदवरदायी, वृन्दावन लाल वर्मा एवं चतुर सेन शास्त्री आदि कई विद्वानों को लिया जा सकता है। ऐतिहासिक साहित्य का सृजन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। ऐतिहासिक साहित्य के सृजन में संलग्न विद्वानों को चेतावनी देते हुये महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि – 'ऐतिहासिक उपन्यास में हमें ऐसे समाज और उसके व्यक्तियों का चित्रण करना होता है जो सदा के लिये विलुप्त हो चुका है, किंतु उसने कुछ पदचिन्ह अवश्य छोड़े हैं, जो उसके साथ मनमानी करने की इजाजत नहीं दे सकते। इन पदचिन्हों या ऐतिहासिक अवशेषों के पूरी तौर पर अध्ययन को यदि आप अपने लिये दुष्कर समझते हैं तो कौन कहता है, आप जरूर ही इस पथ पर कदम रखें।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास एवं साहित्य दोनों ही एक–दूसरे के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इतिहास के प्रस्तुतीकरण में हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि

इतिहास की मूल आत्मा यथार्थवाद है न कि साहित्य। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि इतिहास एवं साहित्य एक–दूसरे के पूरक हैं इनका समवाय आज समय की पुकार है, परंतु इनके समवाय में काफी संतुलित रहने की आवश्यकता है। इतिहास से साहित्य का समन्वय उसे जन सामान्य के लिये बोधगम्य बनाता है। अंततः हम यहीं कहेंगे कि ऐतिहासिक तथ्यों की खोज प्रणाली तो वैज्ञानिक होनी चाहिये, मगर उनके प्रस्तुतीकरण में साहित्यिक विधा का प्रयोग किया जाना चाहिये। इतिहास एवं साहित्य का संतुलित समवाय होना चाहिये, जिसमें कि ऐतिहासिक यथार्थवाद की पूर्ण रक्षा होनी चाहिये। यह तथ्य हमेशा ध्यान रखना चाहिये कि यथार्थता ही इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कटौती है, न कि साहित्य, इतिहास एवं साहित्य का समन्वय बहुत ही विवेक सम्मन होना चाहिये।

अपनी प्रगति जांचिए

7. किसने लिखा है कि, "राजनीति विज्ञान के बिना इतिहास का मूल्य नहीं है और इतिहास के बिना राजनीति का।"

   (क) जियाउद्दीन वरनी (ख) सीले

   (ग) पिनॉक और स्मिथ (घ) लॉर्ड एक्टन

8. इतिहास को साहित्यजनित कल्पना एवं रोचकता से मुक्त कर वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत करने का यत्न कब आरंभ हुआ?

   (क) 18वीं शताब्दी में (ख) 19वीं शताब्दी के मध्य में

   (ग) 20वीं शताब्दी के आरंभ में (घ) आधुनिक काल में

2.10 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (क)
3. (ख)
4. (घ)
5. (घ)
6. (क)
7. (ख)
8. (ख)

2.11 सारांश

पुरातात्विक वस्तुएं इतिहास जानने का सर्वश्रेष्ठ साधन हैं परंतु इसके लिए वैज्ञानिक प्रविधि से यह देखना होता है कि वह पुरातात्विक वस्तु किस काल की है। पुरातत्वविदों द्वारा प्रतिपादित काल निर्णय के स्तरीकरण सिद्धांत के द्वारा उस वस्तु की प्राचीनता का पता चलता है। पिटरिवर्स (1835–1902 ई.) ने पुरातत्व स्तरीकरण के वैज्ञानिक अध्ययन

एवं विवेचना की नींव डाली। भारत में पुरातत्व के स्तरीकरण के सिद्धांत के अनुसार, यदि कोई भू–गार्भिक उथल–पुथल नहीं हुआ है तो सबसे निचले स्तर से प्राप्त पुरावशेष प्राचीनतम एवं सबसे ऊपर के स्तर से प्राप्त होने वाले पुरावशेष नवीनतम होंगे।

इतिहास में मानव के कार्य व्यवहार का अध्ययन किया जाता है एवं मानवीय कार्य व्यापार भौगोलिक कारकों द्वारा प्रभावित रहता है अतः इतिहास में भौगोलिक परिस्थितियों के सापेक्ष में ही घटनाओं को समझा जाना चाहिये। जॉनसन ने तो काल एवं भूगोल को इतिहास का नेत्र बताकर इतिहास तथा भूगोल के संबंधों के महत्व को रेखांकित किया है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इतिहास एवं भूगोल एक दूसरे के पूरक हैं। वे अन्योन्याश्रित रूप से एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबद्ध हैं। अतः इतिहास तथा भूगोल एक दूसरे को परस्पर प्रभावित करते हैं।

इतिहास एवं मानवशास्त्र दोनों के ही अध्ययन का प्रमुख केंद्र मानव है। इतिहास में जहां हम मानव के क्रियाकलापों के अध्ययन पर जोर देते हैं, वहीं मानवशास्त्र के तहत हम मानव के उद्‌भव एवं विकास का अध्ययन करते हैं परंतु मानव एवं उसकी संस्कृति का अध्ययन इतिहास तथा मानवशास्त्र दोनों की ही प्रमुख विषय–वस्तु है।

सामाजिक विकास तथा परिवर्तन की गतियों का अध्ययन समाजशास्त्र के माध्यम से प्रारंभ हुआ है। काम्टे के अनुसार इतिहास सामाजिक भौतिकशास्त्र है जिसके तहत मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों का अध्ययन किया जाता है। मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों का अध्ययन एक समाजशास्त्री भी समाजशास्त्र के तहत करता है। अतः मानव, मानव का सामाजिक व्यवहार एवं उसके सामाजिक क्रियाकलाप आदि सभी इतिहास के साथ–साथ समाजशास्त्र के अध्ययन की भी मुख्य विषय–वस्तु हैं।

कार्ल मार्क्स ने अर्थशास्त्र को इतिहास की आधारशिला माना है। उनके शब्दों में, "इतिहास की व्याख्या केवल आर्थिक घटनाओं के माध्यम से की जा सकती है। किसी भी शासन–व्यवस्था के संबंध में सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए, यह सदैव आवश्यक है कि देश की तत्कालीन आर्थिक घटनाओं और दशाओं का ज्ञान हो।"

मनुष्य अपने ऐतिहासिक अनुभव के आधार पर वर्तमान राजनीतिक जीवन में सुधार करते हुए भविष्य के लिए मार्ग निश्चित कर सकता है। लॉर्ड एक्टन के शब्दों में कहा जा सकता है कि "राजनीति शास्त्र इतिहास की धारा में उसी भांति संचित है जैसे कि नदी की रेत में सोने के कण।" इतिहास एवं राजनीति का सह–संबंध प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। कौटिल्य ने अपने ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में राजाओं को राजधर्म की शिक्षा ऐतिहासिक उदाहरणों के आधार पर ही दी थी।

इतिहास एवं साहित्य दोनों ही एक–दूसरे के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इतिहास के प्रस्तुतीकरण में हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि इतिहास की मूल आत्मा यथार्थवाद है न कि साहित्य। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि इतिहास एवं साहित्य एक–दूसरे के पूरक हैं इनका समवाय आज समय की पुकार है, परंतु इनके समवाय में काफी संतुलित रहने की आवश्यकता है। इतिहास से साहित्य का समन्वय उसे जन सामान्य के लिये बोधगम्य बनाता है। अंततः हम यहीं कहेंगे कि ऐतिहासिक तथ्यों की खोज प्रणाली तो वैज्ञानिक होनी चाहिये, मगर उनके प्रस्तुतीकरण में साहित्यिक विधा का प्रयोग किया जाना चाहिये।

2.12 मुख्य शब्दावली

- **परिधि** : सीमांकन संबंधी घेरा।
- **अतीत** : बीती हुई समयावधि।
- **धात्विक** : धातुओं से संबंधित।
- **पाषाण काल** : लौह युग।
- **प्रागैतिहासिक** : इतिहास से पूर्व।
- **कालानुक्रम** : तिथियों/वर्षों में निबद्ध समय का क्रम।
- **ग्लोब** : पृथ्वी को प्रदर्शित करने वाला प्रतीक।
- **अवलोकन** : देखना।
- **पंगु** : अपंग/अपाहिज।

2.13 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. पुरातत्व को इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी क्यों कहा गया है?
2. इतिहास के अध्ययन के लिए भूगोल का अध्ययन क्यों आवश्यक है?
3. मानव विज्ञान से क्या तात्पर्य है?
4. इतिहास और समाजशास्त्र में दो अंतर बताइए।
5. दर्शनशास्त्र में दर्शन का विशेष अर्थ क्या है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास लेखन में भूगोल की भूमिका स्पष्ट करते हुए ऐतिहासिक घटनाओं पर भौगोलिक कारकों के प्रमाण रेखांकित कीजिए।
2. राजनीति शास्त्र और इतिहास का सह–संबंध स्पष्ट कीजिए।
3. इतिहास के अध्ययन में अर्थशास्त्रीय ज्ञान की महत्ता का उल्लेख कीजिए।
4. इतिहास एवं दर्शन में साम्य–वैषम्य दर्शाइए।
5. इतिहास के अध्ययन में साहित्य की आवश्यकता और भूमिका का अवलोकन कीजिए।

2.14 सहायक पाठ्य सामग्री

1. कार ई.एच., इतिहास क्या है, अनुवाद अशोक चक्रधर, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1993.
2. चौबे झारखंडे, इतिहास दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1999.
3. थापर रोमिला, इतिहास की पुनर्व्याख्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991.

4. पांडेय गोविंद चंद्र, इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धांत, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1993.
5. पांचाल एवं बघेला, इतिहास के सिद्धांत एवं पद्धतियां, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर.
6. बुद्ध प्रकाश, इतिहास दर्शन, हिंदी समिति, प्रयाग, 1962.
7. राय कौलेश्वर, इतिहास दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, 1999.
8. लोहिया राममनोहर, इतिहास चक्र, लहर प्रकाशन, इलाहाबाद, 1935.
9. वर्मा लालबहादुर, इतिहास के बारे में, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000.
10. शर्मा रामविलास, इतिहास दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995.
11. सांकृत्यायन राहुल, अतीत से वर्तमान, विद्या मंदिर प्रेस, वाराणसी, 1956.
12. श्रीवास्तव बी.के., इतिहास लेखन : अवधारणा, विधाएं एवं साधन, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा, 2008.

इकाई 3 इतिहास लेखन की परंपराएं

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 ग्रीको–रोमन परंपरा
3.3 प्राचीन भारतीय परंपरा
3.4 मध्यकालीन पश्चिमी अरबी, फारसी और भारतीय इतिहास लेखन
3.5 आधुनिक इतिहास लेखन
  3.5.1 प्रत्यक्षवाद
  3.5.2 उदारवाद
  3.5.3 परंपरागत मार्क्सवाद
  3.5.4 एनाल्स
  3.5.5 एनाल्स विचारक
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

प्राचीन काल से ही समय–समय पर इतिहास लेखन की विभिन्न परंपराएं विकसित हुई हैं। समय के साथ इतिहास लेखन की ये परंपराएं परिवर्तनशील रहीं। देश, काल, परिस्थिति के साथ–साथ सामाजिक परिवेश इतिहास लेखन को प्रभावित करते हैं। इतिहास लेखन की परंपरा का आरंभ यूरोप में यूनान से हुआ। प्रारंभिक यूनानी विद्वानों ने समकालीन लेखन पर ही ध्यान दिया। समय बीतने के साथ–साथ यूनानी इतिहास लेखन में परिपक्वता आई। इतिहास में गंवेषणा पर ध्यान दिया जाने लगा। यूनानियों ने अपने पूर्वजों की स्मृति एवं वंशावलियों को सहेजने के उद्देश्य से नृशंषों की रचना की। नृशंषों के साथ–साथ उनकी रचनाओं में भूगोल, मानवशास्त्र एवं समाजशास्त्र संबंधी जानकारी दी जाने लगी।

इतिहास शब्द का पुस्कल प्रयोग हमें प्राचीन भारतीय वेद वाङ्मय में मिलता है। इतिहास शब्द का विश्व में प्राचीनतम उल्लेख अर्थवेद में मिलता है। इसके बावजूद कतिपय पाश्चात्य इतिहासकारों ने आरोप लगाया है कि प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव था। कई भारतीय विद्वानों ने पाश्चात्य इतिहासकारों के इस मत को तर्कसम्मत ढंग से गलत साबित किया। प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रति जागरूक थे इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि वैदिक ऋषियों, बौद्ध तथा जैन आचार्यों की सूचियां आज भी उपलब्ध हैं। महाभारत के अनुसार–'ऐसी प्राचीन रुचिकर कथा जिससे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की शिक्षा मिल सके इतिहास कहलाती थी।' छंदोग्य उपनिषद में तो इतिहास को पांचवा वेद कहा गया है।

प्राचीन भारतीय इतिहास में युग चक्रवादी सिद्धांत प्रतिपादित किया गया। अवतारवाद भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण अवधारणा थी। गीता में कर्म सिद्धांत पर

टिप्पणी

बल दिया गया। प्राचीन भारतीयों ने राजनीतिक इतिहास के स्थान पर सामाजिक एवं सांस्कृति इतिहास अधिक प्रस्तुत किया। मौर्यकाल में कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक महत्वपूर्ण कृति थी। कौटिल्य ने इतिहास के मूल–भूत तथ्यों पर प्रकाश डाला है। गुप्तकाल में विभिन्न अभिलेख लिखे गये जिनमें हरिशेण रचित प्रयाग प्रशस्ति आज भी गुप्तकालीन इतिहास का महत्वपूर्ण स्रोत है।

बाणभट्ट का हर्ष चरित एवं कल्हण की राजतरंगिणी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। कल्हण ने तो अपनी राजतरंगिणी में इतिहास के मूलभूत तथ्यों का उल्लेख किया है। उसकी राजतरंगिणी को कई विद्वानों ने प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन का महत्वपूर्ण ग्रंथ माना है। जयानक का पृथ्वीराज विजय महाकाव्य भी प्राचीन भारतीय इतिहास का एक प्रमाणिक ग्रंथ है। पृथ्वीराज चौहान के बारे में प्रमाणिक जानकारी इसी ग्रंथ में उपलब्ध है। इससे पता चलता है कि प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की परंपरा विद्यमान थी।

प्राचीन इतिहास लेखन की तुलना में मध्यकालीन इतिहास लेखन की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि मध्यकालीन इतिहासकारों ने इतिहास में दैवीय विधान को महत्व दिया जिसमें व्यक्ति का हस्तक्षेप न के बराबर था। इसाई धर्म के प्रसार एवं पवित्र रोमन साम्राज्य के पतन की पृष्ठभूमि में मध्यकालीन पश्चिमी इतिहास लेखन कला का आरंभ एवं विकास हुआ। मध्यकालीन इतिहास लेखन की परंपरा में धर्म को विशिष्ट महत्व दिया गया। पश्चिमी इतिहास लेखन का प्रमुख केंद्र बिंदु ईसाई इतिहास लेखन की परंपरा है। जहां इतिहास लेखन की ग्रीक–रोमन परंपरा में बुद्धि एवं विवेक का महत्वपूर्ण स्थान था, वहीं ईसाई इतिहास लेखन की परंपरा में धर्म का सर्वोपरि स्थान है। ईसाई इतिहासकारों ने रोमन साम्राज्य के पतन के उपरांत विभिन्न देशों में राजवंशों के उत्थान–पतन के साथ–साथ ईसाई धर्म और चर्च के प्रभाव पर अपनी रचनाएं प्रस्तुत की।

इतिहास लेखन की ईसाई परंपरा की भांति इसलामी इतिहालेखन की परंपरा में भी अल्लाह (ईश्वर) को सृष्टि का निर्माता माना गया है। इसलाम के उदय, विकास एवं विस्तार ने अरबी एवं फारसी इतिहास लेखन के लिये आधार तैयार किया। इनके इतिहास में इसलाम के उद्‌भव मोहम्मद साहब के कार्यों, विचारों, उपदेशों, इस्लामिक सिद्धांतों खलीफाओं के शासन काल की घटनाओं एवं विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में फैले इस्लामिक साम्राज्य के क्रियाकलापों की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

इस इकाई में हम ग्रीको रोमन परंपरा, प्राचीन भारतीय परंपरा, मध्यकालीन, पश्चिमी, अरबी एवं फारसी इतिहास लेखन की विस्तृत विवेचना करेंगे।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- इतिहास लेखन की ग्रीको रोमन परंपरा के बारे में जान पाएंगे;
- इतिहास लेखन में प्राचीन भारतीय परंपरा के महत्व को समझ पाएंगे;
- मध्ययुगीन पश्चिमी, अरबी, फारसी और भारतीय इतिहास लेखन को समझ पाएंगे;
- आधुनिक इतिहास लेखन के प्रत्यक्षवाद, उदारवाद, मार्क्सवाद आदि परंपराओं से अवगत हो पाएंगे।

3.2 ग्रीको–रोमन परंपरा

टिप्पणी

इतिहास लेखन के क्षेत्र में यूनानियों के प्रयास सर्व सराहनीय थे। उन्होंने इतिहास लेखन को मात्र आख्यान तक सीमित न रख कर एक शोध के रूप में स्वीकार किया। प्रो. थाम्पसन के अनुसार 'यूनानियों ने सभी तरह का इतिहास लिखा। उन्होंने ही सर्वप्रथम वास्तविक इतिहास लिखने की कला सीखी, इसके उद्देश्यों, इसके कार्यों और इसके नियमों को बतलाया। यूनानी विज्ञान एवं दर्शन की भांति इतिहास के भी जन्मदाता थे।' यूनानी इतिहास लेखन की प्रारंभिक स्वरूप वीरगाथा काव्य के रूप में परिलक्षित होता है। युद्ध में विजय हासिल करने वाले वीरों की स्तुति में लिखे गये ये गीत अतीत का विवरण प्रस्तुत करते थे। आठवीं सदी के लगभग होमर ने इन गीतों को संकलित किया। जहां तक साहित्य के इतिहास का प्रश्न है होमर की कविताओं में काफी ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। मेसेन का इतिहास इन कविताओं में मिलता है। शाटवेल ने लिखा है कि–"यूनानियों के लिये होमर की कविताओं का वही महत्त्व है जो यहूदियों के लिये ओल्ड टेस्टामेंट का था। इसने यूनानी बौद्धिक जीवन को दूर तक प्रभावित किया।" होमर द्वारा रचित 'इलियड' एवं 'ओडिसी' जैसे महाकाव्यों को यूनानी साहित्य में अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है।

युग चक्रवादी सिद्धांत

इतिहास लेखन की ग्रीको–रोमन अवधारणाओं में यूनानी कवि हेसियोड द्वारा प्रतिपादित युग चक्रवादी सिद्धांत का भी महत्वपूर्ण स्थान है। हेसियोड ने चार धातुओं के नाम पर चार युगों की परिकल्पना प्रस्तुत की थी–प्रथम युग स्वर्ण युग, द्वितीय युग रजत युग, तृतीय युग कांस्य युग एवं चतुर्थ व अंतिम युग लौह युग था। स्वर्ण युग में जहां मानव श्रेष्ठतम स्थिति में था वहीं वर्तमान में चल रहे लौह युग में मानव अपनी हीनतम अवस्था में है। वर्तमान काल लौह युग में मानव जीवन दुःख से परिपूर्ण है। यूनानी कवि हेसियोड ने धर्मशास्त्र के प्रति अत्यधिक रुचि दर्शाते हुए देवों के जन्म के साथ मानवीय संबंधों को जोड़ने का प्रयास किया था। कॉलिंगवुड ने हेसियोड की युग–चक्रवादी अवधारणा को अनैतिहासिक अवधारणा करार दिया है। वस्तुतः कई विद्वानों ने होमर एवं हेसियोड की रचनाओं को इतिहास नहीं माना। शाटवेल ने तो यहां तक कहा है कि ये पद्यात्मक रचनायें इतिहास के मार्ग में बाधक हैं।

परीक्षा सिद्ध गवेषणा पर आधारित इतिहास लेखन

विश्व इतिहास में छठीं शताब्दी ई.पू. का काल महत्वपूर्ण था। इस काल में कई युगांतरकारी घटनाएं घटित हुईं। रुढ़िवाद स्थान पर तर्क सम्मत अवधारणाओं पर बल दिया गया। भारत में बौद्ध एवं जैन धर्म ने प्राचीन रुढ़िवादी परंपराओं पर प्रहार किया। विश्व के अन्य भागों में भी प्राचीन रुढ़िवादी परंपराओं का तर्क के आधार पर परीक्षण की प्रवृत्तियां दिखाई दीं। यूनान में भी कल्पना एवं पौराणिकता के स्थान पर तर्क और चिंतन के आधार पर घटनाओं की व्याख्या के प्रयास हुए। इस संबंध में विद्वानों की मान्यता है कि ऐसा संभवतः यूनानियों और इरानियों के संपर्क के फलस्वरूप हुआ। इस समय यूनान के कुछ भाग पर इरानियों ने कब्जा कर लिया। इससे दोनों संस्कृतियों का समन्वय हुआ। इस सांस्कृतिक समन्वय ने चिंतन, मनन एवं लेखन को प्रभावित किया।

टिप्पणी

छठीं शताब्दी ई.पू. यूनानी पुरोहितों, उच्चाधिकारियों एवं न्यायाधीशों की तालिकाओं, विभिन्न राजाओं की वंशावलियों, संधि–विग्रह के लेखों को संरक्षित करने के प्रयास किये गये। आयोनिया के लेखकों ने सरल गद्य में विभिन्न नगरों, निगमों, जातियों, राजवंशों एवं मंदिरों की परंपराओं के साथ–साथ लोक प्रचलित किंवदंतियों को भी लेख बद्ध किया गया। इस कार्य को लोगोग्राफी कहा गया।

यूनान के प्रारंभिक लेखकों में मिलेटस का कादमस (550 ई.पू.) एवं हेकेटियस (550 ई.पू.), आरगोस का अकूसिलौस (580 ई.पू.), लेसबोस का हिलेनिकस (485 ई.पू), लेम्पसेकस का चारोन (470 ई.पू.) एवं लेरोस का फेदेसिदेस (400 ई.पू.) आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। इन सभी लेखकों का लेखन कार्य लोगोग्राफी के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है।

यूनान में तर्क परीक्षण सत्यानुसंधान के आधार पर इतिहास लेखन की प्रवृत्ति निरंतर विकसित होती गई। यूनानी इतिहास लेखन के आधार स्तंभ प्रारंभिक इतिहासकार निम्नानुसार हैं–

1. **हेकेटियस**–हेकेटियस का जन्म छठी शताब्दी ई.पू. हुआ था। उसके द्वारा लिखित प्रथम कृति 'विश्व पर्यटन' में उसकी फारस यात्रा का का वर्णन है। उसकी द्वितीय कृति 'स्थानीय वंशावलियों का ग्रंथ बुक ऑफ लोकल जीमियोलॉजी' में प्राचीन आख्यानों की आलोचना प्रस्तुत की गई है। इसकी दोनों पुस्तकें उसके द्वारा प्रतिपादित इतिहास लेखन के दो सिद्धांतों का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। हेकेटियस द्वारा प्रति पादित इतिहास लेखन के दो सिद्धांत थे– 1. सच्चाई, 2. पारंपरिक आख्यानों का आलोचनात्मक परीक्षण। हेकेटियस के स्वयं के शब्दों में, "मैं उसी चीज को लिखता हूं जिसे मैं सत्य समझता हूं क्योंकि यूनानियों की अनेक कहानियां हैं जो मुझे हास्यास्पद लगती हैं।" वस्तुतः हेकेटियस की उक्त दोनों कृतियां मूलतः इतिहास के रूप में प्रतिस्थानित भले ही न हो पाई हों मगर इतिहास तत्व की रक्षा इनमें निहित है। 'विश्व का पर्यटन' में फारस का इतिहास मिलता है। आज भी हम यात्रियों के विवरणों को इतिहास के साहित्यिक स्रोत के रूप में देखते हैं। दूसरी चीज सच्चाई अर्थात् यथार्थ, यह भी वर्तमान में इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी मानी जाती है।
2. **हेरोडोटस (480–430 ई.पू.)**– इतिहास के जनक हेरोडोटस का जन्म 480 ई.पू. एशिया माइनर के हेलिकारनेसस (Halicarnassus) में हुआ था। हेरोडोटस की इतिहास संबंधी अवधारणा मानववादी थी। कॉलिंगवुड के अनुसार हेरोडोटस के इतिहास लेखन का एकमात्र लक्ष्य भावी पीढ़ी के लिये अतीत के मानवीय कार्यों को सुरक्षित रखना था। हेरोडोटस ने प्राकृतिक नियमों को इतिहास में प्रधानता दी। उन्होंने मानवीय कार्य व्यापार को प्रकृति, भौगोलिक परिस्थिति एवं वातावरण के सापेक्ष में भी देखने की एक सीमा तक कोशिश की। अपने विवरणों को अधिक सरल एवं बोधगम्य बनाने के लिये हेरोडोटस ने कथा, कहानियों एवं आख्यानों का भी सहारा लिया था। यही कारण है कि आज भी हेरोडोटस को कथात्मक इतिहास का एक अधिकारी विद्वान तथा आदर्श ज्ञाता माना जाता है। अपनी प्रथम रचना में हेरोडोटस ने 478 ई.पू. यूनानियों द्वारा पर्शियन राज जेरेक्स (Xerxes) की सेनाओं के विध्वंश/शक्ति का विवरण

प्रस्तुत किया है। इस कृति में उसने अंधी राजभक्ति से ऊपर उठकर पर्शियनों की वीरता की अत्यधिक प्रशंसा की है जो उसके पूर्वाग्रह मुक्त लेखन का उदाहरण है।

टिप्पणी

हेकेटियस ने जहां पारंपरिक आख्यानों का आलोचनात्मक परीक्षण प्रस्तुत किया, वहीं हेरोडोटस ने आख्यान लेखन के रिवाज को वैज्ञानिक इतिहास–लेखन में परिवर्तित कर दिया। उनके द्वारा साक्ष्यों की व्यापक मदद इसका प्रमाण है। उन्होंने वैज्ञानिक प्रविधि का प्रयोग कर एक तर्कपरक पद्धति का अवलम्बन यह जानने के निहित किया कि अतीत में मानव ने क्या व क्यों किया। उनके इतिहास लेखन को एक देश के इतिहास को दूसरे देश से परिचित कराने की परंपरा के आरंभ का भी श्रेय जाता है। हेरोडोटस के इतिहास लेखन की एक अन्य विशेषता राजनीतिक इतिहास के साथ–साथ सांस्कृतिक परिवेश को प्रमुखता देना तो, वर्तमान में भी प्रासंगिक प्रतीत होती है। इस प्रकार हेरोडोटस ने सर्वप्रथम इतिहास को न केवल व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा अपितु उसके वैज्ञानिक स्वरूप का भी आंशिकतः प्रतिपादन किया। प्रो. शाटवेल के अनुसार, "हेरोडोटस में आलोचनात्मक खोज की प्रवृत्ति थी। उसकी रचना शैली भी अनुपम थी।" प्रो. बार्ने ने भी इतिहास लेखन के क्षेत्र में हेरोडोटस की भूमिका का प्रतिपादन इन शब्दों में किया है, "इतिहास लेखन के क्षेत्र में हेरोडोटस का यश एक रचनात्मक कलाकार के रूप में सदैव अमर रहेगा।"

3. **थ्यूसीडाइडीस (456–396 ई.पू.)**– थ्यूसीडाइडीस ने हेरोडोटस से भिन्न रूप में इतिहास का अवलोकन किया और इतिहास को काव्यात्मक पद्य एवं अलौकिकता से मुक्त किया। यही कारण है कि यूनानी इतिहास लेखन की परंपरा में थ्यूसीडाइडीस को हेरोडोटस का उत्तराधिकारी नहीं माना जाता। कॉलिंगवुड के अनुसार हेरोडोटस इतिहास के जन्मदाता हो सकते हैं मगर मनोवैज्ञानिक इतिहास के जनक थ्यूसीडाइडीस हैं। थ्यूसीडाइडीस ने यथार्थता पर जोर देते हुए इतिहास में विश्वसनीयता लाने का आग्रह किया। जहां इतिहास के जनक हेरोडोटस का आग्रह रोचक विधि से घटनाओं के प्रस्तुतीकरण में था, वहीं थ्यूसीडाइडीस ने इतिहास के शिक्षात्मक पहलू पर जोर दिया।

इतिहास लेखन की परंपरा में थ्यूसीडाइडीस का सर्वप्रमुख योगदान यह है कि उसने अपने इतिहास लेखन में एक प्रणाली विज्ञान (Methodology) का अनुप्रयोग किया। थ्यूसीडाइडीस स्वयं को मुख्य विषय पर केंद्रित रखता था, तथ्यों का संकलन कर मुख्य विषय से संबद्ध तथ्यों का चयन करता था एवं अनुपयोगी तथ्यों का परित्याग करता था। विषय का विश्लेषण भी इतिहास लेखन की एक विशेषता थी। तथ्यों पर अत्यधिक जोर देने के कारण कई विद्वान उसके विवरण को नीरस कहकर उसकी आलोचना भी करते हैं। प्रो. शाटवेल के अनुसार, "थ्यूसीडाइडीस तथ्यों के जगत में परिभ्रमण कराता है।" वस्तुतः आज भी कई विद्वान तथ्य को इतिहास की रीढ़ मानते हैं। 19वीं शताब्दी तो तथ्यों की दृष्टि से महान थी, उस समय तो एक 'तथ्य संप्रदाय' ही अस्तित्व में आ गया था। वर्तमान में भी तथ्यों के महत्व से इंकार नहीं किया जा सकता। ऐसे में आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व थ्यूसीडाइडीस द्वारा इतिहास लेखन में तथ्यों को प्रधानता देना निश्चित रूप से सराहनीय है।

टिप्पणी

थ्यूसीडाइडीस ने इतिहास में नियतिवाद एवं अवश्यंभाविता को नहीं माना। उनके अनुसार यदि घटनाएं अवश्यंभावी होतीं तो निश्चित रूप से मानव भावी घटना से अपनी रक्षा करता। भाग्य की अपेक्षा इतिहास की गति को परिवर्तित करने में मानव इच्छा की प्रबलता को उन्होंने स्वीकार किया। वे इतिहास की विभिन्नता का प्रमुख कारण मानवीय मस्तिष्क को मानते थे। हेसियोड द्वारा प्रतिपादित ग्रीको, रोमन, युगचक्रवादी अवधारणा में विश्वास के कारण थ्यूसीडाइडीस ने उत्थान तथा पतन को इतिहास की गति स्वीकार किया है। कॉलिंगवुड के अनुसार, "प्लेटो के सत्यं शिवं सुंदरम् को थ्यूसीडाइडीस ने इतिहासकार का चरम लक्ष्य स्वीकार किया है।" थ्यूसीडाइडीस ने पेलोपोनेशियन युद्ध (431–404 ई.पू.) के बारे में लिखा है। उसने 411 ई.पू. की एशेनियन क्रांति का भी विश्लेषण करने के लिये उनेक पात्रों एवं जनमत का अध्ययन किया था। इससे स्पष्ट है कि वह घटना की तह तक जाने में विश्वास करता था।

थ्यूसीडाइडीस द्वारा इतिहास लेखन में राजनीतिक विषयों के चयन के कारण विद्वानों का एक वर्ग उसे राजनीतिक इतिहासकार की संज्ञा देता है परंतु इसका कारण बताते हुए एच.ई. बार्न स्पष्ट करते हैं कि "थ्यूसीडाइडीस ने अपने तथ्यों के विवरण में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में काल की उपेक्षा की। हेरोडोटस की भांति उसने भी ऐतिहासिक तथ्यों के विवरण में भौगोलिक कारकों के महत्व की भी उपेक्षा की है। उसने इतिहास को राजनीति तक ही सीमित कर इसके सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं को भुला दिया। यहां तक कि उसने गौरवशाली एशेनियन सभ्यता के बारे में भी कुछ नहीं लिखा। यह उसकी अयोग्यता नहीं अपितु इतिहास के प्रति उसका नियंत्रित दृष्टिकोण था। वह सांस्कृतिक इतिहासकार की अपेक्षा राजनीतिक इतिहासकार था।" प्रो. शाटवेल ने भी वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में थ्यूसीडाइडीस का मूल्यांकन कर उसे दोष देना उचित नहीं माना क्योंकि आज व उसके समय के दृष्टिकोण में जमीन आसमान का अंतर है। वस्तुतः हमें थ्यूसीडाइडीस के दोषों को न देखकर इस बात के लिये उसकी सराहना करनी चाहिये कि उसने इतिहास लेखन को एक नवीन आयाम दिया। इस तारतम्य में प्रो. ब्यूरी ने उचित ही लिखा है कि "आज जो इतिहास है, उसके निर्माण में किसी भी अकेले आदमी द्वारा उठाये गये कदमों में थ्यूसीडाइडीस का कार्य निश्चित रूप से एक दूरवर्ती एवं मुख्य निर्णायक कदम था।"

4. **पॉलिबियस (198–111 ई.पू.)**– पॉलिबियस इतिहास लेखन की ग्रीको–रोमन परंपरा का प्रमुख प्रतिनिधि था। उसका जन्म तो 198 ई.पू. यूनान के मेगालोपोलिस में हुआ था मगर कालांतर में 168 ई.पू. एक युद्धबंदी के रूप में वह रोम पहुंचा। रोम में पहुंचकर सीपियों के संपर्क में आने के पश्चात् ही वह इतिहास लेखन की ओर उन्मुख हुआ। उसने अपनी सर्वप्रमुख कृति 'इतिहास' जो कि 40 जिल्दों में है, में 164 ई.पू. तक रोम का इतिहास लिखा है। इसमें उसने रोम के साथ–साथ पूर्ण निष्पक्षता के साथ यूनान का भी इतिहास लिखा है।

इतिहास लेखन में यथार्थता पर विशेष बल पॉलिबियस के इतिहास लेखन की सर्वप्रमुख विशेषता थी। वह सत्य को इतिहास की आंख मानता था एवं पूर्वाग्रह से मुक्त होकर इतिहास लिखने पर बल देता था। उसने कहा था कि "यदि

टिप्पणी

किसी जीवजन्तु की आंखें निकाल ली जाती हैं तो वह बेकार हो जाता है, ठीक उसी प्रकार यदि इतिहास से भी सत्य को निकाल लिया जाय तो इतिहास व्यर्थ हो जायेगा।" पॉलिबियस इतिहास को विज्ञान के समकक्ष मानता था एवं उसने इतिहास लेखन में एक सुनिश्चित प्रणाली विज्ञान का अनुप्रयोग किया। प्रो. शाटवेल ने पॉलिबियस की इतिहास लेखन में अनुप्रयुक्त वैज्ञानिक प्रणाली की प्रशंसा की है।

थ्यूसीडाइडीस के समान पॉलिबियस ने भी युग चक्रवादी सिद्धांत में आस्था प्रकट की। उसने इतिहास की अवधारणा के सार्वभौमिक स्वरूप को स्वीकार किया। विश्व साम्राज्य की कल्पना का प्रतिपादक भी पॉलिबियस को माना जाता है जिसने रोम साम्राज्य के द्वारा संपूर्ण विश्व को एक शासक के नियंत्रण में लाने का ख्वाब देखा था और कालांतर में उसका यह स्वप्न एक सीमा तक साकार भी हुआ। पॉलिबियस ने भाग्य के स्थान पर मानवीय इच्छा को अधिक महत्व दिया। उसके अनुसार ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने में मानवीय चरित्र एवं इच्छाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वह यह भी मानता था कि प्रकृति के नियम के अनुसार उत्थान, विकास, पतन तथा अंत का क्रम ही इतिहास की गति को प्रभावित करता है। वह सुख एवं दुख का कारण भाग्य को न मानकर देश, काल तथा परिस्थितयों को मानता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि पॉलिबियस की इतिहास की अवधारणा काफी व्यावहारिक थी।

5. **अन्य यूनानी इतिहासकार (Other Greek Historians)**– पॉलिबियस के विश्व इतिहास की परंपरा को स्टोई पेसीडोनियस ने भी जारी रखा। इसकी सर्वप्रमुख कृतियां 'इतिहास' एवं 'भूगोल' थीं। इतिहास लेखन में इसका दृष्टिकोण मूलतः आलोचनात्मक था। इतिहास एवं भूगोल पर लिखने की परंपरा स्ट्रेबो ने भी जारी रखी। उसने प्राचीन इतिहास लेखन एवं भूगोलशास्त्रियों के बारे में भी लिखा था। उसने सिकंदर की उपलब्धियों को भी लेखबद्ध किया था। डायोनेसियस ने भी 'रोम का इतिहास' लिखा और इतिहास को दर्शन बताया। प्लूटार्क ने ग्रीको–रोमन इतिहास लेखन की परंपरा में 46 रोमन एवं यूनानी व्यक्तियों का जीवन चरित लिखकर महत्पूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। उसने तद्युगीन सांस्कृतिक परिवेश को भी महत्व दिया था।

ग्रीको–रोमन इतिहासकार और भारतवर्ष

भारत के प्राचीन इतिहास पर ग्रीको–रोमन इतिहासकारों ने पर्याप्त प्रकाश डाला। इनमें प्रमुख निम्न हैं–

स्काईलैक्स : हेरोडोटस के पूर्व स्काईलैक्स नामक लेखक ईरानी नरेश दारा का यूनानी सैनिक था। हेरोडोटस के अनुसार दारा ने स्काइलैक्स को सिंधु प्रदेश की जानकारी अर्जित करने भेजा था। इसी कारण स्काईलैक्स द्वारा लिखे गये वर्णनों में भारत के केवल सिंधुघाटी क्षेत्र की जानकारी मिलती है।

हिकेटियस मिलेटस (549 ई.पू. से 496 ई.पू.) : स्काईलैक्स एवं ईरानियों से प्राप्त जानकारी के आधार पर इन्होंने भूगोल नामक ग्रंथ का सृजन किया। इसमें भी मात्र भारत के सिंधु घाटी क्षेत्र की ही जानकारी मिलती है।

टिप्पणी

टेसीटस (416 ई.पू. से 398 ई.पू.) : टेसीटस पारसीक नरेश अर्टाजर्गजीज की राज सभा में यूनानी लेखक था। यह मूलतः राजवैद्य था परंतु इतिहास में रुचि होने के कारण इसने 'इंडिया' नाम से भारत का इतिहास एवं 'पर्शिका' नाम से ईरान का इतिहास लिखा। ये दोनों ही ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हैं। परवर्ती लेखकों द्वारा टेसीटस के ग्रंथों से लिये गए उदाहरण ही प्राप्त होते हैं। टेसीटस का लेखन भारतीय व्यापारियों एवं ईरानी पदाधिकारियों से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित है। इसके वावजूद भी इसके ग्रंथों में प्रमाणिकता का अभाव है।

सिकंदर का भारत पर आक्रमण

भारत पर सिकंदर के आक्रमण के समय उसके साथ आये सैनिकों, सेनापतियों तथा लेखकों ने भारत वर्ष के बारे में वर्णन किया है। इनके लेखन का महत्व यह है कि इसमें भारत पर सिकंदर के आक्रमण का मार्ग एवं युद्ध की घटनाओं की जानकारी मिलती है। सिकंदर के आक्रमण के समय भारत आये लेखक एवं उनका लेखन निम्नवत है–

1. **निआर्कस** : निआर्कस सिकंदर के जहाजी बेड़े का प्रधान था। इसके द्वारा लिखे गये मूल विवरण आज उपलब्ध नहीं हैं। स्ट्रेवो एवं एरियन के लेखों में निआर्कस के उदाहरण प्राप्त होते हैं।
2. **ऑनेसिक्रिटस** : यह भी सिकंदर के जहाजी बेड़े के चालक दल में था। ऑनेसिक्रिटस ने सिकंदर की जीवनी लिखी है। इसके द्वारा दिये गये भारत संबंधी विवरणों में किंवदंतियों एवं कथाओं का समावेश मिलता है।
3. **एरिस्टोब्यूलस** : इसने अपने युद्ध का अनुभव 'हिस्ट्री ऑफ द वार' में लिखा। यह भी उपलब्ध नहीं है। एरियन एवं प्लूटार्क के ग्रंथों में इसके उदाहरण मिलते हैं।

सिकंदर के आक्रमण के पश्चात् यूनानी लेखकों ने भी भारत संबंधी विवरण दिया है। इनमें निम्न प्रमुख हैं–

1. **मैगस्थनीज** : मैगस्थनीज मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य (322–298 ई.पू.) की राज सभा में यूनानी नरेश सेल्यूकस निकेटर का राजदूत था। मैगस्थनीज भारत में रहा अतः उसने अपने द्वारा देखी–सुनी बातों के आधार पर 'इंडिका' नामक ग्रंथ की रचना की। पूर्ववर्ती यूनानी लेखकों की तुलना में मैगस्थनीज का ग्रंथ भारत संबंधी जानकारी का प्रमुख स्रोत है।
2. **डीमेकस** : डीमेकस मौर्य सम्राट बिन्दूसार (298–273 ई.पू.) के दरवार में यूनानी सम्राट का राजदूत था। इसके द्वारा लिखे गये भारत संबंधी विवरण आज अनुपलब्ध हैं। उसके विवरण स्ट्रेबो द्वारा उद्धरित किये गये हैं। स्ट्रेबो की 'हिस्टोरिकल मेमोरीज' नामक पुस्तक में सिकंदर की उपलब्धियों की चर्चा की है।

प्लिनी : 77 ई. में प्लिनी ने 'प्राकृति इतिहास' नामक एक वृहद् ग्रंथ का सृजन किया। इस ग्रंथ में कुल 37 अध्याय हैं, जिसके छठे अध्याय में भारत के संबंध में वर्णन दिया गया है। प्लिनी का विवरण मैगस्थनीज की इंडिका पर आधारित है।

एरियन : द्वितीय सदी ई.पू. एरियन ने दो ग्रंथ 'इंडिका' एवं 'सिकंदर का आक्रमण' लिखे। इनमें भारत संबंधी विवरण प्राप्त होता है। एरियन ने इन ग्रंथों की रचना सिकंदर के समकालीन लेखकों एवं मैगस्थनीज की इंडिका के आधार पर लिखे।

पैट्रोक्लिस : यूनानी शासक सेल्युकस एवं एंडिऑकस प्रथम (280 ई.पू.–261 ई.पू.) के पूर्वी प्रांत का पदाधिकारी पैट्रोक्लिस था। इसने 'पूर्वी देशों का भूगोल' नामक ग्रंथ लिखा। इससे भारत की भौगोलिक स्थिति की जानकारी मिलती है। स्ट्रेबो ने पैट्रोक्लिस के वर्णनों को प्रमाणिक माना है।

टिप्पणी

पेरिप्लस ऑफ दि ऐरिथ्रियन सी : यह किसी अज्ञात यूनानी लेखक की कृति है। इसमें भारत के इतिहास एवं व्यापार पर प्रकाश डाला गया है। इस अज्ञात लेखक द्वारा 80 ई. के लगभग भारतीय समुद्र तट की यात्रा की गयी। उसके वृतांत में भारतीय बंदरगाहों के नाम एवं आयात–निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के नाम पता चलते हैं।

एलियन : द्वितीय शताब्दी में यूनानी लेखक एलियन ने 'ए कलेक्शन ऑफ मिसलेनियस हिस्ट्री' एवं 'ऑन दि पेक्युलिटिटिस ऑफ एनिमल्स' आदि ग्रंथों का सृजन किया। प्रथम ग्रंथ में भरत के इतिहास एवं दूसरे ग्रंथ में भारत में पाये जाने वाले पशुओं की संक्षिप्त जानकारी मिलती है।

टालेभी : टालेभी ने 140 ई. के लगभग सिकन्दरिया में 'भूगोल' नामक महत्वपूर्ण पुस्तक का लेखन किया। 8 अध्यायों में विभाजित इस पुस्तक में मानचित्र निर्माण के नियम दिये गये हैं। इस कृति में भारत सहित निकटवर्ती देशों के मानचित्र मिलते हैं। इसमें सिंधु–गंगा एवं समुद्र तट किनारे स्थित स्थानों की भौगोलिक स्थिति का भी विवरण दिया गया है। टालेभी द्वारा प्रस्तुत भारत का मानचित्र त्रुटिपूर्ण है एवं उसे भारत की प्राकृतिक सीमाओं की जानकारी भी नहीं थी।

रोमन इतिहास लेखन की परंपरा

इतिहास लेखन की कला यूनानियों ने आरंभ की एवं यूनानियों से ही यह इतिहास लेखन की कला रोमनों ने सीखी। यहां तक कि कुछ प्रारंभिक रोमन ऐतिहासिक रचनाएं भी यूनानी भाषा में ही लिखी गयीं थीं। रोमन इतिहास लेखन की परंपरा में निम्न विद्वानों की भूमिका प्रमुखता से दृष्टिगोचर होती है–

1. **क्यूफेबियस पिक्टर (254 ई.पू.)**–रोमन इतिहास लेखन की परंपरा का प्रथम इतिहासकार पिक्टर को माना जाता है। पिक्टर ने अपनी कृति 'इतिहास' की रचना में अपने परिवार के अभिलेखागार में सुरक्षित सरकारी दस्तावेजों का सहारा लिया। फेबियस पिक्टर का इतिहास लेखन मुख्यतः कुलीन वर्ग तक ही सीमित था, उसमें आम लोगों को कोई महत्व नहीं दिया गया। इसके लिये पिक्टर को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, वस्तुतः उसके समय में इतिहास लेखन मूलतः कुलीनों तक ही सीमित था।
2. **जूलियस सीजर (100–44 ई.पू.)**–फेबियस पिक्टर एवं जूलियस सीजर के बीच की कड़ी में पोर्सियस केटो (234 ई.पू), कोलियस एंटीपेटर एवं वारो (116 ई.पू.) के नाम प्रमुख हैं। केटो ने मात्र राजनीतिक घटनाओं के बारे में लिखा था। एंटीपेटर ने पिक्टर एवं केटो की रचनाओं की सहायता लेते हुए द्वितीय प्यूनिक युद्ध के बारे में लिखा था। वारो ने 41 जिल्दों में अपनी कृति 'रोमन एन्टीब्युटीस' का सृजन किया। बारो ने 25 जिल्दों में मानवीय एवं 16 जिल्दों में दैवीय पुरातनों के संबंध में लिखा, परंतु बारो ने अपनी कृति में उल्लेखित विभिन्न तथ्यों के बीच अंतर्संबंध स्थापित करने का कोई प्रयास नहीं किया।

टिप्पणी

रोमन इतिहास लेखन की परंपरा में जूलियस सीजर का नाम उल्लेखनीय है। उनकी सर्वप्रथम ऐतिहासिक कृति 'दि कॉमन्ट्रीज ऑन दि गालिक वार्स एंड दि सिविल वार' थी, जो कि वस्तुतः ऐतिहासिक स्मरण थे, जिनमें न केवल युद्ध के वस्तु परक विवरण थे अपितु आम लोगों के रीति–रिवाजों का भी वर्णन था। इस दृष्टिकोण से यूनानी इतिहासकार थ्यूसीडाइडीस, जिन्होंने एथेनियन क्रांति का तो वर्णन किया मगर ऐथेनियन सभ्यता पर कुछ न लिखा, की तुलना में रोमन इतिहास कार जूलियस सीजर की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इस प्रकार जूलियस सीजर ने राजनीतिक इतिहास की परंपरा के साथ–साथ सांस्कृतिक इतिहास लेखन की परंपरा का भी निर्वाह किया।

3. **टायटस लिवी (59–17 ई.पू.)**–जूलियस सीजर एवं लिवी के बीच की कड़ी के रूप में सालुस्ट (84–34 ई.पू.) की भूमिका भी महत्वपूर्ण थी। वह थ्यूसीडाइडीस का परम शिष्य था। अंतःनिष्पक्षतः उसके इतिहास लेखन की सर्वप्रमुख विशेषता थी। प्रो. शाटवेल सालुस्ट की गणना रोम के महान् इतिहासकारों लिवी एवं टैसियस की कोटि में करते हैं।

   रोम के राष्ट्रीय इतिहास के लेखन का श्रेय टायटस लिवी को जाता है, जिसमें उन्होंने रोम के उत्थान का कारण रोमन वासियों की नैतिकता में निहित माना है। उसकी इतिहास की अवधारणा में नैतिकता पर विशेष बल दिया गया था। यही नहीं, उसके इतिहास लेखन का प्रमुख लक्ष्य भी नैतिक शिक्षा प्रदान करना था। उसका दृष्टिकोण भी मानव वादी था। प्रो. शाटवेल लिवी की अवधारणा के प्रशंसक हैं। उनके अनुसार 'इतिहास लेखन में लिवी की अवधारण महत्वपूर्ण है, वह अत्यंत ही सहज एवं सुबोध शैली में तथ्यों को प्रस्तुत करता है।'

4. **पुबलियस कोर्नेलियस टैसिटस (54–120 ई.)**– टैसिटस की इतिहास संबंधी अवधारणा के अनुसार, "इतिहास का काम अतीत की महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख करना है एवं साथ–साथ पूर्वजों के बुरे कथनों एवं कर्मों की निंदा करता है।" निश्चित रूप से इतिहास की इस अवधारणा के पीछे टैसिटस की सोच इतिहास के शिक्षात्मक पहलू पर बल देना रही होगी, ताकि इतिहास से सबक लेकर आगामी पीढ़ी पूर्वजों के बुरे क्रिया–कलापों को न अपनाकर उनके अच्छे क्रिया–कलापों से शिक्षा ग्रहण करें। शायद इसीलिये टैसिटस ने व्यक्तित्व के चित्रण में काफी योग्यता का परिचय दिया है। उसे जनतांत्रिक संस्थाओं में काफी आस्था थी, अतः उसने अपनी रचनाओं में सिनेटर वर्ग के प्रति अपना दृष्टिकोण रखा है। उसकी कृति 'जर्मेनिया' में जर्मन संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। टैसिटस की प्रमुख कृतियां वस्तुतः इतिवृत्त एवं इतिहास हैं।

   टैसिटस की कृति 'जर्मेनिया' को समाजशास्त्र की प्रारंभिक वर्णात्मक कृति भी माना जाता है, इसीलिये कॉलिंगवुड ने उसे इतिहासकार मानने में संदेह प्रकट किया है। कॉलिंगवुड ने कई पक्षों को लेकर टैसिटस की आलोचना की है। उनके अनुसार, "टैसिटस रोमन के पतनकाल का प्रतिनिधित्व करता है, उसकी रचनाओं के साथ–साथ विचारों पर भी पतन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अच्छे तथा बुरे तत्वों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों के संघर्ष को प्रस्तुत करना ही उसके इतिहास लेखन का लक्ष्य था।" टैसिटस के व्यक्तित्व के चरित्र–चित्रण की भी आलोचना करते हुए कॉलिंगवुड ने इस चरित्र–चित्रण को

ऐतिहासिक यथार्थता के विपरीत माना है। कॉलिंगवुड ने टैसिटस की इतिहास संबंधी अवधारणा को रोमन इतिहास की अवधारण का मरुस्थल कहा है। जहां कॉलिंगवुड टैसिटस की आलोचना करते हैं, वहीं शाटवेल तमाम दोषों के बावजूद टैसिटस को एक महान इतिहासकार मानते हैं। वस्तुतः हम आज के परिप्रेक्ष्य में टैसिटस को न देखकर तद्युगीन परिप्रेक्ष्य में उसका मूल्यांकन करें तो उसकी इतिहास संबंधी अवधारणा उपयुक्त प्रतीत होती है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. ग्रीको रोमन इतिहास लेखन परंपरा के प्रतिपादक कौन माने जाते हैं?
   (क) हेकेटियस (ख) हेसियोड
   (ग) हेरोडोटस (घ) थ्यूसीडाइडीस
2. 'इंडिका' नामक ग्रंथ की रचना किस यूनानी लेखक ने की थी?
   (क) डीमेकस (ख) एरियन
   (ग) मैगस्थनीज (घ) पेट्रोक्लिस

3.3 प्राचीन भारतीय परंपरा

प्राचीन भारत में इतिहास लेखन के संबंध में दो प्रकार की अवधारणाएं प्रचलित हैं। अधिकांश पाश्चात्य विद्वानों के साथ–साथ कुछ भारतीय विद्वानों का मानना है कि प्राचीन भारतवासियों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव था एवं विविध कारणों से प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के प्रति उदासीन थे। दूसरी ओर, अब अधिकांश भारतीय विद्वानों के साथ–साथ कुछ पाश्चात्य विद्वान भी इस अवधारणा का तथ्यों के साथ पुरजोर विरोध करते हैं कि प्राचीन भारतवासियों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव था एवं वे इतिहास लेखन के प्रति उदासीन थे। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के विकास को समझने से पहले हम उक्त दोनों मतों की विवेचना प्रस्तुत करेंगे कि किस आधार पर विद्वानों का एक वर्ग प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अभाव को इंगित करता है और किन तर्कों के साथ विद्वानों का दूसरा वर्ग उक्त अवधारणा का विरोध करता है।

प्रथम मत : प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव था

प्रायः पाश्चात्य विद्वानों द्वारा ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन भारत के मनीशी इतिहास लेखन के प्रति उदासीन थे और यही कारण है कि यूनान के हेरोडोटस एवं थ्यूसीडाइडीस एवं प्राचीन रोम के पिक्टर एवं लिवी के समान प्राचीन भारत में कोई इतिहासकार नहीं मिलता। प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अभाव व इतिहास के प्रति उदासीनता के लिये विभिन्न विद्वानों ने निम्न कारण प्रस्तुत किये हैं–

1. पाश्चात्य विद्वान लोएस डिकिन्स ने प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अभाव का उल्लेख करते हुए स्पष्टतः कहा है कि–'हिंदू इतिहासकार नहीं थे।' और इसका कारण उन्होंने भारतीय जलवायु एवं भौगोलिक परिवेश में खोजने का प्रयास किया है। उनका तर्क था कि भारत में मनुष्य प्रकृति के समक्ष स्वयं

को तुच्छ और असमर्थ पाता है, परिणाम स्वरूप उसमें जीवन की व्यर्थता का भाव उत्पन्न होता है। उसे अपने जीवन की अनुभूति एक भयानक दुःस्वप्न के रूप में होती है और दुःस्वप्न का इतिहास नहीं हो सकता।

टिप्पणी

2. लोएस डिकिंस के अलावा एक अन्य विद्वान टील हार्ड द शार्डिन ने भी इतिहास के प्रति भारतीयों की उदासीनता का कारण उनका माया एवं कर्म के सिद्धांत में आस्था के चलते आध्यात्म में रत रहना बताया है। उन्होंने इस आधार पर स्पष्ट किया है कि भारतीयों में, उनकी अतिशय निष्क्रियता एवं निष्पक्षता की भावना के कारण, विश्व निर्माण की क्षमता का अभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।
3. उपरोक्त पाश्चात्य विद्वानों के सुर में सुर मिलाते हुए भारतीय विद्वान हीरानंद शास्त्री इतिहास के प्रति भारतीयों की उदासीनता का कारण इन शब्दों में बयान करते हैं कि "प्राचीन भारतीय अतीत तथा वर्तमान भौतिक जीवन की अपेक्षा, आगामी जीवन में विशेष रुचि रखते थे और इसीलिए उन्होंने इतिहास के प्रति विशेष ध्यान नहीं दिया।
4. एक और भारतीय विद्वान चंद्रकांत गजानन राणे ने प्राचीन भारतीयों में तिथिक्रम की उपेक्षा के भाव को उनमें ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अभाव के रूप में देखा है। उनके अनुसार काल–विवेचन इतिहास रचना का आधार है और भारतीयों ने समय को सदैव गौण स्थान दिया है। अतएव तिथिक्रम के यथार्थ प्रस्तुतीकरण की ओर वे उदासीन रहे।

द्वितीय मत : प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव नहीं था

अधिकांश भारतीय विद्वानों के साथ–साथ कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस मत का तर्क सहित खंडन किया है कि प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव था। वस्तुतः अत्यंत प्राचीन काल से ही भारतीय इतिहास के प्रति किसी न किसी रूप में जागरूक थे। अपने इस मत के पक्ष में कि न तो भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव था और न ही वे इतिहास के प्रति उदासीन थे, विभिन्न विद्वानों ने निम्न मत प्रस्तुत किए हैं–

1. गिरजा शंकर प्रसाद मिश्र, लोएस डिकिन्स के इस तर्क को कि हिंदू इतिहासकार नहीं थे एवं उनमें जीवन के प्रति नगण्यता एवं व्यर्थता का भाव था, को सर्वथा हास्यास्पद बताते हैं। उनके अनुसार, भारतीयों ने वर्तमान जीवन को सर्वथा नगण्य नहीं माना। वे तर्क सहित बताते हैं कि" 'इह चैक वेदथि' प्राचीन भारतीयों के जीवन का मूल मंत्र था जिसका अर्थ है कि सत्य को यही जानना है और इसी जीवन में ही धर्म का आचरण करना है–सदैव से हिंदू धर्म की यही निष्ठा रही है।" प्राचीन भारतीय मनुष्य ने स्वयं को प्रकृति से तालमेल बैठाकर ही अपना विकास किया है।
2. प्राचीन यूनानी एवं चीनी इतिहास लेखन की परंपरा में राज्य को सर्वोपरि महत्व दिया गया। वहां राजा को देव पुरुष के तुल्य माना गया था। अतः उनकी नजरों में राजा एवं राज्य व उसकी समृद्धि का मूल्य अधिक था। किसी भी समाज अथवा संस्कृति में वही बातें सुरक्षित रखी जाती हैं जिसे उस समाज के लोग अपने लिये मूल्यवान समझते हैं और इसलिये प्राचीन यूनानी व चीनियों ने राजनीतिक इतिहास को सुरक्षित रखने का प्रयास किया। इनके विपरीत

टिप्पणी

भारतवासियों ने राज्य, अर्थ एवं भौतिक शक्ति को सर्वोपरि मूल्य के रूप में कभी भी महत्व नहीं दिया, उन्होंने अध्यात्म, कर्म एवं धर्म को सर्वोपरि मूल्य के रूप में देखा और इन्हें वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण एवं सूत्र साहित्य के रूप में सुरक्षित रखने का प्रयास किया। अतः टीलहार्ड द शार्डिन का यह कथन कि माया, कर्म एवं आध्यात्म में डूबे रहने के कारण भारतीय निष्क्रिय एवं निरपेक्ष हो गये, उचित प्रतीत नहीं होता। गिरजाशंकर प्रसाद मिश्र के अनुसार कर्म और मायावाद के सिद्धांतों को निष्क्रियता एवं निरपेक्षता का स्रोत मानना उचित नहीं है। मायावाद के प्रसिद्ध प्रतिपादक शंकराचार्य भी उन कार्यों से विमुख नहीं हुए जिनका निर्वाह वे अपना उत्तरदायित्व समझते थे। उनका स्पष्ट कथन है कि "कर्म और मायावाद में विश्वास होने पर भी भारतीयों ने एक गौरवपूर्ण इतिहास का निर्माण किया और भारतीय इतिहास के अज्ञानी ही उनकी महती उपलब्धियों से अपरिचित होंगे।"

3. डॉ. हीरानंद शास्त्री के इस कथन की प्राचीन भारतीयों ने अतीत तथा वर्तमान भौतिक जीवन के प्रति कोई रुचि नहीं ली, का भी गिरजाशंकर प्रसाद मिश्र ने जोरदार शब्दों में खंडन किया है। उनके अनुसार संपूर्ण विश्व में भारतवर्ष जैसा कोई देश नहीं है जिसने इतने सुदूर अतीत का इतना बड़ा भाग सुरक्षित रखा हो। अतीत वस्तुतः दो प्रकार का होता है–(1) मृत अतीत, जैसे–घटनाएं, व्यक्ति इत्यादि एवं (2) जीवंत अतीत अर्थात् परंपराएं जिनका एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संप्रेषण होता रहता है। निश्चित रूप से परंपराओं के प्रति चेतना, सुरक्षा एवं उत्तरदायित्व की भावना भारतीयों में सदैव विद्यमान रही है। भारतीयों का सदैव से यह विश्वास रहा है कि हम अतीत के वंशधर हैं जिनकी सुरक्षा हमारा कर्तव्य है तथा जिसमें योगदान करते हुए हम अपने ऋण से उऋण हो सकते हैं। वैदिक काल से ही भारत में तीन ऋणों–पितृ ऋण, देव ऋण एवं ऋषि ऋण से उऋण होने के लिये क्रमशः वंश वर्धन, विद्याभ्यास एवं याज्ञिक कार्य की परंपरा रही है। इससे सिद्ध होता है कि भारतीय सदैव अपने अतीत एवं वर्तमान के प्रति जागरूक रहे हैं और अपनी इसी जागरूकता के परिणाम स्वरूप भारतीयों में इतिहास की अवधारणा भी रही है, परिणाम स्वरूप समय तथा समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप भारतीयों ने ऐतिहासिक ग्रंथों का संपादन किया।

4. चंद्रकांत गजानन राणे ने तिथिक्रम के प्रति उदासीनता को ही प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अभाव का कारण माना है जो कि उचित तर्क नहीं है। प्राचीन भारतीय साहित्य में तद्युगीन संस्कृति (धर्म, अर्थ, समाज) का तो सांगोपांग वर्णन मिलता है किंतु तिथिक्रम के अभाव के कारण राजनीतिक स्थिति का पता नहीं चलता। आज इस मत से सभी विद्वान सहमत हैं कि इतिहास मात्र तिथियों का लेखा–जोखा नहीं है और वर्तमान में राजनीतिक इतिहास के स्थान पर समाजिक आर्थिक इतिहास पर ही विशेष जोर दिया जा रहा है। प्रो. श्री निवास आयंगर के अनुसार, "यदि इतिहास की आंखें तिथियां हैं तो प्राचीन भारतीय इतिहास को अंधा ही समझना चाहिये।" और इस मत से तो अधिकांश विद्वान सहमत हैं कि मात्र तिथियां ही इतिहास की आंखें नहीं हैं। ग्रीको–यूनानी इतिहासकार पॉलिबियस ने सत्य को ही इतिहास की आंखें माना है। तिथिक्रम को यदि गौण मान लिया जाय तो प्राचीन भारतीय ग्रंथों–वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्,

पुराण, बौद्ध एवं जैन साहित्य आदि का महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक बढ़ जाता है क्योंकि ये प्राचीनतम भारतीय ग्रंथ इतिहास की वर्तमान में प्रचलित अवधारणा (सामाजार्थिक इतिहास पर विशेष जोर) के जीवंत प्रतीक लगते हैं।

टिप्पणी

5. भारतीय काल निर्धारण की अवधारणा से अपरिचित थे, यह तथ्य भी भ्रामक है क्योंकि प्राचीन भारतीय अवधारणा में इतिहास को एक चलायमान युग चक्र मानते हुए, युग चक्र सिद्धांत की सृष्टि की गई है। भारतीय अवधारणा के ये युग चक्र हैं–

   (क) **सत युग**–भारतीय अवधारणा के अनुसार यह मनुष्य का स्वर्णिम युग था, इस युग में मानव प्रत्येक प्रकार से सुखी था।

   (ख) **त्रेता युग**–इस युग में मानव की सुख सुविधाओं में आंशिक कमी आई।

   (ग) **द्वापर युग**–युग चक्र के इस तृतीय चरण में मानव के दुःखों का आरंभ हुआ। मनुष्य रोग–व्याधि से पीड़ित होने लगा। इसे संघर्ष का युग कहा गया।

   (घ) **कलियुग**–इस अंतिम चरण में मानवीय जीवन दुःख एवं निराशा की अति पर पहुंच जाता है। मानव धर्म की उपेक्षा करने लगता है। अंततः मानव–जगत का सर्वनाश होता है और वह परम ब्रह्म में विलीन हो जाता है।

   इसी युग चक्र के सिद्धांत से भारतीय परिप्रेक्ष्य में अवतारवाद की उत्पत्ति हुई। भारतीय मनीषियों की मान्यता है कि जब–जब पृथ्वी पर मानव जीवन पर अत्याचार चरम पर पहुंच जाता है, तब–तब मानव जाति के उद्धार के लिये ईश्वर पृथ्वी पर किसी न किसी महापुरुष के रूप में अवतार लेता है। अब हम यदि इस अवतारवाद में से धार्मिक तत्व ईश्वर को हटा लें तो इसका तात्पर्य हो जाता है कि प्रत्येक युग में किसी न किसी महापुरुष का अवतार होता है जो समाज का पुननिर्माण कर इतिहास रचता है। प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक जननायकों के रूप में महापुरुषों ने समाज का नेतृत्व कर इतिहास का निर्माण किया है। राम, कृष्ण, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, अशोक, अकबर एवं महात्मा गांधी को हम जननायक महापुरुष एवं इतिहास के सृष्टा के रूप में देख सकते हैं।

6. प्राचीन भारतीयों पर इतिहास के प्रति उपेक्षा का एक अन्य आरोप इस कारण भी लगाया गया है कि प्राचीन भारतीय ग्रंथ जिन्हें कि इतिहास के स्रोत के रूप में देखा जाता है, उनके रचनाकारों अथवा प्रतिपादकों के विषय में ठीक–ठीक तथा विस्तृत विविरण नहीं रखा गया है। प्राचीन यूनानी एवं चीनी परंपरा में इतिहास के स्रोत ग्रंथों के रचनाकारों के विषय में विस्तृत विवरण प्राप्त है परंतु मात्र इस आधार पर भारतीयों में इतिहास के प्रति उदासीनता को प्रतिरोपित करना उचित नहीं है। वस्तुतः भारतीय परंपरा में प्राचीन काल से ही मानव से बढ़कर उसकी कृतियों को महत्व दिया जाता है। अशोक के लेखों को ही लें, उनमें कहीं भी उसका जीवनवृत या पिता–पूर्वजों के बारे में नहीं के बराबर लिखा गया है।

7. प्राचीन काल में भारतीयो में इतिहास बोध का अभाव था, अब यह मत भी विद्वानों के एक वर्ग में ग्राह्य नहीं है। व्ही.एस. पाठक के अनुसार जब से प्राचीन भारतीय साहित्य है, तभी से इतिहास बोध भी है। ए.बी. कीथ का भी मानना है कि प्राचीन

टिप्पणी

भारत में पुरातन युग एवं विकसित भारतीय सभ्यता के प्रमाण हमारे सामने मौजूद होने पर यह मानना अनुचित होगा कि भारतीयों में इतिहास लेखन का कोई ज्ञान नहीं था। छांदोग्य उपनिषद् में इतिहास को पांचवां वेद माना गया है। इतिहास को वेद कहना ही इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण की प्राचीनता का परिचायक है।

प्रो. ए.के. वार्डर ने लिखा है कि वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय इतिहास में तारतम्यता है। अभी भी प्राचीन भारत का इतिहास पांडुलिपियों में बिखरा पड़ा है। साथ ही यह भी लिखते हैं कि भारतीय इतिहास के प्रायः सभी कालखंडों के लिये हमारे पास साहित्य, कला और दर्शन की एक सम्पन्न सांस्कृतिक परंपरा विद्यमान है जिसके अध्ययन से विशिष्ट समय में भारतीय सभ्यता का वास्तविक सार, झटपट हमारे सामने आ जाता है। दुर्भाग्यवश, इतिहास लिखने वालों ने प्रत्येक अवधि के लिये इन स्रोतों को इकट्ठा करने का बहुत अल्प प्रयास किया है।

आर.सी. मजूमदार ने भी इस तारतम्य में स्पष्ट किया है कि भारतीय लेखकों के प्रारंभिक प्रयास, इतिहास लेखन के प्रकार थोड़े व अनोखे थे परंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिये कि इतिहास लेखन की परंपराओं से भारतीय अनभिज्ञ थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिकांश भारतीय मनीषी इस कथन से सहमत नहीं हैं कि भारतीयों में इतिहास बोध का अभाव था या भारतीय इतिहास लेखन की परंपराओं से अनभिज्ञ थे।

8. जहां तक प्राचीन भारतवासीयों में इतिहास लेखन के प्रति अज्ञानता का प्रश्न है तो वैदिक साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल से ही भारत में ऐतिहासिक साहित्य के सृजन की परंपराएं अस्तित्व में आ चुकी थीं। प्राचीनतम भारतीय साहित्य में इतिहास पुराण तथा इतिहास पुराण के प्रचुर मात्रा में उल्लेख उपलब्ध हैं। विंध्येश्वरी प्रसाद मिश्र ने इस तारतम्य में लिखा है–"इतिहास शब्द के भारतीय संप्रदाय के अनुसार प्राचीन भारतीय परंपरा इतिहास लेखन और उसकी विभिन्न प्रविधियों से अपरिचित नहीं रहीं। वेदों को नाराशंसी गाथाओं से लेकर महाभारत तक और बाद में भी यह धारा अनवरत प्रवाहमान रही है।" विद्वानों के अनुसार भारतीय इतिहास की परंपरा, भारतीय लेखन कला से भी प्राचीन है और यह श्रुति (श्रवण) परंपरा में सुरक्षित है। डॉ. श्याम सुन्दर निगम के अनुसार प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की अपेक्षा मौखिक इतिहास की परंपरा विद्यमान रही थी। लिपिबद्ध न होने पर भी यह मौखिक परंपरा, भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की आधारशिला बनी। अथर्ववेद में तो पुराण के साथ–साथ इतिहास का भी उल्लेख हुआ है। स्पष्ट है कि इतिहास जैसी कोई वस्तु या अवधारणा वैदिक काल में रही थी किन्तु वह भी मौखिक अथवा श्रुति परंपरा। उत्तर वैदिक काल से इतिहास की श्रुति परंपरा के पांच विभिन्न स्वरूप हो गये–गाथा, नाराशंसी, आख्यान, इतिहास एवं इतिहास पुराण। इस प्रकार हम देखते हैं कि अत्यंत प्राचीन काल से प्राचीन भारतीय, इतिहास की अवधारणा से किसी न किसी रूप में परिचित थे।

उपरोक्त सभी बिंदुओं को ध्यान में रखकर हम स्पष्टतः कह सकते हैं कि न तो भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव था और न ही प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रति उदासीन थे।

प्राचीन भारतीय लेखन की विभिन्न परंपराएं

टिप्पणी

प्राचीन भारत में इतिहास की अवधारणा का अस्तित्व हमें वैदिक काल से ही स्पष्टतः प्राप्त होता है। इतिहास शब्द का प्रथम उल्लेख हमें वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होना ही भारत में प्राचीन काल से ही इतिहास की परंपरा होने का द्योतक है। डॉ विश्वम्भर शरण पाठक, ए.के. वार्डर, गिरजा शंकर प्रसाद मिश्र, ए.बी. कीथ, डॉ. घोशाल, के. नीलकंठ शास्त्री, डॉ. गोविंद चंद्र पांडेय एवं डॉ. आर.सी. मजूमदार आदि ने अपनी रचनाओं में प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की परंपरा होना स्वीकार किया है। साथ ही उन्होंने ऐसे सभी विद्वानों के मतों का तर्क सहित खंडन किया है जो कहते थे कि प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रति उदासीन थे। वस्तुतः भारत में अति प्राचीन काल से ही इतिहास लेखन की अपेक्षा मौखिक इतिहास की परम्पर विद्यमान थी। डॉ. श्याम सुंदर निगम के अनुसार, "भारत वस्तुतः श्रुति परंपरा का देश है। सदियों तक मंत्र दृष्टा ऋषियों की वाणी मौखिक रूप से किंतु अत्यधिक प्रमाणिकता के साथ, प्रक्षिप्तहीन यात्रा करतीं रहीं। लिपिबद्ध न होने पर भी यह मौखिक परंपरा भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की आधारशिला बनी। वैदिक वाङ्मय में आये नाराशंसी, आख्यान, गाथा आदि शब्द इस प्रकार प्राचीन मौखिक इतिहास के ही विभिन्न स्वरूप हैं। इस मौखिक इतिहास का पुराणों की ही भांति या पुराणों से अविच्छिन्न अपना महत्व रहा है और यह मान्यता प्रकट की गयी कि बिना इतिहास और पुराण के वेदों के मर्म को ठीक से जाना नहीं जा सकता।"

डॉ. गिरजा प्रसाद मिश्र के अनुसार, "समय की गति के साथ–साथ, इतिहास साहित्य के आकार में भी वृद्धि होती गयी और अंततः यह रामायण, महाभारत तथा पुराणों के माध्यम से एक सुनिश्चित रूप को प्राप्त हुआ। यास्क के समय तक एक विशिष्ट प्रकार की रचनाओं का अस्तित्व प्रतिष्ठित हो चुका था जिन्हें ऐतिहासिक कहा जाता था। वैदिक काल में ही ऐतिहासिक साहित्य के सृजन की परंपरा अस्तित्व में आ चुकी थी और इस युग की विविध रचना विधाओं से कालांतर में विभिन्न ऐतिहासिक प्रवृत्तियों का जन्म हुआ।"

वैदिक इतिहास लेखन

प्राचीन भारत में वैदिक काल से ही ऐतिहासिक साहित्य के सृजन की परंपरा किसी न किसी रूप में अस्तित्व में आ चुकी थी। प्राचीनतम वैदिक ग्रंथ ऋग्वेद को माना जाता है जिसकी रचना 1500 से 1000 ई.पू. के बीच मानी जाती है। ऋग्वैदिक संस्कृति की पृष्ठभूमि पर ही उत्तर वैदिक कालीन संस्कृति का विकास हुआ और उत्तर वैदिक काल का इतिहास हमें ऋग्वेद के आधार पर ही विकसित संहिता ग्रंथ (सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद), ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों से ज्ञात होता है जिनका समय लगभग 1000 से 600 ई.पू. माना जाता है। इस प्रकार 1500 से 600 ई.पू. तक का इतिहास हमें वेदों के माध्यम से ही मिलता है। यास्क के अनुसार ऋग्वेद में ही विविध ब्रह्म के अंतर्गत इतिहास मिश्र मंत्र उपलब्ध हैं–

त्रितं कूपे वहित मेतत सूक्तं प्रतिबभौ।
तत्रं ब्रह्मेतिहास मिश्रितमत्रङ्मिश्रं गाथा मिश्रं भवति।

ऋग्वैदिक ऋचाओं में ऐसे संदर्भ स्पष्टतः प्राप्त होते हैं जो राजाओं की प्रशंसा में लिखे गये हैं। इस तारतम्य में डॉ व्ही.एस. पाठक ने भी लिखा है–"भारत में

प्राचीनतम ऐतिहासिक साहित्य के रूप में कतिपय बिखरे हुए वैदिक मंत्र हैं जो तत्कालीन राजाओं के सैनिक अभियानों की प्रशंसा में लिखे गये हैं।"

टिप्पणी

यास्क ने अपने निरुक्त में ऋचाओं के विशुद्धीकरण के लिये वैदिक कथाओं को 'इतिहास माचक्षते' कहकर उद्धृत किया है। वैदिक साहित्य में इतिहास पुराण का जो लेख प्राप्त होता है, वह पुराण से भिन्न स्वतंत्र रूप से बिखरे हुए विभिन्न अनुवांशिक रूपों की प्रारंभिक अवस्था में है। मैक्समूलर के अनुसार वैदिक साहित्य में जिस सामग्री को 'पुराण' नाम से अभिहित किया गया है, उसी का स्थान रामायण तथा महाभारत ने लिया है तथा परवर्ती पुराणों में भी यद्यपि कुछ परिवर्तित रूप में इस सामग्री का अस्तित्व मानना चाहिये। देवापि और शांतनु की कथा को यास्क ने अपने निरुक्त में इतिहास कहा है तथा विश्वामित्र के सुदास पैजवन के पुरोहित होने की घटना को भी यास्क ने इतिहास कहा है, यथा–

'तत्रे इतिहास माचक्षते विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहिताबभूवः'

इससे यह प्रकट होता है कि वैदिक काल में इतिहास के अनेक आनुषंगिक उपकरण मौखिक परंपरा में विद्यमान थे जिनका विकास कालांतर में 'इतिहास पुराण' परंपरा के अंतर्गत हुआ। सामान्यतया यह माना जाता है कि वैदिक युगीन प्राचीन इतिहासों का संप्रेषण मौखिक रूप से ही सम्पन्न होता था। वैदिक मौखिक शिक्षा परंपरा में ऐतिहासिक ज्ञान की अक्षुणता क्रमागत शिक्षक–शिष्य परंपरा के कारण ही संभव हो सकी। उत्तर वैदिक काल से इतिहास की श्रुति परंपरा के पांच विभिन्न स्वरूप हो गये थे। गाथा, नाराशंसी, आख्यान, इतिहास एवं इतिहास पुराण। वेद कालीन भष्वाङ्गिरस एवं सुत आदि की मौखिक इतिहास की परंपराएं श्रुतिबद्ध रहकर शताब्दियों तक विद्यमान रहीं।

ऐतिहासिक काल के आगमन के साथ भारत में इतिहास की श्रुति परंपराएं लिपिबद्ध साहित्य के रूप में सामने आयीं। 400 ई.पू. से 400 ई. के मध्य भारत में मौखिक इतिहास की अनुभवजन्य परंपरा लेखबद्ध होकर औपचारिक स्वरूप धारण करने लगीं। देशी–विदेशी शासकों की अपेक्षाओं ने लेखबद्ध रूप में ऐसा करने को बाध्य किया। इस प्रकार धीरे–धीरे वैदिक युगीन श्रुति परंपराएं एवं मौखिक इतिहास पटल से हट गये और उनका स्थान लेखबद्ध इतिहास ने ग्रहण कर लिया।

ऋग्वैदिक संहिता के सूक्तों में कुछ सूक्त ऐसे हैं जिनमें आर्यों के भारत विजय की परंपरागत कथाएं संनिहित प्रतीत होती हैं। वैदिक मंत्रों में भी प्रचुर मात्रा में ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त है एवं परवर्ती साक्ष्यों द्वारा वैदिक काल में ऐतिहासिक रचनाओं का अस्तित्व स्पष्टतः प्रमाणित नहीं होता। अथर्ववेद ब्राह्मणों (शतपथ ब्राह्मण) से इतना तो स्पष्ट है कि इतिहास निःसंदेह ऐतिहासिक लेखनों का परिचायक था। गिरजा शंकर प्रसाद मिश्र के अनुसार 'निरुक्त' तथा 'बृहद्देवता' जैसे प्रारंभिक ग्रंथों में इतिहास को पुरावृत (प्राचीन घटनाएं) का संकुचित अर्थ प्रदान किया है, वैदिक इतिहास लेखन में गाथा परंपरा एवं नाराशंसी का विशेष योगदान है। नाराशंसी एवं गाथाएं प्राचीन राजाओं एवं ऋषियों के वीरोचित कार्यों एवं कीर्ति के लिये गाये गये गीतों का समूह था।

मौर्यकालीन इतिहास लेखन

मौर्यकालीन इतिहास की परंपरा का प्रमुख स्तंभ कौटिल्य था। कौटिल्य इतिहासशास्त्र के महत्व को भली–भांति समझता था। मौर्यकाल में भी इतिहास को वेद समझा जाता

टिप्पणी

था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है–तीन वेद साम, ऋग एवं यजु मिलकर वेदत्रयी बनते हैं तथा इतिहास वेद के साथ मिलकर वेद के नाम से जाने जाते हैं। इतिहास लेखन ही नहीं, इतिहास श्रवण के महत्व पर भी कौटिल्य ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। राजा की दिनचर्या में इतिहास श्रवण को कौटिल्य ने एक आवश्यक क्रिया बताया है। कौटिल्य अपने 'अर्थशास्त्र' में लिखता है कि मध्यान्ह से पूर्व का समय सैनिक प्रशिक्षण में बिताकर राजा को मध्यान्ह का समय इतिहास श्रवण में बिताना चाहिये। इसके साथ–साथ कौटिल्य इतिहास के अंगों से भी परिचित था। उसने इतिहास के प्रमुख अंगों के रूप में पुराण, इतिवृत्त (कथानक इतिहास जिसके अंतर्गत आख्यान जैसे कि भारत हो सकता है), आख्यायिका (जीवनी जैसे कि वासवदत्ता पांचवीं शताब्दि ई.पू. की एक राजकुमारी की कहानी), उदाहरण (दृष्टांत संभवतः निदर्शनात्मक छोटी कहानियां), धर्मशास्त्र (विधि–विधान) और अर्थशास्त्र (अर्थ और शासन विज्ञान) आदि को समाविष्ट किया है।

वंश एवं वंशानुचरित पुराण साहित्य के आवश्यक अंग थे। विष्णु पुराण में हमें मौर्य कालीन वंश वृक्ष एवं तद्युगीन इतिहास की जानकारी मिलती है। मौर्यकालीन इतिहास परंपरा की एक और प्रमुख विशेषता यह थी कि मौर्यकाल में शासन की ओर से अभिलेखागारों की स्थापना की जाने लगी। कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में इन अभिलेखागारों का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्व प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि ये राज्य लेखागार अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं के अतिरिक्त परंपराओं, व्यवसायों के इतिहास तथा देशों, ग्रामों, परिवारों और नियमों के संव्यवहारों का भी लेखा रखते थे; उपहार के रूप में प्राप्त राज्य कर्मचारियों की प्राप्त आयों तथा राजा की पत्नियों एवं पुत्रों की आय का हिसाब रखना भी उनके कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आता था और जो महत्वपूर्ण है, वह यह है कि उनसे संधियों और मित्र अथवा शत्रु राज्य से प्राप्त अथवा उनको देय उपहारों इत्यादि का भी सही–सही विवरण रखने की अपेक्षा की जाती थी। युवान च्वांङ्ग के विवरण से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

मौर्य कालीन इतिहास लेखन की परंपरा का एक और महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि मौर्य सम्राट अशोक महान् स्वयं ही तद्युगीन इतिहास को सुरक्षित रखने के प्रति जागरूक था। संभवतः इसीलिये उसने अपनी राजाज्ञायें अभिलेखों पर उत्कीर्ण कराईं, ताकि वह हमेशा के लिये सुरक्षित रह सकें और यह अशोक की इतिहास के प्रति जागरूकता एवं दूरदर्शिता का ही प्रमाण है कि आज भी उसके अभिलेख तद्युगीन इतिहास की जानकारी का एक महत्वपूर्ण पुरातात्विक साक्ष्य है। इतिहास की सुरक्षा के प्रति अशोक की जागरूकता एवं दूरदर्शिता का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण यह है कि आज देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर जैसे विद्वान ने मात्र अशोक कालीन अभिलेखों के आधार पर ही अशोक के इतिहास लिखने का सफल प्रयास किया है। मानव से बढ़कर उसके कृतित्व को महत्व दिये जाने की प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक परंपरा के जीवंत प्रतीक अशोक के अभिलेख हैं। अशोक के अभिलेखों में कहीं भी उसका अपना जीवनवृत्त या पिता पूर्वजों के बारे में उल्लेख नहीं मिलता यहां तक की अधिकांश अभिलेखों में तो उसका स्वयं का नाम तक नहीं मिलता।

प्राचीन यूनानी एवं चीनी इतिहास लेखन की परंपरा में इतिहास के संकलन कर्त्ता एवं प्रलेखों के प्रतिपादकों के विषय में एवं शासकों के विषय में पर्याप्त विवरण रखा गया है। चूंकि भारतीय इतिहास लेखन की परंपरा में संकलन कर्त्ता एवं प्रतिपादकों के बारे

टिप्पणी

में विवरण नहीं मिलता, इसी आधार पर कतिपय विद्वानों ने भारतीयों पर इतिहास के प्रति उदासीनता का आरोप लगाया है। मगर मौर्यकाल में कौटिल्य के संदर्भ में इस प्रकार के आरोप मिथ्या साबित होते हैं। राजकीय शासन पत्रों से संबंधित अध्याय में कौटिल्य ने इन प्रपत्रों के विषय में स्पष्टतः यह निर्देश दिया है कि इनमें लेख जारी करने वाले शासक का नाम वंश तथा विरुदों का होना अपेक्षित है। बृहस्पति स्मृति में भी भूमिदान विषयक प्रपत्र में राजकीय वंश तालिका का दिया जाना आवश्यक बताया है।

गुप्तकालीन इतिहास लेखन

मौर्यकाल तक परिपक्व हो चुकी इतिहास लेखन की परंपरा गुप्तकाल तक आते–आते और अधिक समृद्ध हो गई। वायु पुराण के साथ–साथ विशाखादत्त की कृति देवी चंद्रगुप्तम्, शूद्रक कृत मृच्छकटिकम्, वात्स्यायन के कामसूत्र में गुप्तकालीन शासन व्यवस्था एवं नगर जीवन के विषय में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है। कालिदास जिसे कि यूरोप का शेक्सपियर कहा जा सकता है, उसे अधिकांश विद्वान गुप्तकालीन विभूति मानते हैं। कालिदास की अनेकानेक रचनाओं से गुप्तयुगीन समाज एवं संस्कृति पर सुंदर प्रकाश पड़ता है। गुप्तकालीन पुरातात्विक ऐतिहासिक स्रोतों में अनेकानेक अभिलेखों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। समुद्रगुप्तकालीन इतिहास की जानकारी का सर्वश्रेष्ठ अभिलेखीय प्रमाण 'प्रयाग प्रशस्ति' (प्रयाग स्तंभ लेख) को माना जाता है। 'प्रयाग प्रशस्ति' का रचनाकार समुद्रगुप्त का संधि विग्राहिक सचिव हरिशेण था। इस प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के राज्य अभिषेक, दिग्विजय तथा उसके व्यक्तित्व पर विशद् प्रकाश पड़ता है।

इस प्रकार गुप्तकाल में हमें इतिहास लेखन की एक समृद्ध परंपरा के दर्शन होते हैं। गुप्तकालीन इतिहास लेखन की परंपरा में हरिशेण का काफी महत्वपूर्ण स्थान है। हरिषेण की 'प्रयाग प्रशस्ति' ब्राह्मीलिपि में एवं विशुद्ध संस्कृत भाषा में चंपू शैली का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। प्रशस्ति की प्रारंभिक पंक्तियां पद्यात्मक एवं बाद की पंक्तिया गद्यात्मक हैं। समुद्रगुप्त का इतिहास जानने का यह सर्वप्रमुख साधन है। 'प्रयाग प्रशस्ति' में समुद्रगुप्त की दिग्विजय ही नहीं अपितु उसकी दिग्विजय का उद्देश्य 'संपूर्ण पृथ्वी को जीतना' (धरणि बंध) भी उल्लेखित है। 'प्रयाग प्रशस्ति' समुद्रगुप्त की दिग्विजयों का संपूर्ण विवरण हमारे समक्ष उपस्थित करती है।

हरिषेण को हम गुप्तकालीन इतिहास लेखन का प्रमुख स्तंभ मान सकते हैं। गुप्त शासक लोकोपकारी कार्यों में भी रुचि रखते थे और अपने इन कार्यों को भविष्य की प्रेरणा बनने हेतु इतिहास के रूप में सुरक्षित रखने के प्रति भी जागरूक थे। इस तथ्य का प्रमाण हमें स्कंदगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से मिलता है। इस अभिलेख से पता चलता है कि स्कंदगुप्त ने अपने स्वराष्ट्र के गवर्नर पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित की सहायता से इतिहास प्रसिद्ध सुदर्शनझील का पुनःनिर्माण करवाया था।

गुप्तकालीन महाकवि कालिदास भी गुप्तकालीन इतिहास परंपरा के एक प्रमुख प्रतीक थे। उनकी रचनाओं में भी तद्युगीन इतिहास प्रतिबिंबित होता है। प्राच्यविद् सर विलियम जोन्स ने 1789 ई. में महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' नाटक का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया था। जर्मन कवि गेटे ने भी इस ग्रंथ की प्रशंसा की है। कालिदास की कृतियां रघुवंश, मालविकाग्निमित्र आदि से भी गुप्तकालीन इतिहास की जानकारी मिलती है। वात्स्यायन का 'कामसूत्र' एवं शूद्रक का 'मृच्छकटिकम्' भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

टिप्पणी

गुप्तयुगीन इतिहास लेखन की परंपरा के समृद्ध होने का पता इस तथ्य से भी पता चलता है कि मौर्यकाल में हम इस बात का अनुमान लगाते हैं कि मौर्यकालीन अधिकारियों द्वारा तद्युगीन घटनाओं का लेखन किया जाता होगा और सम्भवतः ऐसे किसी विभाग के अस्तित्व के प्रमाण अर्थशास्त्र से मिलते हैं परंतु गुप्तकाल में तो हमें स्पष्ट रूप से गुप्त अभिलेखों में महाक्षपटलिक विभाग के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं जिसका प्रमुख कार्य राज्य के सभी आदेशों को सुरक्षित रखना और राजकीय आय–व्यय के ब्यौरे को सुरक्षित रखना था। इस विभाग का प्रमुख अधिकारी 'अक्षपटलाधिकृत' कहलाता था जिसे राजकीय प्रलेखों का प्रधान संग्राहक भी कहा जा सकता है। गुप्तकालीन यह परंपरा हर्ष के काल तक और समृद्ध हो जाती है। हर्ष की मंत्रीपरिषद् में 'अक्षपटलाधिकृत' का विशिष्ट स्थान हो गया था। मधुवन ताम्रलेख में अक्षपटलिक ईश्वरगुप्त एवं बांसखेरा ताम्रपत्र में अक्षपटलिक के रूप में भानू का उल्लेख मिलता है। हर्ष के काल में कर्णिक नामक कर्मचारी का भी उल्लेख मिलता है जो संभवतः लेखक था, हर्ष के समय तक अक्षपटलिक विभाग की निरंतरता का समर्थन युवान च्वाङ्ग के विवरणों में भी मिलता है।

प्राचीन भारत के प्रमुख इतिहासकार

प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की परंपरा में कुछ प्रमुख इतिहासकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्राचीन भारत के कुछ प्रमुख इतिहासकार निम्नलिखित हैं–

भीष्म

भीष्म पितामह कुरुवंश के राजा शांतनु तथा गंगा के पुत्र थे। भीष्म पितामह भारतीय महाकाव्य महाभारत के प्रमुख पात्र थे। महाभारत के शांति पर्व में राजधर्म के विषय में पांडवों युद्धिष्ठर आदि को जो ज्ञान भीष्म पितामह ने दिया वह इतिहास के विषय क्षेत्र में ही आता है। भीष्म पितामह ने राजधर्म, आपद् धर्म एवं स्वधर्म के विषय में महत्वपूर्ण उपदेश दिये। इतना ही नहीं उन्होंने वर्णव्यवस्था, समाज, जातिप्रथा, अर्थव्यवस्था, राज्य, राजा, मंत्रीपरिषद् एवं परदेशों के साथ संबंधों पर विस्तृत प्रकाश डाला है। भीष्म पितामह द्वारा दिये गये वक्तव्यों से हमें उनके इतिहास बोध का ज्ञान होता है। उन्होंने अपने इतिहास दर्शन में राजनीतिक एवं सामाजिक इतिहास के प्रायः सभी पक्षों पर अपना चिंतन प्रस्तुत किया है।

शुक

शुक द्वारा सृजित शुकनीति में 2200 श्लोक मिलते हैं। इसमें कुल चार अध्याय हैं। प्रथम एवं द्वितीय अध्याय में राजा, उसके महत्व एवं कर्त्तव्य, सामाजिक व्यवस्था, मंत्री एवं युवराज आदि पर प्रकाश डाला गया है। तृतीय अध्याय में साधारण नीति शास्त्र का वर्णन किया गया है जिसका संबंध राजा एवं अन्य सभी से है। चतुर्थ अध्याय में राजा के मित्रों, शत्रुओं, आय स्रोतों, राज्य क्षेत्र, विज्ञान एवं कलाएं, न्याय व्यवस्था जैसे अनेक विषयों का वर्णन किया गया है। इस तरह हम देखते हैं कि शुक के इतिहास दर्शन की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें राज दर्शन पर विशेष जोर दिया गया है। उसके नीति शास्त्र का उद्देश्य समाज कल्याण है। राजा को शुकनीति का स्वतः अध्ययन करने की सलाह दी गई है। शुक के इतिहास दर्शन का दूसरा प्रमुख विषय धर्म है। प्रजा को स्वधर्म में रत रखना राजा का महत्वपूर्ण कर्तव्य है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शुक का इतिहास दर्शन वस्तुतः समाज के राजनीतिक पक्ष पर आधारित है तथा राजनीति को दिशा देने का कार्य करता है।

विल्हण

टिप्पणी

विल्हण की रचना 'विक्रमांकदेवचरितम्' है विल्हण का जन्म 1040 ई. में हुआ था। ये भार्गव गोत्र की एक शाखा (सारस्वत) कौशिक गोत्र के ब्राह्मण थे। विल्हण की रचना में इतिहास दर्शन की झलक देखी जा सकती है। विल्हण ने अपनी कृति के नायक विक्रमादित्य के चरित्र को महान् एवं सोमेश्वर द्वितीय के चरित्र को हीन बताया है। इनकी कृति का नायक चालुक्य सम्राट विक्रमादित्य षष्ठ है। विल्हण के विवरण में ऐतिहासिकता की बात करें तो वह यह है कि उसमें आहवमल्ल की पीढ़ियों का वर्णन मिलता है। विल्हण के कृतित्व में यह कमी भी है कि उसमें कल्पित विवरण भी मिलते हैं। काव्य कल्पना में ऐतिहासिक लेखन विल्हण के कृतित्व की विशेषता है। विल्हण ने अपनी कृति में विक्रमादित्य के तीनों भाइयों के अच्छे या बुरे चरित्र का निर्धारण दैवीय नियति के द्वारा होता बतलाया है। विल्हण ने परम सुन्दरी एवं विद्याधर की कन्या चंद्रलेखा के विक्रमादित्य षष्ठ के साथ स्वयंवर विवाह का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार विल्हण की रचना में ऐतिहासिक तथ्य तो मिलते हैं परंतु उनके उपयोग में सावधानी अपेक्षित है।

बाणभट्ट का 'हर्षचरित'

भारतीय इतिहास लेखन की परंपरा में 7वीं शताब्दी के आरंभ में बाणभट्ट रचित 'हर्षचरित' का महत्वपूर्ण स्थान है। बाणभट्ट का 'हर्षचरित' वस्तुतः उसके अपने समकालीन पष्यभूति वंश के उत्तर भारत के सम्राट हर्षवर्धन के जीवन पर आधारित आख्यायिका को इतिहास की ही संज्ञा देता है ए.के.वार्डर का मानना है कि बाण भार्गव कुल का था और इसी कारण इतिहास में उसकी रुचि वंश परंपरा से विरासत में मिली होगी अथवा हर्ष ने उसको उसकी कुल क्रमागत गुण–संपन्नता के कारण, राजकीय इतिहास लेखक के रूप में अपना प्रसाद पात्र बनाया होगा। वार्डर के इस कथन पर विचार करें तो हमें बाण एवं हर्ष चीनी इतिहास लेखन की उस परंपरा के प्रतिनिधि नजर आते हैं जिसमें शासकों द्वारा राजकीय प्रश्रय में इतिहास का लेखन कराया जाता था परंतु यहां यह तथ्य भी ध्यान रखना होगा कि हर्षचरित पूरी तरह इतिहासकार न होकर साहित्य की उस शाखा से संबंधित है जिसे काव्य कहा जाता है।

बाणभट्ट की विशेष रुचि हर्षकालीन घटनाओं के यथा रूप एवं क्रमबद्ध लेखन में नहीं थी। बाण वस्तुतः अपने नायक हर्षवर्धन द्वारा एक विशिष्ट लक्ष्य (स्वतंत्र राजवंश की स्थापना) की प्राप्ति को पूर्व से सुनिश्चित मानकर इस लक्ष्य की प्राप्ति तक की सभी घटनाओं का घटित होना अनिवार्य मानता है। बाण के अनुसार हर्ष के पूर्वज पुष्यभूति को स्वयं लक्ष्मी (भाग्य की देवी 'श्री') ने यह वरदान दिया था कि वह एक ऐसे राजकुल की स्थापना करेगा जिसमें हर्ष एक प्रतापी व स्वतंत्र सम्राट बनेगा और वह (स्वयं लक्ष्मी) स्वयं उसकी परिचारिका बनेगी।

बाणभट्ट के 'हर्षचरित' की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि यह साहित्यिक दृष्टि से जितना श्रेष्ठ है, ऐतिहासिक दृष्टि से उतना ही प्रमाणिक भी है। अन्य काव्य साहित्य की तरह इसमें तथ्य एवं कल्पना का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। बाणभट्ट वस्तुतः इतिहास लेखन की उस परंपरा का प्रतीक है जो राजनीतिक के साथ–साथ तद्युगीन सांस्कृतिक परिवेश का प्रमाणिक विवरण प्रस्तुत करता है। साथ ही भौगोलिक विवरणों को भी अपने लेखन में स्थान देता है। बाणभट्ट हर्ष की विजय यात्रा में बताता

टिप्पणी

है कि वह प्रतिदिन आठ कोस की दूरी तय करता था। वह हर्ष की सैनिक शिक्षा अभ्यास की प्रतिबद्धता के बारे में लिखता है कि "दिन–प्रतिदिन शास्त्राभ्यास के चिह्नों से उसके हाथ काले पड़ गये थे; मानो वे समस्त राजाओं के प्रताप की अग्नि को शांत करने के लिये मलिन पड़ गये हैं।" राजनीतिक स्थिति के बारे में हर्ष की सिंध विजय का उल्लेख करते हुए बाण ने लिखा है–"सिंधु राज को युद्ध क्षेत्र में मर्दित करके उसकी राजलक्ष्मी को छीन लिया।" हर्षचरित में हर्षवर्धन को सकलोकत्तरापथ नाथ कहा गया है जो स्पष्ट करता है कि उसने उत्तर भारत पर विजय प्राप्त कर ली थी।

बाणभट्ट के इतिहास लेखन की एक और प्रमुख विशेषता यह है कि वह तद्युगीन सामाजिक कुरीतियों को उजागर करते हुए उनका पुरजोर विरोध भी करता है। वह 'हर्षचरित' में यह तथ्य उद्घाटित करता है कि प्रभाकर वर्धन की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी (हर्षवर्धन की मां) सती हो गईं थीं एवं हर्षवर्धन ने अपनी बहन राज्यश्री को सती होने से बचा लिया था। जहां मिताक्षरा के टीकाकार एवं आंगिरस व हारीत आदि सती प्रथा को उचित बताते हैं, वहीं बाणभट्ट सती प्रथा का विरोध करते हुए इसे महान् मूर्खतापूर्ण कार्य बताते हैं जिसका कि कोई फल नहीं होता। यह आत्महत्या है जिसका अनुगमन करने बाली स्त्री नरकगामिनी होती है। इसके विपरीत विधवा स्त्रियां अपना तथा अपने मृतक पति दोनों का कल्याण करतीं हैं। सती होकर वे किसी को भी लाभ नहीं पहुंचातीं। बाणभट्ट के यह विचार निश्चित रूप से उनकी प्रगतिशील सोच के परिचायक हैं एवं सामाजिक इतिहास के पुनर्निर्माण में इनका अत्यधिक महत्व है।

गिरजा प्रसाद मिश्रा ने बाणभट्ट रचित 'हर्षचरित' को एक समसामयिक लेखक द्वारा प्राथमिक ज्ञान पर आधारित एक शासक विशेष से संबद्ध इतिवृत्त की संज्ञा दी है। साथ ही उसका तत्संबद्धी मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि "इतिवृत्तकार के रूप में बाण के मूल्यांकन के संबंध में यह उल्लेखनीय है कि उसकी कृति की प्रमाणिकता इन साक्ष्यों से भी सिद्ध होती है और इस कारण इसे हर्ष के प्रारंभिक जीवन पर एक प्रमाणिक साक्ष्य स्वीकार किया जाता है किंतु इतिवृत्तकार के साथ–साथ बाण 'कवि' भी था। उसमें स्थित कवि के कारण ही हम कहीं–कहीं विश्वास तथा चमत्कारिक कार्यों के अस्तित्व की चर्चा पाते हैं। कहीं–कहीं काव्यात्मक चातुर्य के प्रकाशन की प्रबल आकांक्षा के कारण महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सूचनाएं गौण हो गई दिखाई पड़ती हैं।" मिश्र बाण की तुलना में 'राजतरंगिणी' के लेखक कल्हण को अपेक्षाकृत कहीं अधिक संतुलित इतिवृत्तकार मानते हैं परंतु प्रमाणिकता एवं महत्व की दृष्टि से बाण रचित 'हर्षचरित' भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की परंपरा की महत्वपूर्ण कड़ी है।

जयानक का पृथ्वीराजविजय महाकाव्य

1192–93 ई. के बीच कश्मीर के एक भार्गव वंशीय ब्राह्मण जयानक ने चाह्मान सम्राट पृथ्वीराज तृतीय पर पृथ्वीराजविजय महाकाव्य की रचना की। इसमें कुल 12 सर्ग हैं। प्रारंभिक सर्गों में चाह्मान वंश का पूर्ववर्ती इतिहास मिलता है। संपूर्ण ग्रंथ काव्यात्मक शैली में है जिसमें नायक संयोगिता के रूप में भाग्य देवी को प्राप्त करने की कोशिश करता है और अंततः उसमें सफल भी होता है। जयानक ने अवतारवाद की परंपरा को अपने काव्य का विषय बनाया है। उसके अनुसार म्लेच्छो (अर्थात् मुसलमान तुर्कों) ने तीर्थस्थानों पर आक्रमण कर उन्हें दूषित कर दिया, देवालयों का विध्वंश कर दिया, कर्मकांडों पर प्रतिबंध लगा दिया एवं दुर्भिक्ष फैला दिये। अतः ब्रह्मा ने इन कष्टों से निजात दिलाने के लिये भगवान विष्णु से प्रार्थना की कि वह वीर पुरुष के रूप में अवतार

धारण करें। ब्रह्माजी के कहने पर विष्णु भगवान् ने पृथ्वी को इन कष्टों से मुक्ति दिलाने के लिये पृथ्वीराज तृतीय के रूप में अवतार लिया। जयानक ने पृथ्वीराज चौहान को सूर्यवंशीय माना है।

टिप्पणी

यद्यपि पृथ्वीराजविजय महाकाव्य में कल्पनात्मक तथ्य हैं मगर फिर भी पृथ्वीराज तृतीय के इतिहास की जानकारी का प्रमाणिक स्रोत यही हैं। चंद्रवरदायी के पृथ्वीराज रासो की तुलना में जयानक का पृथ्वीराजमहाकाव्य पृथ्वीराज के संबंध में विश्वसनीय साक्ष्य उपलब्ध कराता है। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की कड़ी का एक प्रमुख व्यक्ति जयानक को माना जा सकता है।

कल्हण की 'राजतरंगिणी'

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की परंपरा की अंतिम एवं सर्व महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में हम कल्हण रचित 'राजतरंगिणी' को रख सकते हैं। कल्हण की 'राजतरंगिणी' कश्मीर के इतिहास लेखन का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। बाण रचित 'हर्षचरित' की भांति ही कश्मीरवासी कवि कल्हण ने 1148 से 1149 ई. के मध्य लिखी अपनी कृति 'राजतरंगिणी' में काव्य एवं इतिहास का सुंदर समन्वय प्रस्तुत किया है। घोषाल, व्ही.एस. पाठक एवं गिरजाशंकर प्रसाद मिश्र आदि ने बाण रचित 'हर्षचरित' एवं कल्हण रचित 'राजतरंगिणी' को इनके विकसित एवं विशिष्ट ऐतिहासिक स्वरूप के कारण इन्हें इतिवृत्त के अंतर्गत रखा है। कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' (1.5.10) में इतिवृत्त को इतिहास का ही एक अंग माना है। गिरजाशंकर प्रसाद ने बाण की तुलना में कल्हण को कहीं अधिक संतुलित इतिवृत्तकार माना है।

बाणभट्ट का 'हर्षचरित' जहां प्राथमिक ज्ञान पर आधारित एक शासक (हर्षवर्द्धन) से संबद्ध इतिवृत्त है, वहीं कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' एक शासन वंशीय (कश्मीर का शासन वंश) इतिवृत्त है जिसे पूर्ववर्ती इतिवृत्तों, प्राचीन लेखों, एवं राजकीय प्रलेखों के आधार पर लिखा गया है।

इस तारतम्य में ए.के. वार्डर ने लिखा है कि कल्हण ने अपने इतिहास की पुष्टि, समकालीन लेखों जिनमें राजकीय शासन पत्र, दानपत्रों, पुराभिलेख, मुद्राएं शामिल थीं आदि से की। उसने कश्मीर के इतिहास पर लिखे गये पूर्वकालीन असंख्य ग्रंथों का आलोचनात्मक अध्ययन किया जिनमें नीलमन पुराण, सुव्रत की रचनाएं एवं क्षेमेंद्र की नृपावली आदि प्रमुख हैं।

इतिहास लेखन प्रविधि–एक इतिहासकार के रूप में कल्हण एवं उसकी कृति 'राजतरंगिणी' उन कतिपय विद्वानों के इस अभिमत कि–प्राचीन भारतीय इतिहासकार नहीं थे, उनमें इतिहास बोध एवं इतिहास लेखन प्रविधि के ज्ञान का अभाव था–का खंडन करने का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस अवधारणा वाले विद्वानों ने कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' का सांगोपांग अध्ययन नहीं किया था। 'राजतरंगिणी' में अपने इतिहास लेखन के प्रयोजन के साथ–साथ इतिहास लेखन प्रविधि को भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि–

दाक्ष्यं कियदिदं तस्मादस्मिनभूतार्थवर्णन।
सर्वप्रकारं स्खलिते योजनाय ममोद्दमः।।

अर्थात् भूतकाल में वर्णित कथावस्तु के पुनर्लेखन का उद्देश्य जाने बिना सुजनों का मुझसे विमुख हो जाना उचित नहीं है। भूतकालिक रचनाएं हर प्रकार से स्खलित

टिप्पणी

हो जाने के कारण उनके समायोजन द्वारा एक क्रमबद्ध इतिहास के प्रस्तुतीकरण हेतु मैं यह उद्यम कर रहा हूं। साथ ही कल्हण यह भी बताता है कि उसने अपने इतिहास लेखन हेतु स्रोतों के रूप में सुव्रत की रचनाओं, क्षेमेंद्र की नश्पावली, हेलाराज की पार्थिवावली, नीलमन पुराण (एक स्थानीय पुराण अर्थात् स्थल पुराण जो कश्मीर की उत्पत्ति तथा इतिहास के विषय पर लिखा गया है), पदम् मिहिर और छविल्लाकरण की रचनाओं आदि साहित्यिक स्रोतों के साथ–साथ मंदिरों के शिला लेख, भूदानपत्र, पुराभिलेख एवं मुद्राओं आदि पुरातात्विक स्रोतों का भी उपयोग किया है। यह स्पष्ट करता है कि कल्हण इतिहास लेखन प्रविधि के वैज्ञानिक स्वरूप से पूर्णतः वाकिफ था।

कल्हण के इतिहास लेखन की एक और प्रमुख विशेषता, जो उसे प्राचीन भारतीय इतिहासकारों की श्रेणी में अग्रणी स्थान पर प्रतिष्ठित करतीं हैं वह यह है कि उसने अपने इतिहास लेखन में मात्र अतीतकालिक स्रोतों का उपयोग ही नहीं किया है अपितु उक्त स्रोतों का आधुनिक इतिहासकारों की भांति आलोचनात्मक परीक्षण भी प्रस्तुत किया है। सुव्रत कृत 'कश्मीर के इतिहास' की समीक्षा करते हुए कल्हण बताता है कि उसका यह कृतित्व अत्याधिक पांडित्यपूर्ण होने के कारण सामान्यजन के लिये बोधगम्य ग्राह्य नहीं है। क्षेमेंद्र की नश्पावलियों को कल्हण नितांत असावधानी पूर्वक किया कार्य बताता है और उसका मानना है कि इसीलिए इनका कोई भी अंश निर्दोष नहीं है।

इस प्रकार कल्हण ने जिन कारणों को लेकर पूर्ववर्ती ऐतिहासिक स्रोतों की आलोचना की है, उन कारणों को अपने इतिहास लेखन में दूर करने का भरसक प्रयास किया है। इस तारतम्य में वे स्वयं ही लिखते हैं कि "मेरा यह ग्रंथ (राजतरंगिणी) पुरातन ग्रंथों से उत्पन्न भ्रांतियों को दूर करने में सहायक सिद्ध होगा।" उनका यह कथन उनके इतिहास बोध के साथ–साथ इतिहास लेखन प्रविधि की प्रखरता का भी परिचायक है।

कल्हण के संबंध में विश्वम्भर शरण पाठक ने उचित ही लिखा है कि–'कल्हण भोर के तारे के समान आधुनिक इतिहास लेखन रूपी सूर्य के सम्मुख दृढ़तापूर्वक खड़ा रह सकता है।' अतः निश्चित रूप से कल्हण प्राचीन भारतीय इतिहास की परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी था।

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन का वर्गीकरण

अभी तक हम वैदिककालीन इतिहास लेखन से कल्हण की 'राजतरंगिणी' तक प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के विकास के विभिन्न सोपानों का वर्णन कर चुके हैं। इस विकास क्रम में हमें प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के विभिन्न स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं अतः इतिहास लेखन के विभिन्न स्वरूपों के मद्देनजर सर्वश्री गिरजा शंकर प्रसाद ने प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की विभिन्न परंपराओं को समझने के दृष्टिकोण से प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन को निम्नलिखित चारों भागों में वर्गीकृत किया है–

1. धार्मिक कथाओं तथा पुराण कथाओं के रूप में इतिहास,
2. शासनवंशीय प्रलेखों के रूप में इतिहास,
3. जीवन चरित के रूप में इतिहास,
4. इतिवृत्त के रूप में इतिहास।

1. **धार्मिक कथाओं तथा पुराण कथाओं के रूप में इतिहास**–प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की वैदिक परंपरा एवं पौराणिक इतिहास लेखन की

टिप्पणी

परंपराओं में धार्मिक कथाओं एवं पुराण कथाओं में निहित इतिहास की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत कर चुके हैं। वैदिक काल में दशराज युद्ध का तो ऐतिहासिक महत्व सर्वविदित है। इंद्र 'युद्ध देवता' से 'वर्षा के देवता' में परिवर्तन एक घुमक्कड़ तथा लड़ाकू समुदाय का कृषकों के एक स्थाई स्थान पर रहने की अवस्था में संक्रमण का परिचायक है। एतरेय ब्राह्मण में राज्याभिषेक के नियम मिलते हैं, शतपथ ब्राह्मण में गंधार, शल्य, कैकय, कुरु, पंचाल, कौशल, विदेह आदि के राजाओं का उल्लेख मिलता है। रामायण एवं महाभारत में वर्णित कथाओं से हमें प्राचीन हिंदू संस्कृति के विविध पक्षों का सुंदर ज्ञान प्राप्त होता है। इन महाकाव्यों द्वारा प्रतिपादित आर्दश तथा मूल्य सार्वभौम मान्यता रखते हैं। भारतीय ऐतिहासिक कथाओं का सबसे अच्छा एवं क्रमबद्ध विवरण हमें पुराणों से मिलता है। विभिन्न पौराणिक कथाओं एवं पुराणों से हमें शिशुनाग, नंद, मौर्य, शुंग, कण्व, आंध्र एवं गुप्त वंश के इतिहास की जानकारी मिलती है। पार्जिटर ने अपनी कृतियों 'एंशियंट इंडियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन्स' एवं 'डायनेस्टीज ऑफ द कलिएज' नाम कृतियों के माध्यम से पौराणिक कथाओं के ऐतिहासिक महत्व की ओर विद्वत जगत का ध्यान आकृष्ट किया है।

2. **शासनवंशीय प्रलेखों के रूप में इतिहास**–विभिन्न प्रकार के ऐतिहासिक प्रलेखों का अस्तित्व वैदिक साहित्य से ही मिलना प्रारंभ हो जाता है जो कि वंश, गाथाएं, नाराशंसी एवं दान स्तुती के रूप में हैं। वंश में जहां पुरोहितों एवं राजाओं की सूची मिलती है, वही गाथाओं, नाराशंसी एवं दानस्तुती इत्यादि में राजकीय जननायकों एवं संरक्षकों की प्रशंसा मिलती है परवर्ती युग में इन अव्यवस्थित ऐतिहासिक कृतियों को सुगठित एवं सुव्यवस्थित रूप मिला। चीनी इतिहास लेखन की परंपरा में जिस प्रकार इतिहास लेखन विभाग के तहत शासक इतिहासकारों से पूर्ववर्ती एवं समकालीन इतिहास लिखवाते थे, वैसी ही कुछ परंपरा प्राचीन भारत में भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होती है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से इस प्रकार के विभाग के अस्तित्व का मौर्यकाल में भी आभास होता है। अशोक के येरागुडी लघुशिला लेख में 'कर्णिक' नामक अधिकारी की चर्चा है जो संभवतः लेखा–अधिकारी ही था। हर्षवर्द्धन के समय भी दिविर, लेखक एवं कर्णिक नामक कर्मचारियों का उल्लेख मिलता है। गुप्तकाल में तो महाक्षपटलिक विभाग अस्तित्व में था जिसका कार्य राज्य के सभी आदेशों को सुरक्षित रखना और राजकीय आय–व्यय के ब्यौरे को भी सुरक्षित रखना था। गुप्त अभिलेखों में उक्त विभाग के प्रमुख के रूप में 'अक्षपटलाधिकृत' नामक अधिकारी का उल्लेख है जिसे राजकीय प्रलेखों का प्रधान संग्रहक कहा जा सकता है। हर्ष के काल तक यह परंपरा और अधिक विकसित हुई। अक्षपटलाधिकृत उसकी मंत्रीपरिषद् का प्रमुख प्रतिनिधि बन गया। मधुवन ताम्रलेख में अक्षपटलिक ईश्वरगुप्त एवं बांसखेड़ा ताम्रपत्र में अक्षपटलिक भानू का नाम दिया जाना उस काल में इस पदाधिकारी के महत्व को प्रतिपादित करता है।

3. **जीवन चरित के रूप में इतिहास**–प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की परंपरा में जीवन चरित का विशिष्ट महत्व है। अश्वघोष का 'बुद्धचरित', भवभूति रचित 'महावीर चरित' एवं 'उत्तररामचरित', भास का 'स्वप्नवासवदत्तम्', कालिदास

टिप्पणी

का 'मालविकाग्निमित्र', वाक्पति का 'गौड़वहो', श्रीहर्ष का 'नैषध चरित', बाणभट्ट का 'हर्षचरित', विल्हण का 'विक्रमांकदेव चरित' एवं पद्मगुप्त का 'नवसहसांकचरित' इत्यादि में विभिन्न शासकों का जीवनवृत्त एवं तद्युगीन इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। कौटिल्य ने आख्यायिका (जीवन चरित) को इतिहास का ही एक अंग माना है। वैदिक आख्यायिकाओं को परवर्ती चरित साहित्य कहा गया है।

वाक्पति राज कृत 'गौड़वहो' में कवि ने अपने संरक्षक शासक यशोवर्मन द्वारा गौड़ शासक की पराजय का उल्लेख किया है। 'विक्रमांकदेवचरित' में विल्हण ने चालुक्यराज विक्रमादित्य का वर्णन प्रस्तुत किया है। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में एक नियमित पवित्र जीवन कथा का अनुप्रवेश बौद्धधर्म को जाता है। 'ललित विस्तार' में बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएं मिलती हैं। अश्वघोष के 'बुद्धचरित' का कथानक भी बुद्ध का जीवन है। हर्ष की एवं तद्युगीन राजनीतिक व सांस्कृतिक परिवेश की जानकारी का प्रमुख स्रोत बाण रचित 'हर्षचरित' है। पद्मगुप्त अपने 'नवसहसांकचरित' में मालवा के परमार शासक सिंधुराज से संबद्ध घटनाओं का उल्लेख करता है। साध्यकार नंदिन ने पाल शासक रामपाल के जीवन पर आधारित कृति 'रामचरित' का सृजन किया था। साध्यकार नंदिन का मुख्य अभिप्राय विभिन्न शासकों द्वारा अपनाई गई अच्छी व बुरी नीतियों के संदर्भ में शासकों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है। साथ–साथ वह शासकों को यह उपदेश भी देता है कि उन्हें मंत्रियों, परामर्श दाताओं के साथ स्वयं उसके समान विद्वानों तथा लेखकों के परामर्श को मानना चाहिये।

इस प्रकार जीवन चरित प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग है। प्राचीन भारतीय शासकों एवं उनके युग के इतिहास की जानकारी का भी प्रमुख स्रोत उन पर उपलब्ध जीवन चरित है।

4. **इतिवृत्त के रूप में इतिहास**–कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' (1–5.10) में इतिवृत्त को भी इतिहास की संज्ञा दी है। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की परंपरा में बाण रचित 'हर्षचरित' एवं कल्हण रचित 'राजतरंगिणी' को इनके विकसित तथा विशिष्ट ऐतिहासिक स्वरूप के कारण इन दोनों को ही विद्वान ने इतिवृत्त के अंतर्गत रखा है। गिरजा शंकर प्रसाद मिश्र के अनुसार "'हर्षचरित' एक समसामयिक लेखक (बाण) द्वारा प्राथमिक ज्ञान पर आधारित एक शासक विशेष से संबद्ध इतिवृत्त है; 'राजतरंगिणी' एक शासन वंशीय इतिवृत्त है जिसे पूर्ववर्ती इतिवृत्तों, प्राचीन लेखों एवं राजकीय प्रलेखों के आधार पर लिखा गया है।" एक शासक के रूप में हर्ष से संबंधित जानकारी का सर्वाधिक प्रमाणिक स्रोत के रूप में बाण रचित 'हर्षचरित' का इतिहास जगत में महत्वपूर्ण स्थान है। ठीक इसी तरह एक वंश के रूप में कश्मीर के राजवंशों से संबद्ध इतिहास की सर्वाधिक प्रमाणिक जानकारी कल्हण रचित 'राजतरंगिणी' से मिलती है। कल्हण की तुलना में बाण में एक कवि इतिवृत्तकार पर हावी हो जाता है और इसलिए हर्षचरित में हम कहीं–कहीं मानवीय कार्य व्यापार पर दैवीय हस्तक्षेप, सपनों के सत्य होने में विश्वास तथा चमत्कारिक कार्यों के अस्तित्व की चर्चा पाते हैं। बाण की तुलना कल्हण अपेक्षाकृत कहीं अधिक संतुलित इतिवृत्तकार के रूप में हमारे सामने आता है।

टिप्पणी

कल्हण के इतिवृत्त राजतरंगिणी का सांगोपांग अध्ययन करने पर कल्हण में एक इतिहासकार की सभी विशेषताएं प्रखरता के साथ परिलक्षित होती हैं। उसकी इतिहास लेखन प्रविधि का वैज्ञानिक स्वरूप इतिहास के शिक्षात्मक पहलू पर बल, निष्पक्ष एवं पूर्वाग्रह से मुक्त इतिहास लेखन एवं तिथिक्रमानुसार वर्णन कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो अनुकूल दृष्टिकोण से देखने पर कल्हण को निश्चित रूप से एक इतिहासकार के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताएं

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की विभिन्न परंपराओं का अध्ययन करने के पश्चात प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की निम्नलिखित विशेषताएं उभर कर सामने आती हैं–

1. इतिहास शब्द का पुष्कल प्रयोग प्राचीन भारतीय वेद वाङ्मय के अथर्ववेद में मिलता है।
2. उत्तर वैदिक काल में इतिहास की मौखिक परंपरा पांच रूपों–गाथा, नाराशंसी, आख्यायिका, पुराण एवं इतिवृत्त के रूप में विकसित हुई।
3. विष्णु पुराण मौर्यवंश की, मत्स्य पुराण सातवाहन वंश की एवं वायुपुराण गुप्तवंश की जानकारी उपलब्ध कराता है।
4. प्राचीन काल में वंशानुचरितों की जो रचना सूतों द्वारा की जाती थी, पूर्व मध्यकाल में वह कार्य राजदरबार के एक वर्ग विशेष द्वारा किया जाने लगा। सूत युद्ध के समय विभिन्न मंत्रों का पाठ करते थे जिनसे राजा को शक्ति प्राप्त होती थी तथा विजय मिलती थी।
5. मौर्यकालीन भारत में कौटिल्य ने इतिहास के विषय में महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। उसने राजा को इतिहास का श्रमण आवश्यक बताया है।
6. बाणभट्ट का हर्ष चरित, विल्हण का विक्रमांकदेव चरित, जयानक का पृथ्वीराज विजय महाकाव्य एवं कल्हण की राजतरंगिणी जैसे काव्य प्राचीन भारतीय इतिहास की प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध कराते हैं।
7. प्राचीन काल में कई अभिलेख लिखे गये थे। अभिलेख एवं प्रशस्तियां भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण एवं तथ्यपरक जानकारी उपलब्ध कराती है। इसमें समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति का विशेष महत्व है जिसका रचनाकार हरिशेण था।

अपनी प्रगति जांचिए

3. प्राचीन भारत में सबसे प्राचीन वैदिक ग्रंथ किसे माना जाता है?

   (क) ऋग्वेद (ख) सामवेद

   (ग) यजुर्वेद (घ) अथर्ववेद

4. गिरजाशंकर प्रसाद ने भारतीय इतिहास लेखन को कितने भागों में वर्गीकृत किया है?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) छह

3.4 मध्यकालीन पश्चिमी अरबी, फारसी और भारतीय इतिहास लेखन

टिप्पणी

मध्यकालीन इतिहास लेखन की परंपरा में पश्चिमी इतिहास लेखन का विशिष्ट स्थान है। पश्चिमी इतिहास लेखन का प्रमुख केंद्र बिंदु ईसाई इतिहास लेखन की परंपरा है। विधर्मियों पर ईसाइयत की विजय ने इतिहास लेखन की परंपरा के भी प्रभावित किया। जहां इतिहास लेखन की ग्रीको–यूनानी परंपरा में बुद्धि एवं विवेक का महत्वपूर्ण स्थान था, वहीं ईसाई इतिहास लेखन की परंपरा में धर्म को सर्वोपरि स्थान प्राप्त हुआ। ईसाई इतिहासकारों ने विधर्मियों के इतिहास लेखन को शैतान की कृति कहकर इतिहास लेखन में ओल्ड टेस्टामेंट को उच्च स्थान दिया परंतु विधर्मी इतिहास लेखन के बावजूद भी ईसाई उनके इतिहास दर्शन से कहीं न कहीं प्रभावित थे क्योंकि ईसाई धर्म में परिवर्तन के पहले उनकी शिक्षा–दीक्षा वस्तुतः विधर्मी संस्कृति में ही संपन्न हुई थीं।

पश्चिमी इतिहास लेखन के तहत् ईसाई इतिहासकारों ने कागजात देखने की ग्रीकों–रोमन परंपरा की आलोचनात्मक पद्धति के स्थान पर गूढ़ अर्थ की व्याख्या हेतु धार्मिक साहित्य का सहारा लिया। संत आगस्टाइन की प्रमुख कृति 'देवनगरी' में अच्छे एवं बुराइयों के मध्य की शक्तियों के बीच संघर्ष की चर्चा की गई है जिसमें बुराई का प्रतीक विधर्मियों को एवं अच्छाई का प्रतीक ईसाइयों को बताया गया है। ईसाई इतिहासकारों ने ऐतिहासिक दस्तावेजों को धार्मिक (पवित्र) एवं धर्मनिरपेक्ष (अपवित्र) भागों में बांटा था। उन्होंने धार्मिक दस्तावेजों को विशिष्ट महत्व देते हुए ऐतिहासिक लेखन में दैवीय घटनाओं को प्रमुखता दी थी। ईसाई इतिहासकारों ने यहूदियों के पवित्र ग्रंथों को सरकारी दस्तोवेजों के रूप में ग्रहण किया। इतिहास लेखन में दैवीय घटनाओं को प्रमुखता देने को प्रो. शाटवेल ने एक दुखद घटना माना है।

ईसाई इतिहास दर्शन ने अनुसार मनुष्य परम सत्य की प्राप्ति इतिहास के माध्यम से करता है। जिसमें ईश्वर अपनी सृष्टि हेतु आत्म–प्रकाशन करता हे। अपने धर्म का यह विशिष्ट ऐतिहासिक स्वरूप ईसाइयों को यहूदियों से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुआ था।

ईसाई इतिहास लेखन की विशेषताएं

ईसाई इतिहास लेखन में घटनाएं उस रूप में नहीं देखी गईं जिस रूप में वे घटती हैं अपितु दैवीय आवरण में घटनाओं को एक योजना के अनुरूप देखा गया। ईसाई इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. ईसाई इतिहास लेखन की परंपरा में प्रकृति का भौतिक विकास महत्वपूर्ण न होकर मनुष्य तथा ईश्वर सर्वोपरि थे। इतिहास को मनुष्य एवं ईश्वर के बीच संबंधों का एक प्रवाह माना गया है।
2. ईसाई इतिहास लेखन में मनुष्य को नैतिक रूप से ईश्वर द्वारा बांधा गया है। इस अवधारणा के अनुसार मनुष्य के लिये ईश्वर तथा उसके आदेशों का मानना अपरिहार्य है, ईश्वर को भुला देने पर अथवा उसके आदेशों की अवज्ञा करने पर वह ईश्वर द्वारा दंडित किया जाता है। मानवीय कार्य वस्तुतः ईश्वरीय इच्छा के अधीन होना चाहिए। सेंट आगस्टाइन ने ईश्वर की आज्ञा का पालन मनुष्य का

टिप्पणी

पुनीत कर्तव्य माना है। उनके अनुसार ईश्वर के आज्ञापालक देव व मनुष्य देवनगर में निवास करते हैं, जबकि ईश्वर–विरोधी पाप नगर में निवास करते हैं। रोम का उत्थान ईश्वरी कृपा से हुआ था परंतु कालांतर में पाप, अन्याय एवं अनैतिकता के कारण ईश्वरीय प्रकोप से ही उसका पतन हुआ। अतः विश्व की प्रत्येक घटना ईश्वरीय कृपा पर निर्भर है। नेकी और बदी के संघर्ष के कारण ही साम्राज्यों का उत्थान एवं पतन और विभिन्न संस्कृतियों का उद्‌भव एवं विनाश होता है।

3. ईसाई इतिहास की परंपरा में इतिहास को एक नाटक माना गया है। इस इतिहास रूपी नाटक के प्रथम अंक में आदम का स्वर्ग से पतन, पाप का प्रारंभ तथा ईश्वर से संबंध विच्छेद हैं। द्वितीय अंक में जीसस क्राइस्ट का अवतार, अनुयायियों का एकत्रीकरण, क्रास पर उनकी मृत्यु तथा स्वर्ग के लिये प्रस्थान है। तीसरे अंक में चर्च की स्थापना तथा ईसाई धर्म का प्रचार है। चतुर्थ अंक में न्याय के दिन क्राइस्ट का पुनरागमन तथा ईसाई राज्य की स्थापना है। इस प्रकार यह संपूर्ण नाटक ईश्वर–प्रधान है। ईसाई इतिहास दर्शन का चरमोत्कर्ष बोसुए की ऐतिहासिक कृतियों में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता हे। उसने चर्च को इतिहास का प्रमुख केंद्र माना है। बोसुए के अनुसार विश्व का संपूर्ण कार्यकलाप तथा इतिहास की घटनाएं ईश्वरीय इच्छा की परिचायक हैं। क्राइस्ट का आगमन ईश्वर की महान और विशाल योजना का प्रतीक है। इस प्रकार ईसाई इतिहासकार परमात्मा के महत्व को स्वीकार करते हैं एवं किसी भी कारण की व्याख्या मानवीय विवेक के आधार पर न कर घटनाओं के पूर्व निर्धारण के आधार पर करते हैं। इतिहास को एक नाटक की संज्ञा देना इस तथ्य का प्रमाण है। प्रो. कॉलिंगवुड ने इस अवधारणा पर व्यंग करते हुए लिखा है कि ''दैवीय इतिहास, इतिहास को एक ईश्वरकृत नाटक बतलाता है लेकिन यह एक ऐसा नाटक है, जिसका कोई पात्र प्रणेता का प्रिय पात्र नहीं है।'' प्रो. जे. बी. ब्यूरी ने भी बोसुए की इस अवधारणा को अत्यंत तथ्यहीन एवं मिथ्या माना है कि मानव जाति की रचना मात्र चर्च के निमित्त हुई हैं। ईसाई अवधारणा के इतिहास के इस रूढ़िवादी दृष्टिकोण को काल्विन एवं मार्टिन लूथर ने भी चुनौती देते हुए मानव मात्र की स्वतंत्रता पर विशेष बल दिया है।

4. ईसाई इतिहासकारों ने विश्वजनीन इतिहास का सृजन किया। उन्होंने विविध तिथिपरक घटनाओं के लिए ईसा के जन्म का प्रतिमान प्रस्तुत किया। ईसा के जन्म के पूर्व एवं जन्म के पश्चात तिथिपरक घटनाओं का विवरण ईसाई इतिहास लेखन की ही विशेषता है। ईसाई इतिहासकार ईसा के जीवन पर विशेष बल देते हैं इसलिए ईसा के पूर्व और पश्चात की घटनाओं को ईसा के जन्म से जोड़ा गया है। इसी आधार पर ईसाई इतिहासकारों ने इतिहास को अंधकार युग एवं प्रकाश युग में विभक्त किया है।

5. रोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात उनकी अनेक कृतियां नष्ट हो गई थीं। अतः मध्युगीन इतिहासकारों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्राचीन ऐतिहासिक कृतियों से वे वंचित रहे। इतिहास के क्षेत्र में आई इस शून्यता का लाभ ईसाई पादरियों ने उठाया और इतिहास लेखन के क्षेत्र में उनका एकाधिकार कायम हो गया। चूंकि ये पादरी धार्मिक भावनाओं से प्रेरित थे अतः

टिप्पणी

इन्होंने तथ्यों को तोड़–मरोड़कर प्रस्तुत किया। प्रो. बार्ने ने इसे प्राचीन इतिहास लेखन की विधा की अवनति का सूचक माना है। उनके अनुसार मध्युगीन इतिहास लेखन में स्रोतों का उपयोग न के बराबर किया गया। चर्च के पदारियों ने इतिहास लेखन में ऐतिहासिक पद्धति की पूर्णतः उपेक्षा की।

6. मध्ययुगीन इतिहास लेखन प्रणाली में इतिवृत्त, क्रमबद्ध इतिहास एवं आत्मकथाओं में विभेद करना कठिन है। मध्ययुगीन इतिहास अनन्य रूप में उपाख्यानात्मक था। इतिहास लेखन में सामाजिक आर्थिक एवं बौद्धिक विश्लेषण का स्पष्टतः अभाव था परंतु इसके बावजूद धर्म युद्ध के काल में ऐतिहासिक कृतियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई।

मध्ययुग के पश्चिमी इतिहासकार

मध्यकालीन युग के कुछ पश्चिमी इतिहासकार निम्नलिखित थे–

1. **मार्क औरेलियस कैसीडोर**– यह इटली का इतिहासकार था जिसकी प्रमुख रचनाएं वेराय एवं 'गोथ का इतिहास' हैं। वेराय मुख्यतः राजकीय पत्रों एवं कागजात का संकलन है जिसमें इटली के राजा औस्ट्रोगोथ के काल की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का वर्णन मिलता है। मध्ययुगीन ईसाई चर्च के एक महत्वपूर्ण ग्रंथ 'हिस्ट्रोरिया ट्रिपार्टिटा' का भी सृजन कैसीडोर द्वारा किया गया था।
2. **प्रोकोपियस**– प्रोकोपियस ने दो महत्वपूर्ण कृतियों का सृजन किया था। उसकी प्रथम कृति 'अपने युग के इतिहास' में पर्सिया, अफ्रीका और गोथों के विरुद्ध विभिन्न युद्धों का विश्वसनीय विवरण प्रस्तुत किया है। इस कृति की विशेषता यह है कि इसके लेखन में स्रोतों का उपयोग किया गया है। उसकी एक और अन्य कृति 'गुप्त इतिहास' के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें राजमहल के षड्यंत्रों पर प्रकाश डाला गया है। इस कृति में बैलेंटायन राजधानी के नैतिक पतन का भी विवरण प्रस्तुत किया गया है।
3. **ग्रेगरी**– ग्रेगरी की सर्वप्रमुख कृति 'फ्रैक का इतिहास' है। इस कृति का द्वितीय भाग प्रथम भाग की तुलना में अधिक प्रमाणिक है क्योंकि ग्रेगरी आदिकालीन घटनाओं का समकालीन था। ग्रेगरी ने अपने इतिहास लेखन में स्रोतों का भी उल्लेख किया है। इसीलिये वार्ने ने ग्रेगरी के इतिहास लेखन के बारे में लिखा है कि ''ग्रेगरी ने रोमन से मध्ययुगीन संक्रमण इतिहास का अच्छा वर्णन किया हैं क्योंकि वह स्वयं संक्रमण युग का ही प्रतिनिधि था।"
4. **वेनेरेबल बेडे**– बेनेरेबल ने 'अंग्रेजों के चर्च संबंधी इतिहास' का सृजन किया था। इस कृति में बेडे ने दैवीय घटनाओं का उल्लेख करते हुए इसे एक ऐतिहासिक कृति बनाने का प्रयास किया है। इसका प्रमाण यह है कि उसने स्रोतों के साथ महत्वपूर्ण पादरियों का भी सहयोग प्राप्त किया था। इस कृति की विशेषता यह है कि इसमें जहां एक ओर इंग्लैंड में धर्म की प्रगति एवं चर्च संगठन का वर्णन मिलता है, वहीं दूसरी ओर, कुछ ऐसी राजनीतिक घटनाओं का भी उल्लेख है जिनका संबंध धर्म के विकास से प्रत्यक्षतः था। इस कृति में जूलियस सीजर से लेकर 731 ई. तक का इंग्लैंड का इतिहास मिलता है, साथ ही कुछ पादरियों की आत्मकथा भी दी गई है।

टिप्पणी

इनके अलावा पॉव वार्नेफ्रिरस, नीट हार्ड एवं इन हार्ड आदि अन्य प्रमुख मध्ययुगीन पाश्चात्य इतिहासकार थे। पाल ने अपनी कृति 'लेम्बार्डी के इतिहास' में प्लीनी, ग्रेगरी एवं बेडे आदि की रचनाओं का उपयोग किया था। नीट हार्ड की प्रमुख कृति 'इतिहास के चार ग्रंथ' थी। इसमें 839 से 843 ई. तक की घटनाओं का विवरण प्राप्त होता है। इनहार्ड की प्रमुख कृति 'शार्लमैन का जीवन' है। चूंकि यह शार्लमैन का एक मित्र एवं अधिकारी था। अतः आंखों देखी घटनाओं के वर्णन के कारण मध्ययुगीन इतिहास की यह एक महत्वपूर्ण कृति है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्य युग में पाश्चात्य इतिहास लेखन का काफी विकास हुआ। ऐतिहासिक रचनाएं धर्म से भले ही प्रभावित रही हों लेकिन अनेकानेक ग्रंथों का सृजन किया गया। कालांतर में इन कृतियों के आधार पर ही आधुनिक पाश्चात्य इतिहासकारों ने मध्ययुगीन इतिहास का सृजन किया।

इसलामी इतिहास दर्शन

विश्व के चार–पांच धर्मों में इसलाम भी विश्व का एक विशिष्ट धर्म है इतिहास लेखन की ईसाई अवधारणा के अनुरूप ही इसलामी अवधारणा में भी ईश्वर (अल्लाह) को सृष्टि का नियता माना गया है। प्राकृतिक जगत को अनिवार्य रूप से ईश्वर द्वारा पूर्व निर्धारित परियोजना का पालन करना है। परंतु मनुष्य को यह स्वतंत्रता है कि वह अल्लाह द्वारा निर्धारित नियमों का पालन अथवा उल्लंघन कर सकता हैं। कुरान के अनुसार जब ईश्वर ने आध्यात्मिक जगत (स्वर्ग) एवं प्राकृतिक जगत को भी स्वतंत्रता का विकल्प दिया तो उन्होंने इसे नहीं चुना, जबकि मनुष्य ने स्वतंत्रता का विकल्प चुन लिया। अतः अब मनुष्य को अपने क्रिया–कलापों को संपन्न करने की स्वयं ही आवश्यकता थी। इसके बाबजूद भी अल्लाह ने मानव के लिए एक सत्मार्ग निर्धारित किया है जिस पर चलकर वह स्वंय का कल्याण कर सकता है और इस पर न चलकर उसे परेशानियां भुगतनी होंगी।

इसलामी अवधारणा के अनुसार चूंकि मनुष्य सृष्टि की विशिष्ट रचना है, अतः ईश्वर समय–समय पर मनुष्य को सत्मार्ग का मार्ग–दर्शन प्रदान करने के निमित अपने पैगम्बर (दूत) भी भेजता है। इस दिशा में आदम प्रथम पैगम्बर था और इसके बाद भी अनेक पैगम्बर आये। पैगम्बर मोजेज ने ईश्वर की एकता के साथ–साथ उसके नियमों की एकात्मकता को भी प्रतिपादित किया। इसके बाद के एक अन्य पैगम्बर जीसस थे परंतु इनके अनुयायियों ने उनके संदेशानुसार आचरण करने के स्थान पर जीसस की ही पूजा आरंभ कर दी। इतना ही नहीं, जीसस की माता का संबंध ईश्वर से स्थापित कर इसलाम धर्म में दोनों को प्रवेश दिया। अतः ईश्वर ने अंतिम बार मानव जाति को सन्मार्ग पर लाने के लिये पैगम्बर के रूप में मुहम्मद साहब को भेजा।

गिरजाशंकर प्रसाद मिश्र ने इस तारतम्य में लिखा है कि ''इस प्रकार इसलाम जो शाश्वत काल से विद्यमान रहा है, 7वीं शताब्दी ई. से इतिहास में प्रविष्ट हुआ है और मानव समाज में अपने वास्तविक एवं अंतिम कार्य संपादन में प्रवृत्त हुआ। इसका संदेश केवल कुरान में ही सुरक्षित हैं इसलामी संवत् का प्रथम वर्ष (हिजरी 1 = 622 ईसवी) मुहम्मद के जन्म का अथवा उनके द्वारा ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति का वर्ष नहीं है, अपितु वह वर्ष है जब मुसलिम समाज को राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त हुआ। मुहम्मद तथा उनके थोड़े से अनुयायियों ने मक्का से मदीना जाकर एक स्वायत्त समाज की स्थापना की और यहीं से इसलाम के इतिहास का आरम्भ होता है।

टिप्पणी

चीनी इतिहास की अवधारणा के समान इसलामी अवधारणा में भी समाज को सर्वोपरि माना गया है। अंतर मात्र यह है कि मुसलिम समुदाय को इसलामी अवधारणा में मात्र एक सामाजिक वर्ग न मानकर एक धार्मिक संस्था माना गया है। इसलामी अवधारणा में राज्य का परमदायित्व मुसलिम समाज की सुरक्षा एवं 'शरीयत' के अनुसार सुचारु जीवन के संचालन का मार्ग प्रशस्त करना है। ईसाई अवधारणा के पादरियों के अनुरूप इसलामी अवधारणा में भी ईश्वरीय नियमों का संप्रेषण धर्मशास्त्रियों के हाथ में माना गया है और इस दृष्टि से मुसलिम समाज में उलेमा वर्ग का महत्वपूर्ण स्थान है।

इसलामी अवधारणा में स्वर्ग एवं नरक की परिकल्पना भी प्रचलित है। अतः मुसलिम जगत में इहलोक के कार्यों के संचालन में पारलौकिक जगत का भी ध्यान रखना होता है। पारलौकिक जगत में कल्याण की आशा वर्तमान के इतिहास में सहभागिता को सुनिश्चित करती है। चीनी परंपरा की भांति ही इसलामी अवधारणा में भी अतीतकालिक ज्ञान को प्रमुखता दी गई है। इसलाम में 'इब्र' शब्द का भावार्थ इतिहास ही है जिसका वास्तविक अर्थ 'शिक्षाप्रद दृष्टांत' है। अतीतकालिक ज्ञान के आधार पर ईश्वरीय परियोजना को आसानी से समझा जा सकता है और तद्नुसार ही वर्तमान के कार्यों को सुचारू ढंग से संचालित किया जा सकता है। इस प्रकार इसलामी अवधारणा में इतिहास के शिक्षात्मक पहलू पर बल दिया गया है और मुसलमानों के लिये इतिहास का ज्ञान अर्थात 'इब्र' को जानना एक आध्यात्मिक प्रशिक्षण माना गया है। कुरान एवं हदीश दोनों में ही इतिहास के प्रसंग में 'इब्र' शब्द का प्रयोग हुआ है।

गिरजाशंकर प्रसाद मिश्रा के अनुसार, ''कुरान तथा हदीश में इतिहास के प्रति इस सम्मानपूर्ण दृष्टिकोण के कारण ही इसलाम की प्रारंभिक पीढ़ियों में अतीतकालिक अध्ययन के प्रति इतनी अधिक रुचि एवं अनुराग दिखाई पड़ता है, वैसे सामान्य रूप से इन इतिहासकारों का प्रमुख उद्देश्य कुरान तथा हदीश के आधार पर इतिहास के औचित्य को प्रतिष्ठित करना है। इस प्रकार इतिहास का स्वरूप एवं अवधारणा कुरान के साथ–साथ पैगम्बर मुहम्मद साहब के कथनों में भी किसी–न– किसी रूप में निहित है। इतिहास के शिक्षात्मक पहलू के तहत इसलाम में इतिहास की धार्मिक, नैतिक एवं व्यावहारिक उपादेयता को स्पष्ट करने की कोशिश की गई है।

कुरान एवं हदीश में निहित इतिहास के अंकुर कालांतर में प्रस्फुटित हुए और पल्लवन के लिए उपयुक्त परिस्थितियां भी विद्यमान थीं। इसलामी इतिहास की परंपरा में यथासंभव साक्ष्यों के आवरण में यथार्थता पर बल दिया गया है। प्रमाणिक विवरणों की खोज, संकलन एवं अनुप्रयोग भी इसलामी इतिहास लेखन की आरंभिक अवस्था में ही इसकी विशेषता बन गई थी। इसलामी इतिहासकार इतिहास लेखन हेतु उपलब्ध स्रोतों की विश्वसनीयता की जांच भी करते थे एवं उन स्रोतों का उल्लेख भी करते थे। इस प्रकार इसलामी इतिहास की अवधारणा आठवीं शताब्दीं शताब्दी में प्रखरता के साथ परिलक्षित हुई। इसी युग को इसलामी जगत में बौद्धिक पुनर्जागरण का युग भी माना जाता है।

अरबी इतिहास लेखन

इसलामी इतिहास लेखन की परंपरा में अरवी एवं फारसी दोनों ही भाषाओं में सृजित इतिहास का विशिष्ट महत्व है। अरवी इतिहास लेखन की प्रारंभिक विषय–वस्तु किवदंतियों एवं पुराण कथाओं से उपलब्ध हुई। इनमें अधिकांश अब्बासी शासनकाल एवं

टिप्पणी

पैगम्बर मुहम्मद साहब के जीवन से संबंध थीं। मुहम्मद इब्न–इशहाक (8 वीं सदी) ने अपनी कृति 'सीरत रसूल अल्ला' में पैगम्बर मुहम्मद साहब की जीवन कथा प्रस्तुत कर धार्मिक परंपराओं पर आधारित प्रथम कृति का सृजन किया। इसी कड़ी में इब्न सादा ने नौवीं शताब्दी के आरंभ में वर्गीकृत जीवन कथाओं से संबंधित एक महत्वपूर्ण कृति का सृजन किया।

मिस्र के अब्दल हकम (876–71 ई.) ने अपनी कृति 'फुतूह मिस्र व अखबारूह' में मिस्र, अफ्रीका व स्पेन में इसलाम की विजय का इतिहास प्रस्तुत किया था। इसी कड़ी में पर्सिया निवासी अहमद इब्न–यहया ने अरबी भाषा में 'फुतूह अब बुल्दन' एवं 'अन्साब–अल' असराफ का सृजन किया। जहां अब्दल हकम ने प्रथम बार समग्र रूप में इसलाम की विजयों की चर्चा की है, वहीं अहमद इब्न, यहया, ने भी प्रथम बार विभिन्न नगरों की विजयों के साथ–साथ विधि संग्रहों को समष्टि रूप में प्रस्तुत किया है।

अरबी इतिहास लेखन के प्रमुख इतिहासकार

अरबी इतिहास लेखन की परंपरा के प्रारंभिक इतिहासकारों के पश्चात तबरी का भी महत्वपूर्ण स्थान था जिसकी विवेचना हम पूर्व में कर चुके हैं। अरबी इतिहास लेखन को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाने का श्रेय मसूदी एवं इब्न खाल्दून को है जिनका विवरण निम्नानुसार है–

1. **अबू अल हसन अली अल मसूदी**– अरबी इतिहास लेखन की परंपरा में मसूदी का उल्लेखनीय योगदान हैं मसूदी को अरबों के हेरोडोटस की संज्ञा प्रदान की गई है। उसने ऐतिहासिक विवरणों में शासन वंशों, राजाओं एवं लोगों को केंद्र में रखकर घटनाओं को प्रस्तुत किया। उसके इतिहास लेखन की एक अन्य विशेषता अतीतकालिक दृष्टांतों का अनुप्रयोग था। तबरी की भांति ही उसने अपने ज्ञान में वृद्धि के उद्देश्य से अन्य देशों की यात्राएं भी कीं। उसने भारतीय, पारसी, रोम एवं यहूदी इतिहास का भी अध्ययन किया। 956 ई. में अपनी मृत्यु से पूर्व उसने 'अल–तनवीहब–अल–इशराफ' नामक ग्रंथ में अपने इतिहास दर्शन तथा प्राकृतिक जगत के विषय में अपने विचारों को प्रस्तुत किया था। वैज्ञानिक दृष्टि के आलोक में उसने लिखा था कि ''जहां आजकल सूखा है, वहां पूर्व में समुद्र था और जहां आजकल समुद्र है, वह स्थल पूर्व में सूखा था और इसके लिए भौतिक शक्तियां उत्तरदायी थीं।
2. **इब्न खाल्दून**– इब्न खाल्दून का जन्म 1322 ई. में ट्यूनिस में हुआ था। उन्होंने कुरान तथा अन्य इसलामी परंपराओं के साथ–साथ रहस्यवाद के विशिष्ट तत्वों एवं धार्मिक विधि संग्रहों का अध्ययन भी किया था। उनकी ऐतिहासिक दृष्टि को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने में उनके तर्कशास्त्र, गणित, प्राकृतिक दर्शन, अध्यात्मशास्त्र के अध्ययन की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने मुसलिम अधिकृत स्पेन एवं मिस्र की तद्युगीन राजनीतिक गतिविधियों में भी भाग लिया था। अतः उन्हें इसलाम के प्रभुत्व के तहत् अपने वाले देशों की राजनीति का भी ज्ञान था। अतः राजकीय सेवा में रहते हुए उन्होंने प्रशासन के व्यावहारिक कार्य व्यापार का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। इन्हीं सब कारणों ने इब्न खाल्दून की ऐतिहासिक दृष्टि को प्रखरता प्रदान की। वस्तुतः इब्न खाल्दून ने इसलामी इतिहास की अवधारणा को एक नवीन आयाम दिया। गातिए ने उनके युग को 'इतिहास का सहारा'

टिप्पणी

कहकर विभूषित किया है। इस प्रकार इतिहास को एक नवीन दिशा प्रदान करने में इब्न खाल्दून की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। वे ऐतिहासिक तथ्यों तथा उनके पारस्परिक संबंधों की विवेचना करने वाले प्रथम इतिहासकार माने जाते हैं। इब्न खाल्दून के अनुसार इतिहास मानव समाज, विश्व संस्कृति, सामाजिक परिवर्तनों, संघर्षों, क्रांति तथा विद्रोह के परिणामस्वरूप राष्ट्रों के उत्थान–पतन का वृत्तांत हैं। इब्न खाल्दून ने परिवर्तन प्रक्रिया में इसलामी समाज के बदलते स्वरूप को समझा एवं साथ ही तेजी से घटती घटनाओं के स्वरूप एवं महत्व को भी समझा। इस तारतम्य में जार्ज सार्टन ने उचित ही कहा है कि इब्न खाल्दून न केवल मध्य युग अपितु सार्वकालिक इतिहास सिद्धांत के महान प्रतिपादक तथा मानवीय अनुभव के महान दार्शनिक थे।

इब्न खाल्दून ने अपनी कृतियों के शीर्षक के लिए इतिहास के लिए सामान्यतया प्रचलित शब्द 'तारीख' का प्रयोग न कर 'इबर' शब्द का प्रयोग किया है। उसकी सर्वप्रमुख कृति 'किताब अल–टूबर' है। उसने अपने कृतित्व में सार्वभौमिक इतिहास की संपूर्ण परिधि को सन्निविष्ट करते हुए इसलामी विश्व एवं इसलामी प्रभुत्व के पश्चिमी क्षेत्र के पतन का ऐसा विवरण प्रस्तुत किया है जैसा कि उसने स्वयं अनुभव किया था। इब्न खाल्दून द्वारा इतिहास के लिए इबर शब्द के प्रयोग के पीछे निहित प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए गिरजाशंकर प्रसाद ने लिखा है कि ''इब्न खाल्दून का प्रमुख प्रयोजन केवल इतिहास लिखना नहीं था अपितु इसके परे जाना भी था। वह इतिहास से सीखना चाहता था और इस कारण ऐतिहासिक घटनाओं के स्वरूप तथा कारणों का सम्यक विश्लेषण, तुलना द्वारा उनमें निहित रहस्यों को समझना उसका प्रमुख प्रयोजन था। इतिहास अध्ययन को इस रूप में लेने पर बाह्य घटनाएं उसके शोध का प्रमुख लक्ष्य नहीं थीं। वे केवल वह वस्तु सामग्री प्रदान करती थी, जिनसे उसके पीछे स्थित नियमों को व्युत्पन्न करना था। ये नियम उन घटनाओं के स्वरूप तथा कारणों को प्रदर्शित करते हुए उनकी व्याख्या प्रदान करते हैं। इस प्रकार इब्न खाल्दून द्वारा 'इबर' शब्द का प्रयोग विवेक (नजर) तथा बोध (फह्म) के पर्याय के रूप में हुआ है।

अरबी इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताएं

अरबी इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताएं निम्नानुसार हैं–

1. **मुहम्मद साहब की जीवन गाथाओं का वर्णन**–प्रारंभिक अरबी इतिहास लेखन की प्रमुख विषय वस्तु हजरत मुहम्मद साहब की जीवन गाथाएं हैं। सर्वप्रथम मुहम्मद इब्न इशहाक ने 'सीरत रसूल अल्लाह' की रचना की। इसमें हजरत पैगम्बर मोहम्मद साहब के जीवन चरित्र का वर्णन किया गया है। इनके अलावा भी अनेक अरब लेखकों ने मोहम्मद साहब के साथ–साथ उनके साथियों की जीवनी भी लिखी।
2. **इसलामी विजय यात्रा का वर्णन**–इसलाम के प्रचार प्रसार हेतु युद्ध एवं विजय गाथाओं का विवरण भी आरंभिक अरबी इतिहासकारों का प्रिय विषय था। पैगम्बर साहब के पश्चात खलीफाओं के शासन काल में भी इसलाम का प्रसार एशिया एवं अफ्रीका के विभिन्न क्षेत्रों में हुआ। इनका विवरण भी अरब इतिहास लेखन की विशेषता थी।

टिप्पणी

3. **इसलाम की परंपराओं का विस्तार**–अरबी इतिहास लेखन की एक और विशेषता इसलाम की मानक परंपराओं को पीढ़ी दर पीढ़ी लोगों तक पहुंचाना एवं पैंगम्बर के साथ उनका संबंध स्थापित करना था।

4. **इतिहास लेखन की जनतांत्रिक परंपरा**–अरबों में कबिलाई. संस्कृति, समानता एवं बंधुत्व की पृष्ठभूमि पर इसलाम का आविर्भाव हुआ था। इनकी व्यवस्था जनतांत्रिक थी। अरबी इतिहासकार अपने तथा अपने परिवेश के जनतांत्रिक आधार को साथ लेकर इतिहास का सृजन करते थे। जनसामान्य की घटनाओं को भी स्थान दिया गया।

5. **तिथि क्रम का महत्व**–अरबी इतिहास लेखन की एक अन्य विशेषता तिथि क्रम पर ध्यान देना था। आदम से लेकर पैगम्बर हजरत मोहम्मद साहब एवं वाद में इसलाम के प्रसार के इतिहास लेखन में तिथि क्रम को विशेष महत्व दिया गया। अधिकांश घटनाओं का माह तथा दिन के अनुसार तथ्यपरक विवरण दिया गया है।

6. **वंशपरंपरा पर आधारित इतिहास लेखन**–अरब इतिहास लेखन की एक अन्य विशेषता वंश परंपरा पर विशेष ध्यान देना है। इनमें 'लगान' व्यक्तियों से नहीं जातियों से वसूल किया जाता है। खम्स का बटवारा भी वंशावलियों के आधार पर होता था। कुरान में कहा गया है–''अपनी वंशावली को याद रखो ऐसा न हो कि काबुल के जातियों की भांति आत्म विस्मृत हो जाओ।' वंशगत इतिहास ने इसलामी जगत में इतिहास के प्रति चेतना वृद्धि की।

फारसी इतिहास लेखन एवं प्रमुख इतिहासकार

फारसी इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषता थी पुराणकथाओं, परंपराओं, जीवन गाथाओं एवं वंशावलियों पर आधारित विशुद्ध इतिहास का लेखन। फारसी भाषा में प्रचलित विशुद्ध इतिहास लेखन की अवधारणा से अरब इतिहासकारों ने भी प्रेरणा ली और कुछ मूल फारसी ग्रंथों का अरबी भाषा में अनुवाद भी किया गया। इब्न अल मुकफ्फा ने फारसी भाषा में लिखित कृति 'खुदायनामा' (राजाओं का वृतांत) का (757 ई.) 'सियर मुलूक अल आजम' नाम से अरबी भाषा में अनुवाद किया।

फारसी दृष्टिकोण से लिखा गया सार्वभौमिक इतिहास अबू हनीफ अहमद इब्न दाउद अल दीनावरी (895 ई.) की कृति 'अल अखबार अल तिवाल' (लंबे वृतान्त) में परिलक्षित होता है। इन्हीं की तरह सार्वभौमिक इतिहास के सृजन में इब्नवादी अल यकूबी का नाम भी विशेष रूप में उल्लेखनीय है। इनके इतिहास में 872 ई. तक का इतिहास दिया गया है जिसमें प्राचीन शिया परंपराओं को सुरक्षित रखा गया है। इसी क्रम में मिसकवाय ने अपनी कृति 'तजारीब अल–उमम' में 980 ई. तक का सार्वभौमिक इतिहास प्रस्तुत किया है। फारसी एवं अरबी दोनों ही इतिहासकारों ने घटनाओं को तिथिक्रमानुसार व्यवस्थित करने के प्रयास किये हैं। फारसी के पहाड़ी जिले तबरिस्तान में जन्मे मुहम्मद इब्न–जरीर अल–तबरी (838–922 ई.) ने अपनी सर्वप्रमुख कृति 'तारीख–अल–रसूल व अलमुलूक' (पैगम्बर तथा राजाओं का इतिहास) में विस्तृत इतिहास की घटनाओं को तिथिक्रम के आधार पर व्यवस्थित किया है। उसके इतिहास में सृष्टि की रचना से 905 ई. तक का विवरण मिलता है। उसने अनेक देशों की यात्राएं की थीं एवं वह प्रतिदिन लगभग चालीस पृष्ठ लिखता था। उसने कुरान की टीकाएं भी

लिखी थीं जिन्हें उसके अनुवर्ती टीकाकारों ने प्रतिमान के रूप में स्वीकार किया। उसके द्वारा सृजित सार्वभौमिक इतिहास को भी कई इतिहासकारों ने आधार ग्रंथ के रूप में उपयोग किया।

टिप्पणी

फारसी इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताएं

अरबी इतिहास लेखन की भांति फारसी इतिहास लेखन का संबंध भी इसलामी परंपराओं से था। फारसी इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित थी–

1. **विशुद्ध इतिहास लेखन**–फारसी इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषता प्राचीन कथाओं, परंपराओं, जीवन गाथाओं एवं वंशावलियों पर आधारित विशुद्ध इतिहास लेखन थी।
2. **तिथि क्रम के अनुसार इतिहास लेखन**–ईसाई एवं अरबी इतिहास लेखन की भांति फारसी इतिहास लेखन में भी तिथि क्रम पर विशेष ध्यान दिया गया।
3. **अभिजातीय इतिहास लेखन**–फारसी इतिहास लेखन में अभिजात वर्ग के इतिहास लेखन की प्रमुखता थी। फारसी इतिहासकारों ने शासकों, शाही दरबार एवं कुलीन वर्ग को अपने इतिहास लेखन की प्रमुख विषयवस्तु बनाया।
4. **धर्म प्रभावित**–फारसी इतिहास लेखन में धर्म की प्रधानता स्पष्टतः देखी जा सकती हैं। धर्म प्रभावित इतिहास होने के कारण इसमें निष्पक्षता का अभाव है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन कला के आरंभ की पृष्ठभूमि

मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन कला की पृष्ठभूमि का निर्माण इसलाम धर्म के उदय के साथ अरब प्रायद्वीप में हुआ। इसलाम में इब्र शब्द का भावार्थ इतिहास ही है। इब्र शब्द का वास्तविक अर्थ 'शिक्षाप्रद दृष्टांत' है। इसलाम धर्म ग्रंथों कुरान तथा हदीस दोनों में ही इतिहास के प्रसंग में 'इब्र' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसलामी इतिहास लेखन में यथासंभव साक्ष्यों की सहायता लेकर यथार्थता की प्रस्तुति पर बल दिया गया है। पैगम्बर हजरत मोहम्मद साहब के समय (622–632 ई.) से ही प्रारंभिक इसलामी इतिहास अरबी भाषा में लिखा गया। इसके पश्चात यह फारसी एवं तुर्की भाषा में भी लिखा गया।

इसलामी इतिहास या यूं कहें कि अरबी इतिहास लेखन की आरंभिक विषयवस्तु किवदन्तियां एवं पुराण कथाओं से ही ली गई। इसलामी शब्दावली में 'आदम' को पहला पैगम्बर माना गया है। अल्लाह ने अंतिम बार मोहम्मद साहब को पैगम्बर के रूप में भेजा। इसलाम के अनुसार मोहम्मद साहब अल्लाह के संदेश वाहक के साथ उसके व्याख्याकार भी थे। मुहम्मद इब्न इशहाक ने (8वीं सदी) अपनी कृति 'सीरत रसूल अल्लाह' में पैगम्बर मोहम्मद साहब के जीवन की कथा प्रस्तुत की है। धार्मिक परंपराओं पर आधारित यह प्रथम कृति थी। इसलामी इतिहास लेखन में धर्म की प्रमुखता स्पष्टतः देखी जा सकती है। फारसी इतिहास लेखन की सर्वप्रमुख विशेषता थी पुराण कथाओं, परंपराओं, जीवन गाथाओं एवं वंशावलियों पर आधारित विशुद्ध इतिहास लेखन। इब्न अल मुकफ्फा ने फारसी भाषा में 757 ई. में 'खुदायनामा' (राजाओं का वृतांत) लिखा। फारसी इतिहास लेखन की अवधारणा से अरब इतिहासकारों ने भी प्रेरणा ली।

अरब प्रायद्वीप से इसलाम, इसलामी लेखन कला के साथ ही बाहर निकला। इसलाम ने जहां अपना राजनीतिक एवं धार्मिक प्रभुत्व स्थापित किया इन क्षेत्रों में

इसलामी लेखन कला की परंपराएं भी पहुंची। भारत में भी इसलाम के साथ यह इतिहास लेखन की परंपरा पहुंच गयी।

टिप्पणी

712 ई. में अरबों द्वारा सिंध पर विजय के साथ ही भारत में सिन्ध की घटनाओं से जुड़ा इतिहास मिलने लगता है। सर्वप्रथम सिन्ध का विवरण 'फतहनामा' नामक कृति में मिलता है। अरबी इतिहासकार बालाजुरी (मृत्यु 892 ई.) की कृति 'फतुह–अलबुल्दान' से भी हमें अरबों द्वारा सिंध विजय के विवरण प्राप्त होते हैं। अरबों के बाद 100 ई. में तुर्कों ने भारत पर आक्रमण किये। प्रथम तुर्क आक्रमणकारी महमूद गजनबी (998–1030 ई.) के साथ प्रख्यात लेखक अलबरूनी (973–1048 ई.) भी भारत आया। अलबरूनी कृत तहकीक–ए–हिन्द में भारत की भौगोलिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का सागोपांग एवं तथ्यपरक विवरण प्राप्त होता है। अलबरूनी के पश्चात मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन की एक वृहत परंपरा दिखाई. देती है। 1206 ई. में दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई एवं 1526 ई. में भारत में मुगल साम्राज्य स्थापित हुआ। इस समस्त घटनाक्रम का तथ्यपरक विवेचन हमें मध्ययुगीन इतिहासकारों द्वारा मिलता है। मिनहाज उस सिराज, जियाउद्दीन बरनी, अबुल फजल एवं खाफी खां इत्यादि ने भारत में मध्यकालीन इतिहास लेखन कला के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन कला का विकास

दिल्ली सल्तनत एवं मुगलकाल दोनों में ही पर्याप्त से अधिक इतिहास लेखन सम्पन्न हुआ। मध्यकालीन इतिहास लेखन के विकास में सुल्तानवर्ग की भी अहम भूमिका थी। कुछ सुल्तानों ने तो अपनी आत्मकथा भी लिखी। कुछ सुल्तानों की आत्मकथा उनके इतिहासकारों ने पूर्ण की। मध्यकाल में कुछ इतिहासकार दरबारी इतिहासकार थे तो कुछ इतिहासकारों ने दरबारों से दूर रहकर भी इतिहास लेखन का महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया। मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन कला का अत्यधिक विकास हुआ। मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन को दर्शाने के लिये हम यहां दिल्ली सल्तनत एवं मुगल काल के कुछ प्रमुख इतिहासकारों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं–

1. **हसन निजामी**–हसन निजामी कुतुबुद्दीन ऐबक (1206–1210 ई.) के आश्रय में रहा। उसकी कृति 'ताजुल मासिर' में मुख्यतः कुतुबुद्दीन ऐबक का इतिहास मिलता है। इसमें मुहम्मद गौरी एवं उसके उत्तराधिकारी का भी इतिहास मिलता है। इसमें 1191 ई. से 1228 ई. तक के भारतीय इतिहास की जानकारी मिलती है। हसन निजामी ने तराइन के द्वितीय युद्ध में गौरी की विजय, कुतुबुद्दीन ऐबक के दिल्ली में सत्ता संभालना एवं उसकी चौगान खेलते समय मृत्यु इत्यादि का विवरण प्रस्तुत किया है। इसके आगे का इतिहास हमें मिनहाज उस सिराज की तबकाते नासिरी में मिलता है।
2. **मिनहाज–उस–सिराज**–मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन के प्रथम महत्वपूर्ण इतिहासकार मिनहाज–उस–सिराज का जन्म 1193 ई. में हुआ था। 9 फरवरी 1228 को वे दिल्ली सल्तनत के सुल्तान इल्तुतमिश (1210–1236 ई.) की सेवा में आये। सुल्तान नसीरूद्दीन महमूद (1246–1265 ई.) के समय मिनहाज के भाग्य का सितारा बुलंदी पर पहुंचा। 31 जुलाई, 1251 ई. को वे काजिये ममालिक बनाये गये। सुल्तान 'नसीरूद्दीन महमूद' को समर्पित करते हुए मिनहाज ने

टिप्पणी

अपनी सर्वप्रमुख ऐतिहासिक कृति 'तबकाते नासिरी' को फारसी भाषा में लिखा। उनकी यह कृति 23 तबकातों (अध्यायों) में विभक्त है। इसमें इसलाम के उत्थान, खलीफाओं के शासन, इरान के शासकों, भारत में तुर्क शासन के आरंभ, गजनी एवं गौर वंश का इतिहास, मंगोल आक्रमण एवं गुलाम वंश के शासकों में नसीरूद्दीन महमूद के 14वें वर्ष (1260 ई.) तक के शासन का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार इसमें दिल्ली सल्तनत के इतिहास का कालक्रमानुसार क्रमबद्ध विवरण प्राप्त होता है। मिनहाज चूंकि सत्तारूढ़ वर्ग का विशिष्ट अंग थे अतः उन्होंने आम जनता की तुलना में राजाओं एवं अमीरों के बारे में ही अधिक लिखा है। जियाउद्दीन बरनी जैसे परवर्ती इतिहासकार ने उनकी कृति को एक विश्वसनीय ग्रंथ मानते हुए, अपनी रचनाओं में उसका उपयोग किया है।

3. **जियाउद्दीन बरनी (1285–1359 ई.)**–बरनी ने अपनी सर्वप्रमुख कृति 'तारीखे फिरोजशाही' में तबकाते नासिरी के आगे का – बलबन के सिंहासनारोहण (1265 ई.) से लेकर फिरोज तुगलक के छठे वर्ष (1357 ई.) तक का इतिहास लिखा है। इसमें दिल्ली के 8 शासकों का इतिहास मिलता है। अपनी इस कृति की भूमिका में बरनी ने इतिहास की विशेषता, इतिहास की उपयोगिता, इतिहास लेखन एवं इतिहास लेखन में सत्य के महत्व पर विस्तारपूर्वक लिखा है।

4. **ख्वाजा अब्दुल मलिक इसामी**–इसामी ने प्रथम बहमनी सम्राट बहमान शाह के संरक्षण में रहकर अपनी कृति 'फुतुह–उस–सलातीन' की रचना की थी। सुल्तान मुहम्मद तुगलक द्वारा राजधानी परिवर्तन के कारण इसामी व उसके परिवार को अत्यधिक कष्ट उठाने पड़े थे, उसके दादा (90 वर्ष) की इसी दौरान मृत्यु तक हो गई थी। अतः उसने अपनी कृति में मुहम्मद तुगलक की आलोचना की है। इसके बावजूद उसकी कृति एक प्रमाणिक कृति है जिसमें महमूद गजनबी से लेकर 1351 ई. तक का इतिहास मिलता है। बदायूंनी एवं फरिश्ता ने अपने इतिहास में उसकी कृति का उपयोग किया है।

5. **याहिया बिन अहमद**–इनकी कृति 'तारीखे मुबारक शाही' में मुहम्मद गौरी से सैयद वंश (1434 ई.) तक का इतिहास मिलता है। सैयद वंश का इतिहास जानने का यह एक मात्र प्रमाणिक स्रोत है।

6. **अहमद यादगार**–इनकी कृति 'तारीख–ए–सलातीनी अफगना' में बहलोल लोदी (1451 ई.) से हेमू की मृत्यु (1556 ई.) तक का इतिहास मिलता है।

7. **बाबर (1483–1530 ई.)**–मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर ने अपनी आत्मकथा 'बाबरनामा' जिसे 'तुजके बाबरी' भी कहा जाता है, का सृजन किया। उसने सत्य लेखन पर जोर दिया है, एवं अपनी कमजोरियों को भी स्पष्टतः स्वीकार किया है।

8. **अबुल फजल (1551–1602 ई.)**–अबुल फजल मुगल सम्राट अकबर के दरबार का शाही इतिहासकार था। अकबर के कहने पर उसने 'अकबरनामा' का सृजन किया। यह तीन खंडों में विभाजित है। प्रथम खंड में तैमूर से लेकर हुमायूं तक का इतिहास है। द्वितीय खंड में अकबर के राज्य काल (1556–1604 ई.) का इतिहास है। तृतीय खंड 'आइने अकबरी' है, जिसे अकबर कालीन गजेटियर कहा जा सकता है।

9. **अब्दुल कादिर बदायूंनी**–अकबरनामा में अबुल फजल ने अकबर की जितनी प्रशंसा की है, बदायूंनी ने अपनी कृति 'मुन्तखब–उत–तबारीख' में अकबर की

उतनी ही आलोचना की है। यह भी तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में सुबुक्तगीन से हुमायूं तक का इतिहास मिलता है। द्वितीय भाग में अकबर कालीन इतिहास मिलता है। तृतीय खंड में सूफीयों, शायरों एवं विद्वानों की जीवनियां दी गई हैं।

टिप्पणी

10. **जहांगीर (1569 ई. – 1627 ई.)**–बाबर की तरह जहांगीर ने भी अपनी आत्मकथा 'तुजके जहांगीरी' लिखी थी। इसमें जहांगीर के 16वे साल तक की घटनाओं का उल्लेख है। इससे आगे 16वे से 29वे साल तक विवरण तुजके जहांगीरी में मौतमिद खां ने लिखा है। इसके पश्चात का विवरण उन्होंने अपनी कृति 'इकबालनामा–ए–जहांगीरी' में दिया है।
11. **अब्दुल हमीद लाहौरी**–इनकी कृति 'पादशाहनामा' में शाहजहां कालीन इतिहास मिलता है।
12. **खाफी खां**–इनकी कृति 'मुन्तखब–उल–लुवाब' में औरंगजेब कालीन विवरण प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन कला की परंपरा अत्यंत समृद्ध थी। अधिकांश इतिहास अरबी एवं फारसी भाषा में लिखा गया। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि इसलामी इतिहास लेखन कला को भारत में एक पुष्ट आधार प्राप्त हुआ है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन कला की विशेषताएं

मध्यकालीन इतिहास लेखन कला में ऐसी कई विशेषताएं थीं जो इसे प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन कला से पृथक करती हैं, ये निम्नानुसार हैं–

1. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के साहित्यिक स्रोतों की तुलना में मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन हेतु समकालीन साहित्यिक स्रोत प्रचुरता के साथ उपलब्ध हैं। इससे मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन कला अत्यधिक समृद्ध हुई।
2. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की तुलना में मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन से संबद्ध इतिहासकारों ने राजनीतिक घटनाओं का तथ्यपरक, विस्तृत एवं क्रमबद्ध विवरण देने का प्रयास किया है।
3. इतिहासकारों ने अपना इतिहास वहां से लिखने का प्रयास किया है जहां पूर्ववर्ती इतिहासकार ने अपना विवरण समाप्त किया है। साथ ही परवर्ती इतिहासकारों ने पूर्ववर्ती इतिहासकारों के कृतित्व की मदद भी ली है।
4. मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन धर्म से प्रभावित था। चूंकि तद्युगीन इतिहासकारों की परवरिश एवं शिक्षा–दीक्षा धार्मिक माहौल एवं मदरसों में होती थी अतः इतिहासकारों ने अपने लेखन में धार्मिक शब्दावली का प्रयोग किया। अतः उनके लेखन को धार्मिक कट्टरता का रंग देना उचित नहीं है।
5. मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह थी कि शासक वर्ग ने न केवल इतिहासकारों को इतिहास लेखन हेतु प्रोत्साहित लिया अपितु बाबर व जहांगीर आदि ने तो स्वयं अपनी आत्मकथा लिखकर मध्ययुगीन इतिहास लेखन कला के विकास में अहम भूमिका निभाई।

6. बगदाद में 794–95 ई. के आसपास कागज का निर्माण आरंभ हो गया था, बाद में कागज की गुणवत्ता में सुधार हुआ। इससे भी मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन कला के विकास को बढ़ावा मिला।

टिप्पणी

7. मध्यकाल में हमें इतिहास लेखन की तीन परंपरायें परिलक्षित होती हैं। एक परंपरा दरबारी इतिहासकारों की थी जो प्रशंसापरक लेखन में संलग्न थे। दूसरी परंपरा बदायूंनी जैसे गैर दरबारी इतिहासकारों की थी जो शासक वर्ग के कटु आलोचक थे। तीसरी परंपरा निजामुद्दीन अहमद जैसे तटस्थ लेखकों की थी जिन्होंने निष्पक्ष रहकर मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए तटस्थ इतिहास लिखा। इन तीनों परंपराओं का वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अध्ययन कर हम वास्तविकता की तह तक पहुंच सकते हैं।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन की समस्याएं

मध्यकालीन भारतीय इतिहासकार अधिकांशतः किसी न किसी राज–दरबार से संबद्ध थे और सुल्तानों तथा राजाओं के संरक्षण में उन्होंने इतिहास का सृजन किया। जियाउद्दीन बरनी ने अपनी कृति 'तारीखे फिरोजशाही' की भूमिका में इतिहास की उपयोगिता एवं इतिहास लेखन में सत्य के महत्व पर विस्तार से लिखा है। इस तारतम्य में प्रो. मोहीवल हसन का मत है कि मध्यकालीन इतिहासकारों ने इतिहास लेखन में मेहनत एवं ईमानदारी का परिचय दिया, इतिहास के विषय में उनके ऊंचे एवं आदर्श विचार थे। वे बरनी का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि बरनी इतिहास को इल्मुल हदीस के समकक्ष मानता था। बरनी का मानना था कि एक इतिहासकार को सत्य के प्रति निष्ठा रखना आवश्यक है। इतिहासकार को अतिशयोक्ति द्वेष व असत्य से ऊपर उठकर लिखना चाहिए। अनायास प्रशंसा या तथ्यों के अनावश्यक रूप से दबाने, घटाने या बढ़ाने का प्रयास कदापि नहीं करना चाहिए, परंतु बरनी द्वारा निर्धारित इतिहासकार के तमाम आदर्श मानदंडों पर मध्यकालीन इतिहासकारों ने कभी भी खरा उतरने की कोशिश नहीं की और उस परिप्रेक्ष्य में मध्यकालीन इतिहास लेखन में निम्न समस्यायें दृष्टिगोचर होती है।

सुल्तानों की इच्छानुसार एवं प्रशंसापरक इतिहास लेखन

मध्यकालीन भारत के अधिकांश इतिहासकारों ने सुल्तानों तथा राजाओं के संरक्षण में रहकर इतिहास लिखा। अतः स्वाभाविक ही है कि ये इतिहासकार जो वास्तविक सत्य को देखते, समझते एवं अनुभव करते थे उससे पृथक उन्होंने वह लिखा जो उनके संरक्षकों को रुचिकर था। आर.पी. त्रिपाठी के अनुसार अधिकांश मध्यकालीन इतिहासकारों ने या तो संरक्षकों से डरकर इतिहास लिखा या उनका कृपापात्र बनने के लिए उनका गुणगान किया। 'तबकाते नासिरी' के लेखक मिनहाज–उस–सिराज जो बलबन के काफी नजदीक थे, वे काजी–उल–कुजात एवं सद्र–ए–जहां के पद पर भी आसीन रह चुके थे, राजनीतिक सत्ता को स्थायित्व प्रदान करना उनके लेखन का प्रमुख उद्देश्य था।

अबुल फजल जो कि अकबर के नवरत्नों में से एक था, अकबर का विशेष कृपापात्र था। उसका अकबरनामा लिखने का प्रमुख उद्देश्य हरिश्चन्द्र वर्मा के अनुसार "अकबर के जीवन के रूहानी पहलू को उजागर करना था। अकबर की सुलह कुल की नीति को लोगों तक पहुंचाना और बादशाह के व्यक्तित्व की महानता को मनवा देना

इस कृति के उद्देश्यों में शामिल है। अबुल फजल का विचार था कि बादशाह खुदा की देन है। अकबर, अबुल फजल की नजर में एक बादशाह से कहीं अधिक महान था। उसने इसे इंसान–ए–कामिल माना जिससे कोई गलती नहीं हो सकती और जिसके सामने एक मिशन था।"

टिप्पणी

मुल्ला अब्दुल कादिर बदायुनी ने अपनी कृति 'मुन्तख्वाव उत तवारीख' में सिर्फ अकबर की मुखालिफत ही नहीं की है, अपितु उसके हर उस कृत्य की आलोचना की है जिससे गैर–मुसलिमों की सरपरस्ती झलकती है। परंतु यह तवारीख बदायूंनी ने चुपचाप लिखी क्योंकि इसकी भनक यदि अकबर को लग जाती तो उनकी खैर नहीं थी। यह कृति जहांगीर के काल में प्रकाश में आई। इससे स्पष्ट होता है कि दरबारी इतिहासकार वही लिखते थे जो उनके सुल्तानों को पसंद हो।

राजनीतिक एवं कुलीन वर्गीय इतिहास लेखन

मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन में इतिहासकारों ने राजनीतिक इतिहास पर विशेष बल दिया है एवं उनका इतिहास लेखन मात्र उच्च वर्ग तक ही सीमित है। चूंकि मध्यकालीन अधिकांश इतिहासकारों को राजदरबार में आश्रय प्राप्त था अतः ये उच्चवर्गीय लोगों के ही संपर्क में रहे और उन्होंने अपने इतिहास लेखन में शासक एवं उच्च वर्ग को ही विशेष महत्व दिया। सामान्य लोगों के जीवन एवं उनकी दशा की अपने लेखन में उपेक्षा की।

पूर्वाग्रह से युक्त इतिहास लेखन

पूर्वाग्रह से युक्त इतिहास लेखन भी मध्यकालीन इतिहास लेखन की प्रमुख समस्या दृष्टिगोचर होती है। मध्यकालीन भारतीय इतिहासकारों के कुछ अपने पूर्वाग्रह थे और उनसे प्रेरित होकर ही उन्होंने इतिहास का सृजन किया। इतिहासकारों पर अपने निजी द्वेषभाव एवं व्यक्तिगत मान्यताओं का भी प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। बरनी अपनी कृति की भूमिका में भले ही राग–द्वेष से ऊपर उठकर इतिहास लिखने की बात करता हो परंतु उसके अपने पूर्वाग्रह बड़े ही प्रबल थे। डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा इस तारतम्य में लिखते हैं कि "उच्च वंश की महत्ता के प्रति बरनी का मोह यह संकेत करता है कि वे इस तत्व से कितने चिन्तित थे कि लोग उच्च तुर्क वंश से संबद्ध न होते हुए भी सफलता हासिल कर लेते हैं। उनकी नजर में निम्न कुल में जन्में लोगों का कोई वजूद नहीं था। वे यह मानते थे कि नीच खानदान में जन्म लेने वालों को सरकारी सेवाओं में नहीं रखना चाहिए। उन्होंने मुहम्मद तुगलक की कटु आलोचना की क्योंकि उसने निम्न कुल के तथा शुद्धीकरण द्वारा मुसलमान बनने वाले लोगों को ऊंचे–ऊंचे पद दिये थे। उन्होंने मुहम्मद तुगलक को बिगाड़ने के लिए दार्शनिकों तथा बुद्धिजीवियों को दोषी ठहराया। भविष्य में होने वाले राजाओं को बरनी की सलाह है कि दार्शनिकों तथा बुद्धिजीवियों का दमन करें क्योंकि वे मुसलिम धर्म के विरोधी है।"

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अधिकांश मुसलिम इतिहासकारों में बरनी, बदायुंनी, आदि के पूर्वाग्रहों से स्पष्ट हो जाता है कि मुसलिम इतिहासकारों में हिंदुओं के प्रति द्वेष रूपी भावना विद्यमान थी।

सांप्रदायिकता और मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन

मध्यकालीन इतिहास लेखन में सांप्रदायिकता एक विचित्र समस्या है, जो आधुनिक काल में साम्राज्यवादी तथा पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा उठायी गई। उन्होंने निहित

स्वार्थवश मध्यकालीन मुसलिम इतिहासकारों को सांप्रदायिक करार दिया है। यह सच है कि मध्यकाल के अधिकांश इतिहासकारों के मन में हिंदुओं के प्रति विद्वेष था मगर उतना नहीं था जितना साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने उजागर किया है।

टिप्पणी

भारत में तुर्क शासन की स्थापना हिंदुओं के व्यापक पैमाने पर कत्लेआम द्वारा नहीं हुई। तुर्कों ने भारतीय शासकों को परास्त करने के उपरांत निचले स्तर के पुराने हिंदू शासक वर्ग – राजाओं, राणाओं, जमीदारों, चौधरियों आदि के साथ समझौता कर अपनी स्थिति सुदृढ़ की थी। प्रशासन का निचला सोपान पूर्णतः हिंदुओं के हाथ में रहा। तुर्कों को अपना साम्राज्य कायम करने में हिंदुओं ने यथा संभव मदद की। वस्तुतः उनके समर्थन के बिना तुर्क भारत में अल्प समय से अधिक टिक नहीं सकते थे। अतः तुर्कों को अपनी यथा स्थिति के लिए मुख्य खतरा उन हिंदू राजाओं, राणाओं, रायों आदि से था जो वृहत्तर शासक वर्ग का एक हिस्सा थे। इसलिये जब समकालीन इतिहासकार बरनी आदि हिंदुओं का सफाया कर दिये जाने की वकालत करते हैं तो वे वास्तव में हिंदू समुदाय के मात्र इसी तबके का सफाया चाहते हैं न कि समूचे हिंदू समुदाय का, जिसमें वह किसान तबका भी शामिल है जिसके दिये करों से उन समकालीन इतिहासकारों और शासक वर्ग का विलासमय जीवन चलता था। अतः समकालीन इतिहासकारों द्वारा प्रयुक्त 'हिंदू' शब्द का आशय हिंदू समुदाय के एक तबके मात्र से है जो राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से उन दिनों महत्वपूर्ण था। अतः बरनी का हिंदुओं के सफाये का जिक्र राजनीतिक था न कि धार्मिक जिसे साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने धार्मिक रंग देने की कोशिश की है। मध्यकालीन मुसलिम इतिहासकार एवं शासकों पर सांप्रदायिकता का आरोप लगाने को हरवंश मुखिया ने सर्वथा अनुचित माना है। इस तारतम्य में उन्होंने लिखा है कि आधुनिक इतिहासकारों ने, और जब–तब उन इतिहासकारों ने जो भी अपने दृष्टिकोण में जागरूकता के साथ धर्म निरपेक्ष रहे हैं यह समझा कि समकालीन इतिहासकारों द्वारा प्रयुक्त शब्दावली समूचे समाज के लिए लागू होती है। फलतः शासक वर्ग के बीच संघर्षों को सामाजिक स्तर का संघर्ष समझा गया। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की ही मिसाल लीजिये। उसने बगावती हिंदू जमींदारों को ही कुचलने के लिए नहीं बल्कि मुसलिम इक्तादारों को भी कुचलने के लिए कुछ बड़े कदम उठाये और इन इक्तादारों में ऐसे नितांत धार्मिक लोग भी शामिल थे जिन्हें बगावत से कुछ लेना–देना नहीं था। बरनी जो कि समकालीन इतिहासकार थे उनका रोना यह है कि अलाउद्दीन खिलजी ऐसा सुल्तान था जिसे शरीयत की जरा भी परवाह नहीं रहती थी चाहे वह राज्य के मामले में लिया जाय या उसकी निजी जिंदगी के मामले में।

हरवंश मुखिया मध्यकालीन भारतीय इतिहास एवं तद्युगीन इतिहासकारों पर सांप्रदायिकता आरोपित करने का श्रेय जेम्स स्टुअर्ट मिल एवं इलियट और डाउसन को देते हैं। क्योंकि जेम्स स्टुअर्ट मिल ने ही सर्वप्रथम इस उपमहाद्वीप के इतिहास को हिंदू–मुसलिम एवं ब्रिटिश युगों में विभाजित कर भारतीय इतिहास को सांप्रदायिक रंग दिया।

अंततः मध्यकालीन मुसलिम इतिहासकारों के इतिहास लेखन में सांप्रदायिकता का प्रतिरोपण आज एक मुख्य समस्या दिखाई. देती है और इस समस्या का समाधान यही है कि पाठक स्वयं मध्यकालीन इतिहासकारों के लेखन का सूक्ष्म अध्ययन करें और उन साम्राज्यवादी, औपनिवेशिक इतिहासकारों के 'मध्यकालीन भारत में सांप्रदायिकता

के प्रतिरोपण' के पीछे निहित उद्देश्यों को भी जानने का प्रयास करें। वस्तुतः मध्यकालीन अधिकांश इतिहासकार सत्ता वर्ग से संबद्ध थे। अतः राजनीतिक कारणों से ही उन्होंने अपने इतिहास लेखन में यत्र–तत्र प्रसंगवश हिंदुओं का विरोध किया है, किसी सोची समझी साजिश के तहत नहीं।

टिप्पणी

मध्यकालीन इतिहास लेखन के प्रमुख इतिहासकार

मध्यकालीन इतिहासकारों का विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार से है–

अलबरूनी (973–1048 ई.)

मध्यकाल के आरंभिक इतिहास की जानकारी हमें अलबरूनी की कृति किताब–उल–हिन्द से मिलती है। अलबरूनी द्वारा लिखित यह पुस्तक कुल 80 अध्यायों में विभक्त है। यह एक विशाल ग्रंथ है जिसमें भारतीय धर्म दर्शन, त्यौहार, खगोल विद्या, रीति–रिवाज, परंपराओं, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन, माप–तौल की विधियां, मूर्तिकला, कानून, प्रांतों की सीमाओं, भौगोलिक स्थिति, पर्यावरण, नदियां आदि की विस्तृत जानकारी मिलती है। अलबरूनी का यह ग्रंथ मध्यकालीन भारतीय सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी प्रदान करता है।

अलबरूनी का जन्म 973 ई. में खीवा में हुआ था। महमूद गजनबी ने उसकी योग्यता से प्रभावित होकर उसे अपने दरबारी विद्वानों में स्थान दिया। अलबरूनी महमूद गजनबी के भारतीय आक्रमणों के दौरान भारत आया। भारत आकर अलबरूनी ने संस्कृत भाषा, भारतीय दर्शन, एवं ज्योतिशशास्त्र का अध्ययन किया। अलबरूनी की कृति 'किताबुल हिन्द' या 'तहकीके हिन्द' उसके द्वारा 1017 ई. से 1030 ई. के मध्य किये गये भारतीय जीवन के अध्ययन एवं निरीक्षण पर आधारित है।

अलबरूनी इतिहास लेखन कला के मूलभूत तत्वों से सुपरिचित था। उसने 10वीं एवं 11वीं सदी में भारतीय इतिहास लेखन की कमी को इंगित किया है। अलबरूनी बताता है कि 'दुर्भाग्य से हिंदू ऐतिहासिक तथ्यों की ओर अधिक ध्यान नहीं देते, वह शासकों के तिथिक्रम के प्रति जागरूक नहीं हैं। जब भारतीयों से इतिहास विषयक कोई जानकारी हासिल करने का प्रयास किया जाता है तो वे कहानियां सुनाने लगते हैं।'

अलबरूनी ने अपनी कृति में ऐतिहासिक तथ्यों की प्रस्तुति पर विशेष ध्यान दिया है। वह एक स्थान पर बताता है कि 'जझौती की राजधानी खजुराहो है। खजुराहो एवं कन्नौज के मध्य दो प्रमुख दुर्ग ग्वालियर व कालिंजर स्थित हैं। वह यह भी बताता है कि राजनीतिक रूप से भारत छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित है। ये राज्य पारस्परिक युद्धों में उलझे रहते हैं। उन्हें राष्ट्रीय हित की कोई परवाह नहीं रहती। संभवतः वे राष्ट्रीय शब्द की अवधारणा से अनभिज्ञ हैं। समाज, जाति प्रथा की कठोरता से जकड़ा हुआ है। धर्म में अंधविश्वास प्रवेश कर चुका है।'

इस प्रकार अलबरूनी कृत तहकीके हिन्द से हमें तद्युगीन इतिहास की प्रामाणिक जानकारी मिलती है। एक आदर्श इतिहासकार की तरह अलबरूनी ने यथासंभव पूर्वाग्रह से मुक्त होकर इतिहास लिखने का प्रयास किया। सत्यान्वेशण के प्रति अलबरूनी की दृढ़ इच्छा शक्ति उसके इस कथन में परिलक्षित होती है।

'हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वह हमें हमारे प्रत्येक ऐसे कथन के लिये क्षमा करे जो कि सच्चा न हो। जो चीज झूठ और व्यर्थ है उसके स्वरूप का परिज्ञान हमें प्राप्त हो, ताकि हम भूसी को गेहूं से अलग करने के लिये इसे छान सकें।'

टिप्पणी

अलबरूनी ने अपनी कृति 'किताब उल हिन्द' का सृजन अरबी भाषा में किया था। सचान ने इसका अंग्रेजी अनुवाद किया। इसका हिन्दी भाषा में अनुवाद रजनीकांत शर्मा ने किया जो कि आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ।

सल्तनत काल के आरंभ का सांस्कृतिक इतिहास जानने का 'किताब उल हिन्द' एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत है। इसमें उस समय की तथ्यपरक, महत्वपूर्ण एवं उपयोगी जानकारी प्रदान की गई है।

जियाउद्दीन बरनी (1285–1389 ई.)

सल्तनत काल का सर्वप्रमुख इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी था। बरनी का जन्म 1285 ई. में एक शिक्षित एवं धनवान सैय्यद परिवार में कैथल में हुआ था। बरनी का पिता मुरफल मुल्क, जलाउद्दीन खिलजी के समय शहजादा अर्कली खां का नायब था। बरनी का चाचा 'अला उल मुल्क' दिल्ली का कोतवाल एवं अलाउद्दीन खिलजी का सलाहकार मित्र था। स्वयं बरनी भी मुहम्मद बिन तुगलक के नदीम (जिंदादिल साथी) के पद पर रहे। इस प्रकार बरनी का सत्तारूढ़ दल से घनिष्ट संबंध था। बरनी ने 46–47 प्रकांड विद्वानों से शिक्षा ग्रहण की थी। वह प्रख्यात सूफी संत निजामुद्दीन औलिया का भक्त था। चूंकि जियाउद्दीन बरनी का जन्म बरन (आधुनिक बुलन्दशहर) में हुआ था अतः उसे भारतीय मूल का प्रथम मुसलिम इतिहासकार माना जाता है।

मीर खुर्द के अनुसार जियाउद्दीन बरनी की प्रमुख कृतियां निम्नलिखित हैं – सजा ए मोहम्मदी, मासिर ए सदात, सलात ए कबीर, तारीख–ए–बरमकियां, इनायतनामा ए इलाही, तारीख–ए–फिरोजशाही, हसरत नामा, फतवा ए जहांदारी।

इन कृतियों में बरनी की सर्वप्रमुख कृतियां 'तारीख–ए–फिरोजशाही' एवं 'फतवा–ए–जहांदारी' हैं। इनकी रचना बरनी ने फारसी भाषा में की। बरनी असामान्य साहित्यिक योग्यता का धनी था। यद्यपि अरबी भाषा का, वह उच्च ज्ञाता न था मगर फारसी भाषा पर उसकी विशिष्ट पकड़ थी। बरनी इतिहास का उत्कृष्ट प्रेमी था। अतः उसकी कृतियों का मूलाधार इतिहास ही था।

• बरनी के इतिहास संबंधी विचार

बरनी को इतिहास एवं इतिहास लेखन से विशिष्ट लगाव था। वह इतिहास लेखन में सत्यनिष्ठा के महत्व से परिचित था। अपनी सर्वप्रमुख कृति तारीख–ए–फिरोजशाही' की भूमिका में बरनी ने इतिहास, उसकी उपयोगिता एवं इतिहास लेखन और उसमें सत्य के महत्व के बारे में विस्तार से वर्णन किया है। बरनी एक इतिहासकार से सच्चा, ईमानदार एवं भयहीन होने की अपेक्षा करता है। उसने स्वयं लिखा है – 'मैंने जो कुछ अपने इतिहास में लिखा है, सच–सच लिखा है और इस पर विश्वास किया जा सकता है'। बरनी इस तथ्य से भी वाकिफ था कि दरबारी इतिहासकार के लिये सत्य की राह में कठिनाइयां आती हैं। एक स्थान पर वह लिखता है–'यदि भय अथवा डर के कारण अपने समकालीन बादशाह के विरुद्ध कुछ लिखना संभव न हो तो वह इसके लिये अपने को विवश समझ सकता है, परंतु उस सुल्तान के पूर्ववर्ती लोगों के विषय में तो सच–सच लिखा ही जा सकता है।' यह कथन बरनी की इतिहास के प्रति सकारात्मक सोच का परिचायक है।

टिप्पणी

इतिहास लेखन के लिये बरनी ने अथक परिश्रम किया था। वह स्वयं लिखता है–'मेरा जीवन ग्रंथों के सूक्ष्म अध्ययन में व्यतीत हुआ है। मैंने प्राचीन और अर्वाचीन दोनों प्रकार के ग्रंथ पढ़े। कुरान, हदीस, शरीया के अध्ययन के पश्चात मैंने ज्ञान अथवा क्रियाशीलता के क्षेत्र में इतना लाभ नहीं देखा जितना कि इतिहास शास्त्र में देखा है।'

बरनी ने केवल इतिहास ही नहीं लिखा अपितु इतिहास के अध्ययन के लाभ पर भी प्रकाश डाला है। बरनी ने इतिहास अध्ययन के निम्न सात लाभ बताये हैं–

1. इतिहास मानव को पवित्र पुस्तकों से परिचित कराता है। इतिहास का ज्ञान शिक्षाओं से परिपूर्ण होता है।
2. 'हदीस' का जुड़वा भाई. इतिहास है। जिस प्रकार इतिहास में बादशाहों के वक्तव्य एवं कीर्ति का वर्णन होता है उसी तरह हदीस में रसूल के वक्तव्य और कीर्ति का वर्णन होता है।
3. मनुष्य इतिहास द्वारा दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाकर स्वयं अनुभवी बन सकता है। वर्तमान को व्यवस्थित करने में अतीत का ज्ञान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
4. इतिहास का ज्ञान सुल्तानों, वजीरों एवं अमीरों को संकट से उबारने में सहायक होता है। वे संकट के समय इतिहास से पता कर सकते हैं कि ऐसे संकट के समय पूर्ववर्ती लोगों ने क्या किया था।
5. इतिहास के अध्ययन से पैगम्बर के कार्यों और सुख–दुःख का ज्ञान प्राप्त होता है। लोगों से त्याग एवं धैर्य की भावना पैदा होती है।
6. इतिहास के अध्ययन से मनुष्य न्यायप्रिय, गुणवान एवं उच्च चरित्र सुल्तानों से प्रभावित होता है। उनको अपना आदर्श मान सकता है।
7. इतिहास मानव जीवन की आधारशिला है। यही सही–गलत, न्याय–अन्याय, गुण–अवगुण, आज्ञा पालन–विद्रोह का सही दृष्टांत प्रस्तुत करता है। इतिहास के इस पहलू का अध्ययन कर मनुष्य असद से सद्मार्ग पर चलने की ओर अग्रसर होता है।

• तारीख–ए–फिरोजशाही

तारीख–ए–फिरोजशाही बरनी की सर्वप्रमुख कृति मानी जाती है। इसका संपादन सर सैयद अहमद खां द्वारा किया गया था, जो बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित की गई। बरनी ने यह पुस्तक 1357 ई. में लिखकर पूर्ण की थी। बरनी की इच्छा विश्व इतिहास लिखने की थी मगर मिनहाज उस सिराज की रचना तबकात–ए–नासिरी पढ़ने के पश्चात उसने अपना यह विचार त्याग दिया। उसने लिखा है कि मैं यदि वही लिखूं जो मिनहाज उस सिराज ने लिखा है तो लोगों को मेरा इतिहास पढ़ने से कोई लाभ नहीं होगा। इसीलिये बरनी ने अपना इतिहास वहां से आरंभ किया है जहां कि मिनहाज उस सिराज ने अपना इतिहास समाप्त किया है। इसी कारण इसने बलबन के सिंहासनारोहण (1265–66 ई) से लेकर फिरोजशाह तुगलक के छठवें वर्ष तक के शासन काल अर्थात 1357 ई. तक का इतिहास मिलता है। 76 वर्ष की आयु में 1359 ई. में बरनी की मृत्यु हो गयी थी।

टिप्पणी

बरनी के अंतिम दिन अत्यधिक आर्थिक तंगी एवं कष्ट में बीते थे। हेरम्ब चतुर्वेदी ने लिखा है 'यदि बरनी को फिरोज तुगलक ने आश्रय न दिया होता तो वह मातृभूमि की गोद में सो गया होता। उसने अपनी पुस्तक एक साथ दो को समर्पित की। एक तो ईश्वर को जिससे वह अपने पापों के प्रायश्चित के लिये क्षमा याचना चाहता था। दूसरे सुल्तान को जिसने उसे आश्रय दिया। इसीलिये उसने अपनी इस कृति का नाम तारीख–ए–फिरोजशाही रखा।'

तारीख–ए–फिरोजशाही में दिल्ली सल्तनत के निम्न 8 सुल्तानों का वृतांत मिलता है–

1. ग्यासुद्दीन बलबन (28 वर्ष शासन) – 1266 ई. से 1287 ई.
2. मुहजुद्दीन कैकूवाद, 3 वर्ष शासन – 1287–1290 ई. शमशुद्दीन कैमूर्स (1290 ई)
3. जलालुद्दीन फिरोज खिलजी – 7 वर्ष शासन – 1290–1296 ई.
4. अलाउद्दीन खिलजी – 20 वर्ष – 1296–1316 ई.
5. कुतुबुद्दीन मुबारक शाह – 4 वर्ष 5 माह शासन – 1316–1320 ई.
6. नसीरूद्दीन खुशरवशाह 1320 ई.
7. ग्यासुद्दीन तुगलक, 5 वर्ष शासन (1320–1325 ई.)
8. मुहम्मद बिन तुगलक – 20 वर्ष शासन – 1325–1351 ई.
9. फिरोजशाह तुगलक – वर्तमान सुल्तान, 1351 ई.

जलाउद्दीन खिलजी के शासन काल एवं उसके पश्चात के घटनाक्रम का तो बरनी प्रत्यक्षदर्शी था, मगर इससे पूर्व बलबन तक का इतिहास बरनी ने अपने पिता, पितामह, चाचा–अलाउल मुल्क, अमीर खुसरो, हसन अला सियाजी, हुसामुद्दीन, मलिक किराबेग, अमीर हसन इत्यादि से सूचनाएं प्राप्त कर लिखा था। अपने इतिहास लिखने की योजना पर प्रकाश डालते हुए बरनी ने लिखा है

'मैंने इतिहास की योजना बनाने में बड़ी ही कठिनाई. का अनुभव किया है। ईमानदार व्यक्तियों से मैं न्याय पाने की आशा करता हूं। यह ग्रंथ गुणों से भरपूर है। इसे यदि इतिहास के रूप में पढ़ा जायेगा तो लोग इसमें शासकों एवं सुल्तानों का वर्णन पायेंगे। यदि इसमें प्रशासन के नियमों एवं संघर्ष समाप्त करने के उपायों को खोजा जायेगा तो यह भी इसमें मिलेगा। यदि इसमें सांसारिक नियमों का औचित्य एवं निःदर्शन तलाश किये जायेंगे तो वह भी इसमें अन्य ग्रंथों की अपेक्षा अधिक मिलेंगे।'

जियाउद्दीन बरनी की लेखन शैली अत्यंत रोचक थी। उसने साहित्य में इतिहास को मूर्तिमान करने का भरसक प्रयास किया है। वह घटना को इस प्रकार पेश करता है कि पढ़ने वाले को उसकी सत्यता पर कोई संदेह न हो सके। वह घटनाओं तथा स्वयं अपने विचारों को अन्य व्यक्तियों के मुख से कहलवाने का आदी था। मुहम्मद हबीब ने उसके संबंध में लिखा है – 'तारीख–ए–फिरोजशाही में बरनी की शैली इतनी ज्यादा परिष्कृत हो उठी है कि उसकी तुलना 600 साल बाद के साहित्य से बखूबी की जा सकती है।' इसी कारण बरनी को सल्तनत काल का श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण इतिहासकार माना गया है।

टिप्पणी

बरनी के इतिहास लेखन के कुछ दोष भी थे। अपनी कृति 'तारीख–ए–फिरोजशाही' की भूमिका में भले ही उन्होंने सत्य लेखन एवं पूर्वाग्रह मुक्त लेखन पर जोर दिया हो, मगर उनकी कथनी और करनी में अंतर स्पष्टतः देखा जा सकता है। कहीं–कहीं पर पूर्वाग्रह भी बरनी पर हावी रहे एवं कहीं–कहीं उनका सत्य लेखन भी प्रभावित हुआ। एक स्थान पर बरनी लिखता है कि 'उनका कृतित्व अमीर एवं कुलीन वर्ग के लोगों के लिये हैं, केवल वे ही इतिहास समझ सकते हैं एवं इससे लाभ उठा सकते हैं। निम्न कुल के लोगों को एवं शुद्धीकरण द्वारा मुसलमान बने लोगों को ऊंचे पद देने के लिये बरनी ने मुहम्मद तुगलक की कटु आलोचना की है। उच्च वंशीय लोगों के प्रति बरनी को अत्यधिक मोह था, उसकी मान्यता थी कि निम्न कुल में जन्मे लोगों को सरकारी सेवा में नहीं लिया जाना चाहिये। बरनी के अनुसार शासन का कार्यभार पवित्र एवं धार्मिक व्यक्तियों को सौंपा जाना चाहिये। शिक्षकों को बरनी एक स्थान पर सलाह देता है कि वे निम्न वंश के लोगों को शिक्षित न करें, क्योंकि शिक्षित होकर वे नौकरी पा लेते हैं, इससे सामाजिक संतुलन बिगड़ता है। हिंदुओं की सम्पन्नता से भी बरनी की घृणा उसकी कृति में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। बरनी उन तथ्यों को दबाकर लिखता है जो उसकी रुचि के विरुद्ध थे एवं जो तथ्य उसकी व्यक्तिगत रूचि व विचारों के अनुरूप थे, उन्हें वह अत्यधिक बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत करता है।' बरनी के बारे में सय्यैद अतहर अब्बास रिजवी ने लिखा है कि 'बरनी युद्ध तथा विजयों की चर्चा की अपेक्षा बादशाहों एवं अमीरों के पूर्ण व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। बरनी लोगों के गुणों की प्रशंसा एवं दोषों का उल्लेख करते समय इतना उत्साहित हो जाता है कि वह अपने ही निर्धारित किये हुए नियमों की उपेक्षा करने लगता है।' सल्तनतकालीन शासकों को किन–किन समस्याओं का सामना करना पड़ा, बरनी ने अपनी कृति में इसकी तथ्यपरक विवेचना प्रस्तुत की है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि बरनी की यह कृति तद्युगीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक इतिहास की जानकारी का एक सर्वप्रमुख स्रोत है। बरनी मध्यकालीन इतिहास लेखन की परंपरा का एक प्रमुख इतिहासकार था। बरनी इतिहास लेखन कला से, इतिहास के महत्व से एवं इतिहास के उपयोग के साथ–साथ इतिहास दर्शन से भी परिचित था। आज भी मध्यकालीन इतिहास लिखने वाले विद्वान बरनी की कृति का एक प्रमाणिक स्रोत के रूप में उपयोग करते हैं।

- **फतवा–ए–जहांदारी**

बरनी द्वारा रचित 'फतवा–ए–जहांदारी', 'तारीख–ए–फिरोजशाही' के बाद रचित उसका पूरक ग्रंथ है। इसकी केवल एक हस्तलिखित प्रति इंडिया आफिस लंदन के पुस्तकालय में है। यह ग्रंथ जननिर्माण के विवरण एवं पैगम्बर व उनकी शिक्षाओं से प्रारंभ होता है। इसमें अच्छे गुणों एवं योग्यताओं का विवेचन है जो कि एक राजा में होना चाहिये। यद्यपि यह ग्रंथ उसने फारसी में लिखा है मगर उसमें भारतीय शब्दों चकाई, छप्पर, भण्डी, ढोलक, चाकर एवं चौकी आदि का प्रयोग किया है। फतवा–ए–जहांदारी की तुलना में तारीख–ए–फिरोजशाही बरनी की महत्वपूर्ण कृति है। एलफिस्टन ने इसे बहुमूल्य कृति बताया है। निजामुद्दीन अहमद, बदायूंनी, फरिश्ता आदि विद्वानों ने अपने इतिहास लेखन में बरनी के ग्रंथ का उपयोग किया है।

अबुल फजल (1551–1602 ई.)

जियाउद्दीन बरनी यदि सल्तनत काल का सर्वप्रमुख इतिहासकार था तो मुगलकाल का सर्वप्रमुख इतिहासकार अबुल फजल था। अबुल फजल का जन्म 24 जनवरी 1551

टिप्पणी

ई. को आगरा में हुआ था। अबुल फजल के पिता शेख मुबारक अरबी एवं फारसी के अच्छे विद्वान थे। अबुल फजल एवं फैजी शेख मुबारक के दो होनहार पुत्र थे। अबुल फजल का बड़ा भाई. फैजी भी अत्यंत विद्वान था। फैजी ने अकबर से अपने छोटे भाई. अबुल फजल की मुलाकात कराई। अबुल फजल की योग्यता से प्रभावित होकर अकबर ने उसे अपनी सेवा में रख लिया। असाधारण योग्यता के बल पर अबुल फजल प्रधानमंत्री के पद तक जा पहुंचा। अकबर ने उसे 4000 का मनसबदार भी बनाया। अबुल फजल अकबर का अत्यंत विश्वासपात्र एवं मित्र के समान था। शहजादा सलीम ने अकबर के विरूद्ध विद्रोह किया। सलीम अबुल फजल को अपना विरोधी मानता था। सलीम जहांगीर ने अपने विश्वस्त बुन्देला सरदार वीरसिंह देव द्वारा नरबर के पास 19 अगस्त, 1602 ई. को अबुल–फजल की हत्या करा दी। अबुल फजल की मृत्यु पर अकबर को अत्यधिक दुःख हुआ वह 7 दिन तक किसी से भी नहीं मिला। अकबर ने कहा था कि जहांगीर को यदि मारना ही था तो मुझे मारता अबुल फजल को क्यों मारा।

जियाउद्दीन बरनी की भांति अबुल फजल को भी शासक वर्ग को करीब से देखने एवं समझने का मौका मिला था। अबुल फजल मुगल दरबार का शाही इतिहासकार था। अकबर ने स्वयं उससे अपने समय का इतिहास लिखने के लिये कहा था। इसीलिये उसने अपनी सर्वप्रसिद्ध ऐतिहासिक कृति 'अकबरनामा' का सृजन किया। इस कृति के लेखन हेतु तथ्य एवं सूचनाएं संकलित करने में अबुल फजल ने अत्यधिक श्रम एवं शोध किया था। शोध की साक्षात्कार पद्धति का उपयोग करते हुए कई राजकर्मचारियों एवं वृद्ध लोगों से साक्षात्कार भी किया। यही कारण है कि 'अकबरनामा' अकबरकालीन इतिहास की सांगोपांग जानकारी प्रदान करता है। 'अकबरनामा' तीन खंडों में विभाजित है।

प्रथम खंड–में तैमूर से लेकर हुमायूं तक का इतिहास दिया गया है। इसमें अकबर के जन्म का भी विवरण मिलता है।

द्वितीय खंड–में अकबर के राज्यकाल (1556–1602 ई.) का संपूर्ण इतिहास दिया गया है।

तृतीय खंड–का नाम 'आइन–ए–अकबरी' है जिसे अकबर के साम्राज्य की प्रशासकीय रिपोर्ट कहा जा सकता है।

'आइने अकबरी' को उस समय का अकबरकालीन गजेटियर कहा जा सकता है। इसमें अकबरकालीन मुगल साम्राज्य का सांख्यिकीय सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। समस्त ऐतिहासिक एवं भौगोलिक स्थितियों का विवरण भी इसमें दिया गया है। लोगों को सामजिक स्थिति, रीति–रिवाज, राजस्व व्यवस्था, शाही अस्तबल, बावर्चीखाना, खजाने एवं सिक्कों से संबंधित व्यवस्था, सैनिक साजो–सामान, शाही दरबार के नियम–परंपरायें आदि सभी की जानकारी 'आइने अकबरी' में मिलती है। अतः 'आइने अकबरी' अकबरकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी का एक प्रमुख स्रोत है।

अबुल फजल ने 'अकबरनामा' के लेखन हेतु 7 वर्षों तक घोर परिश्रम किया था, अरबी तथा फारसी की समस्त उपलब्ध कृतियों का अध्ययन किया था। 'अकबरनामा' के लेखन हेतु सरकार की ओर से उच्चाधिकारियों एवं बड़े लोगों को आदेशित किया गया था कि वे अपनी याददाश्त के आधार पर अतीत की बातों का ब्यौरा दरबार में

भेजें। स्वयं अबुल फजल ने काफी लोगों से पूछ–ताछ की थी। इसीलिए 'अकबरनामा' को एक प्रमाणिक ग्रंथ माना जाता है।

'अकबरनामा' में अबुल फजल ने अकबर की अत्यधिक प्रशंसा की है। उसे महानायक के रूप में प्रतिष्ठित करने की हर संभव कोशिश की है। उसका मुख्य मकसद अकबर के जीवन के रूहानी पक्ष को उजागर करना था। उसने अकबर को इंसान–ए–कामिल माना है जिससे कोई गलती हो ही नहीं सकती। डॉ. विसेण्ट स्मिथ ने इसीलिये अबुल फजल को अकबर का चापलूस माना है। उनके अनुसार उसने कहीं–कहीं सत्य को छुपाने की कोशिश की है। असीरगढ़ के दुर्ग को अधिकृत करने में विवरण में वह सत्य से हमें दूर मोड़ने की कोशिश करता है। इसके बावजूद भी स्मिथ 'अकबरनामा' को अकबर के काल के इतिहास की आधारशिला मानते हैं। उन्होंने 'अकबरनामा' के कालानुक्रम को भी अन्य ग्रंथों की तुलना में प्रमाणिक माना है।

टिप्पणी

'आइने अकबरी' के पांच हिस्सों में से चौथे हिस्से में अबुल फजल ने हिंदुओं के फलसफे, राजनीति, साहित्य, धार्मिक जीवन, न्याय प्रणाली पर प्रकाश डालते हुए हिंदुस्तानी संतों एवं विदेशी सूफियों की कुछ जीवनियां भी दी हैं। पांचवें हिस्से में दो अध्याय हैं जिनमें अकबर की कहावतें एवं अबुल फजल की आत्मकथा वर्णित है। दूसरे हिस्से में मनसबदारी प्रथा एवं तीसरे हिस्से में राजस्व व्यवस्था पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। अबुल फजल ने पूर्ववर्ती लेखकों की तुलना में हिंदुओं को धार्मिक, मेहमान नवाज, खुशमिजाज एवं उदार बताया है। अबुल फजल के लेखन की अन्य विशेषता यह है कि उसने ऐसे मुहावरे एवं शब्दावली का इस्तेमाल नहीं किया जिनसे धार्मिक कट्टरता झलकती हो। उसने टोडरमल की ईमानदारी, हिम्मत एवं काबलियत की तारीफ की है।

डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा के अनुसार, "अबुल फजल ने पुराने लेखकों के इस नजरिये का खंडन किया है कि हिंदुस्तान का इतिहास इसलाम और हिंदू धर्म के परस्पर टकराव से भरा है। उसके ख्याल में यह स्थिरता और एकीकरण लाने वाली शक्तियों का उन ताकतों से टकराव था जो उन्हें नष्ट कर देना चाहती थीं।"

अबुल फजल एक ऐसे इतिहासकार के रूप में सामने आते हैं जिन्होंने 'अकबरनामा' में दर्ज करने से पहले एक–एक साक्ष्य की पूरी छानबीन कर उन्हें दूसरे साक्ष्यों से मिलाकर देखा था। उन्होंने स्वयं लिखा है कि हर घटना की सूचना के बारे में उन्होंने 20 से अधिक व्यक्तियों के लिखित साक्ष्य लिये हैं। जहां कहीं भी उन्हें विभिन्न मतों में विरोधाभास दिखाई. देता था तो वे इन्हें अकबर के समक्ष रखते थे और उनके निर्णय को ही मान्य करते थे और अपने आपको किसी भी जिम्मेदारी से बरी कर लेते थे। हरवंश मुखिया उस तारतम्य में लिखते हैं कि "आधिकारिक स्रोतों के उपयोग और प्रत्येक सूचना की कठोर छानबीन ने 'अकबरनामा' को उसके उद्देश्य के ढांचे की सीमा में तथा लेखन कला के सन्दर्भ में सही मायनों में एक शोधकृति बना दिया है।" उनके द्वारा एकत्रित स्रोतों का परस्पर विरोधी साक्ष्यों की स्थिति में निर्णायक अनुमोदन अकबर द्वारा किया जाता था। इस कारण से 'अकबरनामा' एक शुद्ध सरकारी इतिहास बन कर रह जाता है, जिसमें अबुल फजल ने ऐसे यशस्वी कारीगर की भूमिका निभाई. है जिसकी विशिष्टता अपने शिल्प के पिछले कीर्तिमानों को बहुत अधिक आगे ले जाने में निहित थी।

टिप्पणी

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि अबुल फजल मुगलकाल का एक सर्वप्रमुख इतिहासकार था। उसने भले ही अकबर की अत्यधिक प्रशंसा की हो, मगर उसके ग्रंथ में मुगलकाल का संपूर्ण इतिहास हमें प्राप्त होता है। अकबरनामा के तृतीय खंड 'आइन–ए–अकबरी' में तो अकबर के काल की छोटी से छोटी जानकारी प्राप्त होती है।

अब्दुल हमीद लाहौरी

अकबर की भांति शाहजहां भी अपने समय का इतिहास लिखाना चाहता था। वह प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से इतिहासकार की खोज में था। शाहजहां ने अब्दुल हमीद लाहौरी जो पटना में अवकाश प्राप्त जीवन बिता रहा था, उसे बुलाकर अपने शासन का इतिहास लिखने का कार्य सौंपा। लाहौरी का बादशाहनामा 3 भागों में है। प्रथम दो खंडों में 20 वर्षों का इतिहास है, जो 1627 में जहांगीर की मृत्यु से शुरू होकर 1647 तक आता है। ये स्वयं अब्दुल हमीद लाहौरी ने लिखा है। इसके आगे का शाहजहांकालीन इतिहास मुहम्मद सालेह की कृति 'अमल–ए–सालेह' में मिलता है। इसके अलावा सादिक खां की कृति तारीख–ए–शाहजानी में भी शाहजहां के अंतिम दौर का इतिहास मिलता है। शाहजहां के प्रारंभिक काल का इतिहास मिर्जा मुहम्मद अमीन बिन अब्दुल हसन कजवीनी ने अपनी कृति 'पादशाहनामा' में लिखा है। इसे तारीख–ए–शाहजहानी तथा 'शाहजहांनामा' भी कहा जाता है। यह फारसी भाषा में सरल एवं सहज लेखन शैली में लिखा गया है। शाहजहां के प्रारंभिक 10 वर्षों के इतिहास ज्ञान हेतु यह उपयोगी रचना है।

मुहम्मद कजवीनी कृत 'पादशाहनामा' की तरह ही तबा–तबाई ने भी पादशाहनामा की रचना की थी। परंतु उसकी यह लघु ऐतिहासिक रचना है जिसमें पाचवें, छठवें, सातवें तथा आठवें, चारों वर्षों का ही विवरण प्राप्त होता है। इस का लेखन कार्य 1640 में पूर्ण किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि मुहम्मद कजवीनी के 'पादशाहनामा' की यह प्रतिकृति हो।

अब्दुल हमीद लाहोरी कृत 'पादशाहनामा' में स्वयं लाहौरी ने भूमिका में लिखा है बादशाह को ऐसे इतिहासकार की आवश्यकता थी जो उसके शासन की स्मृतियां अबुल फजल के अकबरनामा जैसी लिख सके। अब्दुल हमीद लाहौरी अपनी शैली की सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध था। यह एक बहुत बड़ा ग्रंथ है, शाहजहां के कार्यों का क्रमबद्ध विवरण इसमें मिलता है। मार्शल भी यह मानते हैं कि – "शाहजहां के शासनकाल का यह अत्यंत प्रमाणिक ग्रंथ है, जिसमें प्रतिवर्ष की घटनाओं का क्रमबद्ध तथा तिथिक्रमानुसार विवरण प्राप्त होता है।"

इस ग्रंथ में समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। अब्दुल हमीद लाहौरी के समकालीन कनिष्ट एवं प्रतिद्वंद्वी लेखक मुहम्मद सालीह ने भी इस ग्रंथ की भूरि–भूरि प्रशंसा की है।

इलियट भी इस ग्रंथ की प्रशंसा में लिखते हैं कि इस ग्रंथ की विशेष बात तो यह है कि इसमें छोटी सी छोटी घटनाओं तथा कार्यों का वर्णन साधारण भाषा में किया गया है। 1662 पृष्ठों वाले इस ग्रंथ में, जन्मदिन, सिंहासनारोहण, तबादलों, भेंटों, सामंतों को दी गई उपाधियों, शाही परिवार के लोगों की पेंशनों आदि का वर्णन किया गया है।

अंततः 1647 में युद्ध के विस्तृत विवरण के साथ लाहौरी का मूलग्रंथ खत्म हो जाता है। जीवन की थकान की मजबूरी से उन्होंने 1647 में लेखन बंद कर दिया और इस कृति को अब्दुल हमीद लाहौरी ने शाहजहां को भेंट कर दिया।

टिप्पणी

अब्दुल हमीद लाहौरी का शिष्य मुहम्मद वारिस था। अब्दुल हमीद लाहौरी जब असक्त तथा वृद्ध हो गया तो उसने अपने शिष्य को आदेश दिया कि लेखकीय दायित्व को स्वीकार कर वह आगे का इतिहास लेखन जारी रखे। 20 वर्षों के इतिहास लेखन कार्य के बाद मुहम्मद वारिस ने अगले 10 वर्ष का इतिहास लेखन शुरू किया। इस प्रकार शाहजहां के 21वें वर्ष से 30वें वर्ष तक का इतिहास पूर्ण हो जाता है। इस तरह पादशाहनामा का तीसरा भाग मुहम्मद वारिस की कृति है। जिसे 'शाहजहांनामा' भी कहा जाता है।

खाफी खां

मुहम्मद हाशिम अलियास, हासिम अली खा के नाम इतिहास लेखन में जाना जाता है, परंतु खाफी खा नाम से प्रसिद्ध है। इसका पिता ख्वाजा मीर भी इतिहास लेखक था, जो मुरादवख्श की सेवा में उच्च अधिकारी भी था, तथा उसकी हत्या के बाद वह औरंगजेब की सेवा में चला गया। फरूर्खसियर के शासन काल में निजाम–उल–मुल्क ने मुहम्मद हासिम को अपना दीवान नियुक्त किया। मूलतः उसके पूर्वज ख्वाफ के निवासी थे, खाफ या ख्वाफ निशापुर के निकट खुरासान का एक जिला है जहां से हासिम का परिवार आया था। मुहम्मद हासिम को लोग ख्वाफी कहकर पुकारते थे, 'ख्वाफी' ही विकृत होकर संभवतः खाफी हो गया। इस बात में संदेह नहीं है कि वह एक सुलझा हुआ इतिहासकार था। औरंगजेब ने अपने सिंहासनारूढ़ होने के ग्यारहवें वर्ष से इतिहास लेखन पर प्रतिबंध लगा दिया था। खाफी खां ने गुप्त रूप से इतिहास लेखन का कार्य किया। उसने यह इतिहास लेखन की सामग्री एक संदूकें में बंद करके रख दी। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात उसने इसे विधिवत लिखने का कार्य प्रारंभ किया जिसमें पर्याप्त समय लगा। अंततः उसने मुहम्मदशाह के सम्मुख इसे पेश किया, इससे मुहम्मदशाह खुश हुआ और उसे खाफी खा (गुप्त) की उपाधि से सम्मानित किया।

मुहम्मद हासिम खाफी खां ने अपनी इस ऐतिहासिक रचना का नाम 'मुन्तखब–उल–लुबाव मुहम्मदशाही' रखा जो 'तारीख–ए–खाफी खां' के नाम प्रसिद्ध हुई। तारीख–ए–खाफी खां तीन खंडों में 1519 से भारत में मुसलिम विजय से लेकर मुहम्मदशाह के शासन के 14वें वर्ष तक का इतिहास लिखा। प्रथम भाग मुसलिम विजय से लोदी वंश के अंत तक है जो संक्षिप्त है और स्पष्ट भी। द्वितीय भाग – बाबर के भारत विजय से मोहम्मद शाह के काल तक का मुगलों का इतिहास है। इस भाग में स्थानीय वंशों, खानदेश, गुजरात व दक्कन आदि का भी वर्णन मिलता है। तृतीय भाग – यह महत्वपूर्ण भाग है इसमें औरंगजेब के शासन का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। उसका कहना है कि इस वृतान्त में अंतिम 53 वर्षों का इतिहास स्वयं उसका आंखों देखा हुआ है। खाफी खां ने 1680–1733 ई. के मध्य की घटनाओं का वर्णन अनुभव के आधार पर तथा निष्पक्ष रूप से लिखा है। उसने लिखा भी है कि "मैंने न तो मित्रों का समर्थन किया और न ही भय के कारण विरोधियों की आलोचना से रूका। मैंने किसी भी वजीर को प्रसन्न करने के लिए कुछ भी नहीं लिखा। मैंने जो देखा वहीं लिखा और जो ऐसे व्यक्तियों से सुना जो फरूखसियर एवं सैयद भाइयों के अत्यंत निकट थे उन्हें घटनाओं एवं तथ्यों की सही जानकारी थी, मैंने तथ्यों की जांच कर मुझे जो सत्य प्रतीत हुआ मैंने उसका उल्लेख कर दिया।"

टिप्पणी

खाफी खां एक इतिहासकार होने के नाते वह अपने कर्तव्यों को भली–भांति जानता था कि एक इतिहासकार को घटनाओं को सत्य रूप में लिखना चाहिए। आगे खाफी खां लिखता है कि इतिहास घटनापरक वृतान्त की सूची है और इसे तिथिक्रम में दिया जाना चाहिए। राजनीतिक घटनाओं के साथ–साथ अन्य विषयों का भी इतिहास से मेलजोल रखना चाहिए जिससे इतिहास का कड़वापन दूर हो जाता है और समरसता आती है। इस प्रकार औरंगजेब द्वारा इतिहास लेखन पर रोक लगाने के बाद अगर कोई महत्वपूर्ण इतिहासकार है तो वह खाफी खां।

अपनी प्रगति जांचिए

5. अरबी इतिहास लेखन को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाने का श्रेय किसको दिया जाता है?

   (क) अल मसूदी (ख) इब्न खाल्दून

   (ग) (क) व (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

6. 'तबकाते नासिरी' फारसी भाषा की प्रसिद्ध ऐतिहासिक कृति है। यह किसके द्वारा लिखी गई?

   (क) हसन निजामी (ख) मिनहाज–उस–सिराज

   (ग) बाबर (घ) अबुल फल

3.5 आधुनिक इतिहास लेखन

परंपरा का अर्थ है, बिना किसी व्यवधान के एक शृंखला के रूप में जारी रहना। परंपरा–प्रणाली में किसी विषय अथवा उपविषय की जानकारी किसी परिवर्तन के बिना एक से दूसरी पीढ़ियों में संचारित होती रहती है। उदाहरण के लिए भागवत पुराण में वेदों का वर्गीकरण तथा परंपरा द्वारा उसके हस्तांतरण का वर्णन किया गया है। यहां जानकारी अर्थात ज्ञान के विषय आध्यात्मिक, कलात्मक (नृत्य/संगीत) अथवा शैक्षणिक हो सकते हैं।

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से चली आ रही 'गुरु–शिष्य परंपरा' को परंपरा कहते हैं। यह हिंदू, सिख, जैन और बौद्ध धर्मों में समान रूप से पाई. जाती है।

वस्तुतः परंपरा सामाजिक रिास का एक अभौतिक हिस्सा है जो हमारे व्यवहार के सीकृत प्रकारों का परिचायक है। इसकी निरंतरता पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरण की क्रिया द्वारा कायम रहती है। परंपरा को सामान्य रूप से अतीत की विरासत के रूप में माना–समझा जाता है। अनेक विद्वान 'सामाजिक विरासत' को ही परंपरा मानते और कहते हैं।

आधुनिक इतिहास लेखन के अंतर्गत प्रत्यक्षवादी, उदारवादी, परंपरागत मार्क्सवादी एवं एनाल्सवादी इतिहास की परंपरा को इस प्रकार समझा जा सकता है–

इतिहास में प्रत्यक्षवाद

प्रत्यक्षवादी इतिहास की परंपरा का आरंभ इग्लैण्ड के बेकन द्वारा माना जाता है। परन्तु प्रत्यक्षवादी सिद्धांत का प्रमुख प्रतिपादक ऑगस्ट कॉम्टे था। ऑगस्ट कॉम्टे का जन्म 1798 में हुआ।

पृष्ठभूमि

16वीं सदी में पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप पांडित्यवाद, सामंतवाद, धार्मिक अधिकारवाद एवं सांस्कृतिक अलगाववाद जैसे परंपरावादी विचारों का स्थान मानवतावाद, बुद्धिवाद, वैधानिकता एवं धर्म निरपेक्षता ने ले लिया।

टिप्पणी

16वीं एवं 17वीं सदी के प्रमुख विचारकों मैकियावली (1469–1527 ई.), गैलीलियो गैलिली (1564–1642 ई.), आइजक न्यूटन (1642–1727 ई.), जोहन्नेस केपलर (1571–1640 ई.) एवं फ्रांसिस बेकन (1561–1626 ई.) आदि ने इतिहास को धार्मिक प्रभाव से मुक्त करने की आवश्यकता पर बल दिया। इस प्रकार वस्तुनिष्ठ इतिहास की ओर रुझान जाग्रत हुआ। वस्तुनिष्ठ इतिहास लेखन के लिये तथ्यों, सूचनाओं एवं अन्य सूक्ष्म विवरणों की आवश्यकता महसूस की गई। इस प्रकार इतिहास में प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण, रूमानीवाद के विरोध स्वरूप अस्तित्व में आया।

प्रत्यक्षवादी इतिहास लेखन का जन्मदाता फ्रांस के ऑगस्ट कॉम्टे को माना जाता है किन्तु वास्तव में इस दिशा में प्रथम प्रयास 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी में हुआ। बार्थाल्ड जार्ज नेबूर (1776–1831 ई.) एवं लियोपोल्ड वॉन रॉके (1795–1886 ई.) ने 19वीं सदी के प्रारंभ में तथ्यों को पुनः स्थापित कर ऐतिहासिक दृष्टिकोण को दिशा दी। बर्लिन विश्वविद्यालय में कार्य कर नेबूर एवं रॉके ने वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक विश्लेषणों के सिद्धांत को आगे बढ़ाया।

रॉके ने ऐतिहासिक पत्रिका 'सेमिनार' का आरंभ कर इतिहास को एक स्वतंत्र विषय के रूप में सामने रखा। उन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय में इतिहास शोध की विधाओं पर अनेक संगोष्ठियां आयोजित कीं। उनका इतिहास के क्षेत्र में किया गया यह कृतित्व 'बर्लिन क्रांति' के रूप में जाना जाता है। रॉके ने स्रोतों की प्रमुखता, तथ्यों की प्रमाणिकता पर ध्यान देकर इतिहास लेखन को वैज्ञानिकता की ओर उन्मुख किया। इस तरह जर्मनी में प्रत्यक्षवाद की ओर कदम बढ़ाया गया।

ऑगस्ट कॉम्टे का इतिहास दर्शन

ऑगस्ट कॉम्टे के अनुसार 'बिना संदेह के तथ्यों को स्थापित करना ही इतिहास का प्रत्यक्षवादी उपागम है।' वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग कर ऐतिहासिक घटनाओं को दोषमुक्त बनाया जा सकता है। व्याख्या के सामान्य नियमों का अनुसरण कर इतिहास, विज्ञान हो सकता है। कॉम्टे ने प्रत्यक्षवादी–दर्शन का मूल फ्रांसिस बेकन, मान्टेस्क्यू एवं कांडोरकेट आदि विचारकों से ग्रहण किया।

फ्रांसीसी गणितज्ञ हेनरी डी संत साइमन ने सभी विषयों में शोध के लिये एक नई. पद्धति को विकसित किया जो प्रत्यक्षवादी दर्शन कहलाया। इस दर्शन को उन्नत कर प्रसिद्ध सिद्धांत में परिवर्तित करने का श्रेय साइमन के सचिव ऑगस्ट कॉम्टे को जाता है। ऑगस्ट कॉम्टे का जन्म फ्रांस के मांटपेलियर नामक स्थान पर एक धर्मनिष्ठ ईसाई परिवार में 1798 ई. में हुआ था। बाद में कॉम्टे ने धर्म को त्याग दिया एवं स्वयं को प्रत्यक्षवादी महन्त के रूप में उद्घोषित किया।

कॉम्टे के दार्शनिक विचार उनकी निम्न दो पुस्तकों में देखे जा सकते हैं–

1. द कोर्स ऑफ पॉजिटिविस्ट फिलॉसफी (6 भाग)
2. द सिस्टम ऑफ पाजिटिविस्ट पॉलिटिक (4 भाग)

टिप्पणी

कॉम्टे का मानना था कि जैसे प्राकृतिक घटनाएं प्राकृतिक नियमों द्वारा घटित होती हैं, उसी प्रकार ऐतिहासिक घटनाएं भी एक निश्चित नियम के तहत घटित होती हैं। इस दृष्टि के आधार पर कॉम्टे ने अपने वैज्ञानिक प्रत्यक्षवाद के विचारों को विकसित किया।

कॉम्टे का मानना था कि जिस प्रकार वैज्ञानिकों ने प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को अध्ययन द्वारा जाना है उसी प्रकार समाज में मनुष्य का भी अध्ययन संभव है। समाज भी एक प्रकार से प्रकृति का ही अंग है। अतः सामाजिक व्यवहार के ऐतिहासिक नियमों की खोज संभव है।

कॉम्टे ने अपने सिद्धांत को तीन स्तरों में बांटा है।

1. प्राचीन काल में ईश्वरपरक
2. मध्यकाल में तात्विक
3. आधुनिक काल में प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिक

वस्तुतः हमारे ज्ञान की प्रत्येक शाखा क्रमशः इन्हीं तीन स्तरों से गुजरती है। इन तीन स्तरों में प्रथम स्तर मानवीय समझ से बाहर का विषय है। द्वितीय स्तर संक्रमण काल का स्तर है एवं तृतीय स्तर वैज्ञानिक अथवा प्रत्यक्षवाद स्थायी प्रकृति का है। तात्त्विक स्तर पर पराभौतिक शक्तियों के स्थान पर अमूर्त शक्तियों को मान्यता दी गई, जो प्रत्येक प्राणी में अंतर्निहित है एवं उसके कार्य को प्रभावित करती है।

प्रत्यक्षवाद का विचार फ्रांस से यूरोप के दूसरे भागों में भी फैला एवं कालान्तर में अमेरिका में प्रसारित हुआ। इंग्लैण्ड के हेनरी थॉमस बकल (1821–1862 ई.) ने इस उपागम को आगे बढ़ाया। बकल ने इसका अनुसरण करते हुए अपनी प्रख्यात कृति– 'हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन इन इंग्लैण्ड' का लेखन किया। बकल ने इस कृति में कहा है कि यदि इतिहास में भी न्यूटन जैसे वैज्ञानिक पृष्ठभूमि के व्यक्ति आए होते तो इतिहास विज्ञान बन जाता।

मूल्यांकन

1. प्रत्यक्षवाद के प्रभाववश ऐतिहासिक अध्ययन और अधिक वैज्ञानिक हो गया। तथ्यों, स्थानों एवं साक्ष्यों के महत्व पर बल दिया गया।
2. प्रत्यक्षवादी इतिहासकारों ने अपनी ऐतिहासिक दलील के लिये नए–नए स्रोतों की खोज आरंभ की।
3. इतिहास लेखन विषयनिष्ठता से वस्तुनिष्ठता की ओर अग्रसर हुआ। ऐतिहासिक घटना प्रमाणित तथ्यों एवं साक्ष्यों के आलोक में लिखी जाने लगी।
4. इतिहास, सामाजिक भौतिकी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। इससे प्राकृतिक घटनाओं की भांति मानवीय समाज का भी विश्लेषण संभव हुआ। इस तरह सामाजिक विज्ञान, मानव समाज को समझने का केंद्र बन गया।

आलोचना

विद्वानों ने प्रत्यक्षवादी उपगम की आलोचना निम्न बिन्दुओं के तहत की है।

1. प्रत्यक्षवादी अवधारणा ने इतिहास को समाजशास्त्र के अधीन ला दिया। समाजशास्त्र की तरह आंकड़ों एवं सूचनाओं का बृहत विश्लेषण किया गया।

2. प्रत्यक्षवादियों ने इतिहास में सामान्यीकरण पर बल दिया। चूंकि सभी मानव एक दूसरे से प्रत्येक दृष्टिकोण से भिन्न है अतः इतिहास में सामान्यीकरण संभव नहीं है।
3. प्रत्यक्षवाद राजनीतिक इतिहास पर ही प्रकाश डालता है न कि सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानसिक मुद्दों पर जिसकी वास्तव में तथ्यों द्वारा व्याख्या नहीं की जा सकती।
4. प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण का नैतिक न्याय, अग्रिम ऐतिहासिक अध्ययन के विषय के लिये सहायक सिद्ध नहीं होगा।

टिप्पणी

यद्यपि प्रत्यक्षवादी उपागम ने ऐतिहासिक अध्ययनों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के उपयोग पर बल दिया मगर ऐसे ऐतिहासिक शोधों में गुणवत्ता न आ सकी। इसने इतिहास को समाजशास्त्र के अधीन कर दिया।

3.5.1 प्रत्यक्षवाद

इतिहास लेखन पर प्रत्यक्षवाद का प्रभाव एक नए तरह के इतिहास के विकास में देखा जा सकता है जिसमें विवरण का बहुत सूक्ष्मता से ध्यान रखा जाता है। प्रत्यक्षवादियों ने चाहे वे रैंकियन हों या कॉमेटियन, तथ्यों की अंधभक्ति और विवरणों का एक मत तैयार किया और इतिहासकार उन सारे विवरणों की जांच में लग गए जो वे कर सकते थे। इसका परिणाम विस्तृत और सावधानीपूर्वक जुटाई ऐतिहासिक सामग्री की अप्रत्याशित वृद्धि रहा, चाहे वह साहित्यिक हो, पुरालेखीय हो, या पुरातात्विक हो।

कॉलिंगवुड ने हमें बताया कि "मोमसन या मैटलैंड जैसे सर्वश्रेष्ठ इतिहासकार विवरण के सबसे महान विद्वान बन गए कि वैश्विक इतिहास का आदर्श व्यर्थ का स्वप्न माने जाने लगे, और मोनोग्राफ ऐतिहासिक साहित्य का आदर्श बन गए।"

रैंकियन दृष्टिकोण का शोधन : तथ्यों के बीच के, घटनाओं के बीच के संबंध की खोज के जरिए कॉमेटियन प्रत्यक्षवाद ने अपने आपको इतिहास के रैंकियन दृष्टिकोण का मूल्यवान शोधक साबित किया। रैंकियन अनोखी घटनाओं और विशुद्ध विवरण के प्रति इतने चिंतित थे कि कभी–कभी उनका कार्य पूरी तरह से निराकार लगने लगता था।

व्यक्तिपरक तत्व का उन्मूलन : रैंकियन और कॉमेटियन प्रत्यक्षवादियों के लिए इतिहास का प्रत्येक तथ्य एक पृथक इकाई. होता है जो अनुभूति के पृथक कार्य द्वारा निर्धारित किए जाने योग्य होता है। इस प्रकार, अनगिनत क्रमवार तथ्य हो जाते थे। ऐसा हर तथ्य बाकी सभी से न केवल स्वतंत्र माना जाता था, बल्कि ज्ञाता स्वयं भी इस तरह स्वतंत्र माना जाता था कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सारे व्यक्तिपरक तत्व मिटाने पड़ते थे। इतिहासकार को तथ्यों के बारे में कोई निर्णय नहीं देना चाहिए। उसे केवल तथ्यों को मूल रूप से व्यक्त करना चाहिए।

सामान्य सूत्रीकरण के निर्माण की संभावना : कॉमेटियन प्रत्यक्षवादी का यह दावा विलक्षण महत्व का है कि मानव समाज वैज्ञानिक अध्ययन का अनुगामी होता है। प्रत्यक्षवाद से विकसित आधुनिक समाजविज्ञान कम से कम मानव गतिविधि के विशिष्ट दायरे में आम नियमों की तलाश करता है। कॉम्टे और बकल के बाद ऐतिहासिक विकास में सामान्य नियमों की तलाश मार्क्स, स्पेंगलर और टॉयनबी ने जारी

टिप्पणी

रखा। इतिहासकारों ने मानवीय व्यवहार के सामान्य नियम तो नहीं, लेकिन वास्तव में क्रांतियों की कुछ आम विशेषताओं का और औद्योगिकीकरण की प्रक्रियाओं का सामान्य निर्धारण जरूर प्रस्तुत किया। अरस्तू उन्हें ज्ञात एक सौ अट्ठावन संविधानों के अध्ययन के बाद यह कहने के लायक हुए कि क्रांतियों का सर्वाधिक आम कारण वंचितों और संपन्नों के बीच संघर्ष है। इस तरह के आम स्वभाव का निर्धारण साम्राज्यवादी विजय अभियानों, आबादी की आवाजाही, तानाशाहों के उदय आदि के संदर्भ में हो सकता है।

प्रत्यक्षवाद की आलोचना : गैर–ऐतिहासिक दृष्टिकोण

इतिहासकार प्रत्यक्षवाद के दृष्टिकोण को स्वीकार करने के अनिच्छुक रहे हैं, और इसके मूल रूप से गैर–ऐतिहासिक होने का संदेह करते रहे हैं। ऑर्थर मार्विक के अनुसार, ऐसा इसलिए है क्योंकि इतिहासकार को विशिष्ट और अद्वितीय से शुरुआत करनी होती है; वह इसमें ज्यादा दिलचस्पी लेता है कि वास्तव में क्या हुआ, बनिस्बत मानवीय और सामाजिक व्यवहार के सामान्य नियमों के।

ऐतिहासिक और प्राकृतिक प्रक्रियाएं समरूप नहीं होतीं। कॉलिंगवुड के अनुसार, प्रत्यक्षवाद कॉमेटियन स्वरूप में इतिहास लेखन के ज्यादा काम का नहीं था। ऐतिहासिक प्रक्रिया को प्राकृतिक प्रक्रिया के समरूप मानने की धारणा गलत थी; और उतनी ही गलत यह धारणा थी कि प्राकृतिक विज्ञान की विधियां ऐतिहासिक प्रक्रिया के अध्ययन और व्याख्या के लिए पर्याप्त होती हैं। इतिहास अलग–अलग तथ्यों का ज्ञान होता है, सामान्य नियमों के ज्ञान का विज्ञान होता है। इतिहासकारों का काम तथ्यों का पता लगाना और उन्हें प्रस्तुत करना था जो कि ऐसा कार्य है जिसमें प्रत्यक्षवाद के पास उन्हें सिखाने लायक कुछ भी उपयोगी नहीं था। इतिहासकारों का काम सामान्य नियमों का प्रतिपादन करना नहीं था।

बड़ी समस्याओं को छोड़कर, छोटी समस्याओं पर ध्यान देना : कॉलिंगवुड के अनुसार, आधुनिक इतिहास लेखन के लिए प्रत्यक्षवाद की विरासत में छोटी समस्याओं से निपटने में असाधारण महारत और बड़ी समस्याओं से निपटने में असाधारण कमजोरी का संगम था।

सूक्ष्म विवरणों पर प्रत्यक्षवादी आग्रह ने इतिहासकार को बड़ी घटनाओं या बड़ी समस्याओं से परे कर दिया। प्रत्यक्षवादी युग के महानतम इतिहासकार मोमसेन ने विवरण पर अद्भुत तरीके से ध्यान देते हुए ऐतिहासिक सामग्री का विशाल संग्रह इकट्ठा किया था। हालांकि, रोम का इतिहास लिखने का उनका प्रयास ठीक उसी समय असफल हो गया जहां रोमन इतिहास में उनका स्वयं का योगदान अहम होना शुरू हुआ था। उनकी 'हिस्ट्री ऑफ रोम' एक्टिअम के युद्ध पर समाप्त होती है।

इसी तरह ई. एच. कार भी सोचते हैं कि क्या उन्नीसवीं शताब्दी की तथ्यों की अंधभक्ति ने इतिहासकार के रूप में एक्टन को कुंठित किया। एक्टन ने दुख जताया कि इतिहासकार की जरूरतों ने उसे विद्वान व्यक्ति से विश्वकोश संग्रहकर्ता में बदल दिया।

मूल्य निर्णय पर प्रत्यक्षवादी प्रतिबंध का दुर्बलकारी प्रभाव : अंत में, कॉलिंगवुड दर्शाता है कि निर्णय देने में प्रत्यक्षवादी नियम का इतिहासकारों पर प्रभाव कम दुर्बलकारी नहीं रहा। निस्संदेह, इस नियम ने इतिहासकारों को नीति की बुद्धिमत्ता पर, किसी आर्थिक प्रणाली की मजबूती पर, या कला, विज्ञान अथवा धर्म में किसी खास आंदोलन पर चर्चा करने से रोका, चाहे वह उन्नत हो या न हो। मूल्य निर्णय पर

प्रत्यक्षवादी प्रतिबंध के कारण प्रत्यक्षवादी इतिहासकार नहीं समझ पाए कि प्राचीन लोग दासप्रथा के बारे में क्या सोचते थे या रोम के लोग अपनी सम्राट–पूजा की प्रथा के बारे में क्या महसूस करते थे।

टिप्पणी

रोमांटिक इतिहासकारों के लिए इस तरह की जानकारियां बिलकुल उचित थीं जो कि चीजों के अंदर जाने की कोशिश करते थे, लेकिन उनके उत्तराधिकारियों, प्रत्यक्षवादियों के दायरे से ये सारी समस्याएं बाहर थीं। तथ्यों को परखने से इनकार का मतलब ये निकला कि इतिहास केवल बाहरी घटनाओं का इतिहास हो सकता है, उन विचारों का इतिहास नहीं, जो इन घटनाओं से उभरे थे। यही कारण था कि प्रत्यक्षवादी इतिहासकारों ने त्रुटिवश इसे राजनीतिक इतिहास से जोड़कर देखा और कला, धर्म, विज्ञान आदि के इतिहास की अनदेखी कर दी। प्रत्यक्षवादी इतिहास लेखन की सारी गलतियां ऐतिहासिक सिद्धांत में एक विशेष गलती यानी वैज्ञानिक तथ्यों में झूठी समरूपता से पैदा हुई हैं, जो कि अनुभवजनित तथ्य हैं, जिस रूप में सामने आते हैं, उसी रूप में उन पर विचार किया जाता है, और जो अब पुनर्स्मरण या दोहराव से परे जा रहे ऐतिहासिक तथ्य विचार की वस्तुएं नहीं हो सकते।

निष्कर्ष के रूप में, हम कह सकते हैं कि 'प्रत्यक्षवाद' यानी पॉजिटिविज्म का प्रयोग सबसे पहले सेंट सिमोन ने किया था और बाद में 19वीं सदी के पूर्वार्ध में फ्रांसीसी समाजशास्त्री और दार्शनिक ऑगस्ट कॉम्टे (1798–1857) ने इसे लोकप्रिय बनाया, जो प्रत्यक्षवादी आंदोलन के जनक माने जाते हैं।

कॉम्टे ने सोशियोलॉजी शब्द का भी आविष्कार किया था। 1800 के उत्तरार्ध में, प्रत्यक्षवाद शेष यूरोप और अमेरिका तक फैलना शुरू हो गया।

यदि हमें दर्शन के इतिहास में अभिव्यक्ति खोजनी होती, तो हमें डेविड ह्यूम के शब्दों की ओर देखना होगा– "जब हम पुस्तकालय चलाते हैं, इन सिद्धांतों को समझाते हैं, तो हम कौन–सी बर्बादी करते हैं? उदाहरण के लिए, अगर हम दिव्यता या मत तत्वमीमांसा की किसी किताब को हाथ में लेते हैं, तो हमें पूछना चाहिए, 'क्या इसमें मात्रा या संख्या से संबंधित कोई अमूर्त तर्क है?' नहीं। 'क्या इसमें कोई हकीकत और अस्तित्व से संबंधित कोई प्रायोगिक तर्क है?' नहीं। तब उसे आग में फेंक दीजिए, क्योंकि इसमें कुतर्क और भ्रम के अलावा कुछ नहीं है।"

3.5.2 उदारवाद

इंग्लैण्ड की राजनीति में व्हिग एवं टोरी दलों का आरंभ इंग्लैण्ड की रक्तहीन क्रांति (1688 ई.) के कुछ समय पहले हुआ था। इंग्लैण्ड में संसद द्वारा एक 'बहिष्कार बिल' प्रस्तुत किया गया था जिसका उद्देश्य जेम्स द्वितीय के स्थान पर 'ड्यूक आफ मन्मथ' को राजा बनाना था। मगर इंग्लैण्ड के शासक चार्ल्स द्वितीय ने अपनी दूरदर्शिता एवं कूटनीति से संसद के इस प्रयास को नाकाम कर दिया। संसद द्वारा प्रस्तुत बहिष्कार बिल भले ही असफल रहा किन्तु इस प्रस्ताव के कारण इंग्लैण्ड की राजनीति में पहली बार दो राजनीतिक दल अस्तित्व में आये। जेम्स द्वितीय के राजा बनने का विरोध करने वाला दल पोटिशनर कहलाया। यह दल इस विषय पर चर्चा करने के लिए संसद की बैठक बुलाने के पक्ष में था। दूसरा दल अबहोर कहलाया जो इस प्रस्ताव का विरोधी था और चार्ल्स द्वितीय द्वारा अपना उत्तराधिकारी चुनने का समर्थक था। बाद में पोटिशनर दल व्हिग अर्थात् उदारवादी दल कहलाया एवं अबोहर दल टोरी अर्थात् अनुदारवादी दल

टिप्पणी

कहलाया। व्हिग कैथोलिक विरोधी थे तथा राजा के विशेषाधिकारों पर और भी संसदीय सुधारों जैसे जल्दी चुनाव व नियमित अधिवेशन के पक्ष में थे। इसके विपरीत टोरी इंग्लैण्ड के चर्च व राजा के विशेषधिकारों के समर्थक थे। 'व्हिग दल के प्रयासों के बाद भी जेम्स द्वितीय 1685 ई. में निर्विरोध इंग्लैण्ड का राजा बना परन्तु 1688 ई. की गौरवपूर्ण क्रांति के बाद उसे भागना पड़ा एवं विलियम ऑफ आरेन्ज व उसकी पत्नी मेरी संयुक्त रूप से इंग्लैण्ड के शासक बने और अंततः व्हिग दल की इच्छा पूरी हुई।

शासक बनने से पहले विलियम व मेरी को बिल ऑफ राइट्स (अधिकार विधेयक) स्वीकार करना पड़ा। चूंकि विलियम मेरी संतानहीन थे अतः बिल आफ राइट्स द्वारा व्यवस्था की गई कि राजा रानी की मृत्योपरान्त उत्तराधिकार मेरी की बहन एन व उसकी संतान को दिया जायेगा। यह नियम बनाया गया कि कोई भी पोप समर्थक तथा रोमन कैथोलिक या जिसने कैथोलिक से विवाह किया हो इंग्लैण्ड का शासक नहीं बन सकता। चूंकि 1688 ई. की क्रांति के समय व्हिग व टोरी दल एक हो गये थे, अतः कोई भी दल अब यह नहीं चाहता था कि जेम्स द्वितीय के वापस आ जाने पर क्रांति विफल हो। इस कारण व्हिग व टोरी दोनों ने ही बिल आफ राइट्स का समर्थन किया।

1701 ई. की स्थिति में टोरी दल बहुमत में था परन्तु उनमें आपस की फूट थी एवं व्हिग दल अल्पमत में था परंतु उनमें एकता थी। टोरी एलिकन धर्म के अनुयायी थे। चर्च इनके देश प्रेम और धार्मिक स्वतंत्रता का प्रतीक था। वे यूरोपीय मामलों में उलझकर अपने देश की जन–धन हानि के विरुद्ध थे, अतः टोरियों ने यूरोपीय युद्धों व विलयम की विदेश नीति के प्रति असहमति प्रकट की थी।

टोरी, व्हिग के व्यापारिक हितों का आलोचक भी थे। टोरी संसद के जल्दी एवं बंधनहीन चुनाव चाहते थे। दूसरी और व्हिगों की समरूपता धनी वर्ग एवं सरकार से स्थापित होती जा रही थी।

युद्धों को चलाना उनकी जिम्मेदारी थी एवं उसके लिये उन्हें धन का इंतजाम भी करना था। व्हिगों ने अपने प्रयासों से 1716 ई. में सप्तवर्षीय कानून पास कराया जिसके तहत संसद की अवधि सात वर्ष बढ़ाई. गई। इस प्रकार वे संवैधानिक पद्धति में तो रूढ़िवादी हो गये परंतु व्यावहारिक राजनीति में उन्होंने नये–नये प्रयोग किये। महत्वपूर्ण आर्थिक सुधारों, जैसे– सिक्का सुधार और लंदन बेक की स्थापना से उनकी लोकप्रियता बढ़ी। अब वे राजा के समर्थन से प्रशासन कार्य अपने हाथ में लेकर चुनाव व्यवस्था को अपने ढंग से ढालने लगे। इस प्रकार 18वीं सदी के आरंभ में इंग्लैण्ड की राजनीति में दो दल व्हिग एवं टोरी अपनी विचाराधाराओं के साथ स्पष्टतः दिखाई. देने लगे।

यूरोप के विभिन्न देशों की भांति 19 वीं शताब्दी तक इंग्लैंड के ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों ने भी इतिहास लेखन की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया। इतिहास को पढ़ाने की न तो जरूरत महसूस की गई और न ही पढ़ाने का कोई क्रम तय हो पाया। केवल प्राचीन इतिहास को साहित्य की शाखा के रूप में कुछ स्थानों पर पढ़ाया गया। ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज जैसे बड़े विश्वविद्यालयों में इतिहास के प्रोफेसर का पद ही नहीं था। जेम्स वेस्टफाल थाम्पसन ने भी लिखा है कि, ''इंग्लैण्ड में इतिहास रुका था और उसके 19वीं शताब्दी के लम्बे समय तक इसी प्रकार बने रहने की आशा थी।

इन विश्वविद्यालयों में इतिहास के अध्यापन का क्रम 1867 ई. और 1869 ई. में क्रमशः विलियम स्टब्स और जॉन आर. सीले की ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों

टिप्पणी

में नियुक्ति से प्रारम्भ हुआ। थाम्पसन का मत है कि, इंग्लैण्ड में इतिहासकारों का कैम्ब्रिज स्कूल के अतिरिक्त किसी स्वतंत्र स्कूल का विकास नहीं हुआ था। इस स्कूल का एकमात्र योगदान एवं महत्व यह है कि इसने वैज्ञानिक और वस्तुपरक इतिहास लेखन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत की। ऑक्सफोर्ड स्कूल के महत्वपूर्ण इतिहासकारों में निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं–

1. विलियम स्टब्स, 2. एडवर्ड अगस्टस फ्रीमैन, 3. जान रिचर्ड ग्रीन,
4. फ्रेडरिक यार्क पॉवेल, 5. लार्ड एक्टन, 6. चार्ल्स हार्डिग फर्थ,
7. जॉन आर. सीले, 8. मेंडल क्रिगटन, 9. सेम्युअल आर. गार्डिनर,
10. एलीन पावर, 11. आर.जी. कालिंगवुड, 12. टायनबी,
13. बरट्रेण्ड रसल आदि।

इन विद्वानों ने अपने–अपने ग्रन्थों में आक्सफोर्ड की वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ इतिहास लेखन की विधा का उल्लेखनीय वर्णन किया है।

भारत से संबंधित कैम्ब्रिज स्कूल के इतिहासकारों का भारतीय राष्ट्रवाद से गहरा संबंध रहा है। इनकी तुलना हम सरलता से राष्ट्रवादी और मार्क्सवादी इतिहासकारों से कर सकते है। उनका लेखन मुख्य रूप से व्हिग परंपरा से प्रभावित था। प्रसिद्ध विद्वान पर्सिवल स्पीयर के अनुसार यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि, ''भारत में बौद्धिक उद्‌भव और विकास तथा पाश्चात्य विचारकों के मध्य कुछ संबंध निश्चित रूप से रहे हैं। ''स्पीयर के ही एक छात्र एरिक स्टोक ने अपनी पुस्तक जिसका शीर्षक ''इंगलिश यूटीलिटेरियन्स एण्ड इण्डिया'' है, में इन संबंधों का विस्तृत वर्णन और व्याख्या की है। इस विचार को डंकन फोरम ने अपनी पुस्तक के माध्यम से और अधिक बढ़ाया है।

इंग्लैण्ड में व्हिग इतिहास दर्शन के प्रतिपादन का श्रेय हेलम (1777–1859 ई.) को जाता है। उन्होंने इंग्लैण्ड के इतिहास लेखन का एक नवीन दिशा दी। हेलम व्हिग दल से संबंधित थे एवं उन्होंने हेनरी सप्तम से जार्ज द्वितीय की मृत्यु तक के इंग्लैण्ड के संविधान का इतिहास (कांस्टीट्यूशनल हिस्ट्री आफ इंग्लैण्ड फ्राम द एक्सेशन ऑफ हेनरी द सेवन्थ टू द डेथ ऑफ जार्ज सेकेण्ड) लिखकर व्हिग के इतिहास दर्शन का प्रतिपादन किया। चूंकि व्हिग 1688 ई. की शानदार क्रांति के प्रबल समर्थक थे अतः हेलम ने अपनी इस कृति में 1688 ई. की क्रांति का गुणणान किया। जेम्स प्रथम व चार्ल्स प्रथम के हेलम कट्‌टर विरोधी थे। उन्होंने व्हिग परंपरा के अनुरूप धार्मिक और राजनीतिक दासता का कड़ा विरोध किया और जनता के कानूनी अधिकार एवं स्वाधीनता का समर्थन किया।

टामस बेविंगटन मैकाले (1880–1859 ई.) को इतिहास लेखन की व्हिग परंपरा का मुख्य प्रतिपादक माना जाता है। मैकाले इंग्लैण्ड का एक महान साहित्यक इतिहासकार था। भाग्य एवं प्रतिभा दोनों ही मैकाले पर मेहरबान थी जिन्होंने उसे थोड़े समय में प्रसिद्ध दिला दी। थाम्सन के अनुसार मैकाले प्रारंभिक दौर में साहित्यिक प्रतिभा के कारण प्रसिद्ध हुआ। कालान्तर में एक लम्बे राजनीतिक अनुभव एवं उसके अद्वितीय स्पष्ट एवं बोधगम्य तौर तरीके ने उसे व्हिग राजनीतिक दर्शन एवं परंपरा का प्रमुख प्रतिपादक बना दिया। मैकाले 1818 से 1822 ई. तक जब कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था उसके पूर्व वह टोपी द विचारधारा के प्रभाव में था। चार्ल्स आस्टिन के प्रभाव में आकार वह व्हिग विचारधारा से प्रभावित हुआ और 1819 ई. के छः कानूनों के

टिप्पणी

पश्चात् उसने खुले तौर पर व्हिग सिद्धांत स्वीकार कर लिया। उसने प्लेटो के 'रिपब्लिक का व्हिग दृष्टिकोण से अध्ययन किया। 1832 ई. का इंग्लैण्ड सुधार अधिनियम उसके जीवन का एक महत्वपूर्ण मामला रहा। प्रो. ग्रान्ट एण्ड टेम्परले के अनुसार 1832 ई. के अधिनियम ने 1688 ई. की क्रांति को पूरा कर दिया।

मैकाले 23 वर्ष की उम्र में व्हिग एडिनर्व रिव्यू के सम्पादक जेफरी से आकर्षित हुआ और उसने नाइट्स–त्रैमासिक पत्रिका में लेख प्रकाशित कराया। अपने प्रसिद्ध लेख 1825 ई. द्वारा वह जेफरी के जर्नल से जुड़ा और शीघ्रता के साथ मैकाले का नाम लन्दन समाज के लिये एक जाना–पहचाना नाम हो गया और उसके बाद 20 वर्षों तक वह इसमें निबंध लिखता रहा। 1839 ई. के बाद उसने अपना ध्यान इंग्लैण्ड का इतिहास लिखने पर केंद्रित किया। किसी भी अन्य इतिहासकार की तुलना में मैकाले के पास संसद एवं प्रशासन का अत्यधिक अनुभव था।

मैकाले व्हिग परंपरा से इतना अधिक प्रभावित था कि हेलतम ने स्टुअर्ट शासकों के प्रति जो थोड़ी–बहुत सहानुभूति दिखाई. मैकाले ने उसे भी खेदपूर्ण दृष्टि से देखा। पार्लियामेण्ट का सदस्य बनने के बाद मैकाले ने रिफार्म बिल के लिये अत्यधिक प्रयास किये थे और व्हिग दृष्टिकोण से ही उसने इंग्लैण्ड का इतिहास लिखा। इस ग्रंथ की लोकप्रियता का आलम यह था कि उसने वाल्टर स्काट के उपन्यासों की लोकप्रियता को भी पीछे छोड़ दिया। इस ग्रंथ में मैकाले ने अंग्रेज जाति के गौरव के बखान के साथ–साथ यह भी स्पष्ट किया है कि अंग्रेजों ने विश्व को स्वाधीनता एवं संविधान का प्रसाद देकर अनुगृहीत किया है। अपने व्हिग दृष्टिकोण के चलते मैकाले ने अपने प्रतिद्वन्द्वियों पर अनुचित कुठारघात भी किया है। मार्लवरों क्लेवर हाउस एवं वेन आदि पर प्रहार किया है।

थाम्पसन के अनुसार मैकाले पूरे तौर पर एवं हमेशा एक व्हिग इतिहासकार था। यह अतीत में से उन्हीं का चयन करता था जो कि व्हिग पार्टी के सिद्धातों के प्रति प्रशंसात्मक हो। वह बिना किसी दया के टोरियों की खाल उतारने की कोशिश करता था खासकर उनके सामने जो उनका बचाव करते थे। विलियम आफ ओरेन्ज को मैकाले ने जहां नायक के रूप में प्रस्तुत किया है वहीं जेम्स द्वितीय को उसने खलनायक साबित किया है। काली चिमनियों को और काला करने में उसे अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव होता था। मैकाले अपने पूर्वाग्रहों के अनुरूप तथ्यों को तोड़–मरोड़कर प्रस्तुत करने एवं दक्षता के साथ अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण प्रस्तुत करने की कला में तेज था।

मैकाले ने अपने व्हिग पूर्वाग्रहों के कारण मार्लवरों के चरित्र का यथार्थ चित्रण नहीं किया।

मार्लवरों के प्रति उसके विचार सत्य की उपहासयुक्त अनुकृति प्रतीत होते हैं। यहां पर मार्लवरों के विरुद्ध सभी व्हिग इतिहासकार टोरियों के प्रति परंपरागत बैर का शिकार हो जाते हैं। राष्ट्रीय चेतना में मार्लवरों जैसे प्रतिभा सम्पन्न लोगों पर व्हिग इतिहासकार लोभी क्षुद्र विश्वासघाती का अमिट ठप्पा लगाने का प्रयास करते हैं। अपने पूर्वग्रहों के चलते व्हिग इतिहासकार अतीत का अतिरंजित वर्णन भी वर्तमान के संदर्भ में करते हैं और यह भी नहीं देखते कि साक्ष्य उनके मत का विरोध कर रहे हैं।

टिप्पणी

इस तारतम्य में सैमुअल रावसन गार्डनर मैकाले की आलोचना करते हुए लिखते हैं कि जिस तरह से मैकाले एवं फोर्सटर आदि अतीत का सम्मान करते हैं या यूं कहें कि स्वीकृत या अस्वीकृत ढंग से अतीत की वर्तमान के साथ तुलना करते हैं। वह वास्तविक ऐतिहासिक ज्ञान के लिए विनाशकारी है। इस प्रकार अधिकांश इतिहासकारों ने वर्तमान के अनुसार अतीत की व्याख्या करने के लिए व्हिग इतिहासकारों की आलोचना की है।

प्रो. एस. बटरफील्ड ने अपनी कृति द व्हिग इण्टर आफ हिस्ट्री में 130 से अधिक पृष्ठो में इतिहास की व्हिग व्याख्या की आलोचना की है। व्हिग व्याख्या के खिलाफ उनके मुख्य आरोपों में एक यही था कि व्हिग इतिहासकारों ने वर्तमान के संदर्भ में अतीत का अध्ययन करना ही इतिहास के तमाम पापों और कुतकों की जड़ है। अनैतिहासिक शब्द से हम जो समझते हैं वह यही है।

व्हिग परंपरा के एक और इतिहासकार जी.एम.ट्रेवेलान थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में स्वीकार किया था कि उनका पालन–पोषण एक ऐसे परिवार में हुआ था जिसमें व्हिग परंपरा काफी मात्रा में थी। ई.एच.कार ने उसे व्हिग परंपरा का अंतिम महान उदारवादी इतिहासकार कहते हुए बताया है कि वह अपनी वंश परंपरा की जड़ें महान व्हिग इतिहासकार जार्ज ओटो ट्रेवलान से लेकर व्हिग इतिहासकारों में महानतम मैकाले तक खोजता है। जी. एम. ट्रेवलान ने अपनी श्रेष्ठतम परिपक्व कृति इंग्लैण्ड अंडर क्वीन एन के व्हिग परंपरा के उद्‌भव एवं विकास पर प्रकाश डालते हुए व्हिग परंपरा की जड़ों को मजबूती के साथ स्थापित करने का प्रयास किया है।

एच. बटरफील्ड ने अपनी रचना द व्हिग इण्टरप्रिटेशन आफ हिस्ट्री में फाक्स के अलावा ऐसे एक भी व्हिग की चर्चा नहीं की है, जो इतिहासकार न था और न ही एक्टन के अलावा किसी ऐसे इतिहासकार की चर्चा है जो व्हिग न था। बटरफील्ड ने इस रचना में व्हिग इतिहासकार की चर्चा है जो व्हिग न था। बटरफील्ड ने इस रचना में व्हिग इतिहासकारों द्वारा प्रतिपादित व्हिग सिद्धातों का आलोचनात्क अध्ययन प्रस्तुत किया है। 1944 ई. में बटरफील्ड ने एक अन्य पुस्तक 'द इंग्लिशमेन एण्ड हित हिस्ट्री' में यह निर्णय दिया कि इतिहास की व्हिग व्याख्या ही उसकी अंग्रेजी व्याख्या है। इस कृति में बटरफील्ड ने अंग्रेज का अपने इतिहासकार के साथ रिश्ता एवं वर्तमान और अतीत के गठबंधन के बारे में भी विवरण प्रस्तुत किया है। बटरफील्ड की कृतियों से हमें व्हिग परंपरा एवं व्हिग इतिहासकारों के दृष्टिकोण का पता चलता है।

इससे थोड़ी भिन्न परंपरा के अनुयायी जॉन गैनाप्पर तथा रॉबिन्सन थे जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में इतिहास लेखन की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। इनके लेखन को आधार बनाकर कालान्तर में ए. सील, सी.ए. बेली और जे. ब्राउन ने भी भारतीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। सीले ने अपनी अत्यन्त ख्याति प्राप्त और विवादों से परिपूर्ण पुस्तक ''दि इमरजैन्स ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म'' में साधारण वर्ग के स्थान पर श्रेष्ठजनों को अपने वर्णन का आधार बनाया। उन्होंने अपने ग्रंथ में यह लिखा है कि, प्रारम्भ में पश्चिमी देशों में और भारत के प्रमुख नगरों में शिक्षित भारतीयों ने ब्रिटिश शासन को अपना पूरा सहयोग प्रदान किया परंतु जब उन्हें प्रतीत हुआ कि उनकी नौकरियां प्राप्त करने की इच्छा पूरी नहीं हुई, तब उन्होंने अंग्रेजी राज का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। सील का यह भी दृढ़ विश्वास है कि भारतीय राष्ट्रवाद के गठन में सर्वहारा वर्ग के अंसतोष ने कोई विशेष योगदान नहीं दिया,

अपितु राष्ट्र की जीर्ण–शीर्ण आर्थिक स्थिति को इसके लिए उत्तरदायी कहा जा सकता है, जो वस्तुतः ब्रिटिश शासन के अंतर्गत पूरी तरह से ध्वंस हो गयी थी और इस आर्थिक अव्यवस्था और दुर्बलता ने लोगों में राष्ट्रवाद की भावना को भड़काया था।

टिप्पणी

सील का वर्णन पूरी तरह मार्क्सवादी विचारधारा का विरोध प्रस्तुत करता है, लेकिन उसने अपने लेखन में व्यंग्य और कटुता प्रदर्शन किये बिना बहुत शांत, तर्कसंगत और विद्वतापूर्ण पद्धति से अपने विचारों का प्रस्तुतीकरण किया है। कांग्रेस के भी वह कटु आलोचक हैं और उसे एक ''बैडोल, असंगठित और शिथिल'' संस्था मानते हैं। उनकी यह भी मान्यता है कि कांग्रेस निश्चित रूप से कोई राष्ट्रीय संस्था नहीं है। उन्होंने लिखा है कि अंग्रेजों और भारतीयों के मध्य स्वतंत्रता हेतु किया गया संग्राम कदाचित दो असमान योद्धाओं की लड़ाई. थी, जिसमें एक पक्ष अत्यंत शक्ति सम्पन्न और दूसरा दुर्बल था। उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में यह भी लिखा है कि उसमें मौलिक, वैचारिक तथ्य का पूरी तरह से अभाव है तथा जाति, धर्म, भाषा और विशिष्ट लोगों की ही इसमें मुख्य भागीदारी रही है। अंग्रेजों ने सीले के अनुसार, भारत पर शासन करने में मालिक और सेवक के सिद्धांत को न अपनाकर संरक्षक व आश्रित के सिद्धांत को अपनाया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उसने भारतीय राष्ट्रवाद के अध्ययन के लिए नया मार्ग प्रस्तुत किया है।

3.5.3 परंपरागत मार्क्सवाद

मार्क्सवादी विचारधारा इस समय की लोकप्रिय विचारधाराओं में से एक है। 19 वीं शताब्दी में जिन चिंतकों और विचारकों ने यथार्थवादी व मानवतावादी सोच से संसार का परिचय करया था, इनमें कार्ल मार्क्स का नाम प्रमुख है। कार्ल मार्क्स साहित्यिक विचारक नहीं थे, लेकिन फिर भी इन्होंने विश्व भर के साहित्यकारों पर अपनी छाप छोड़ी है।

कार्ल मार्क्स इतिहास की मार्क्सवादी अवधारणा के थे। उनका जन्म 5 मई, 1818 ई. को जर्मनी के एक छोटे–से नगर ट्रेब्स में एक यहूदी परिवार में हुआ था। उनका पूरा नाम कार्ल हेनरिख मार्क्स (Karl Henerich Marx) था। मार्क्स के पिता ने राजनीतिक कारणों से 1824 ई. में यहूदी धर्म के स्थान पर प्रोटेस्टेण्ट धर्म स्वीकार कर लिया था। मार्क्स ने 1836 ई. में बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। वहां वे कानून पढ़ते थे पर उनकी रुचि इतिहास एवं दर्शन के प्रति थी। मार्क्स के स्वभाव में एक विचारक की गम्भीरता और एक क्रांतिकारी की कर्मठता व उग्रता दोनों मौजूद थीं। वे यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर बनना चाहते थे पर उनके उग्र विचारों के कारण उन्हें यह पद नहीं दिया गया।

मार्क्स को 1833 ई. में एक अच्छे घर की लड़की जेनी से प्रेम हो गया और उन्होंने उसी से विवाह किया। जर्मनी में अपने स्वतंत्र विचारों की पूछ न देख मार्क्स पेरिस चले गए और वहां उन्होंने फ्रेंको–जर्मन शब्दकोष का सम्पादन किया। 1844 ई. में जर्मन विद्वान फ्रेडरिक ऐंगल्स से उनकी दोस्ती हुई जो हमेशा कायम रही। क्रांतिकारी विचारों के कारण मार्क्स को जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम आदि देशों से संबंध तोड़ना पड़ा। अपनी उम्र के अंतिम 34 वर्ष उन्होंने इंग्लैंड में बिताये और ब्रिटिश म्यूजियम में अध्ययन कार्य किया और भविष्य के लिए क्रांति के मार्ग की रूपरेखा बनाई। इंग्लैंड में रहकर उन्होंने लगातार मजदूर आन्दोलनों में हिस्सा लिया और अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। अध्ययन के बाद उन्होंने चर्चित कृति 'पूंजी' (Das Capital) लिखी। इस कृति का प्रथम भाग उन्होंने

14 मार्च, 1884 ई. को लिखा। उनकी मृत्यु के बाद दूसरा व तीसरा भाग ऐंगेल्स ने लिखा और उसे प्रकाशित करा दिया। मार्क्स की यह पुस्तक 'Das Capital' मार्क्सवाद की आधारशिला है।

टिप्पणी

मार्क्सवाद का इतिहास और व्याख्या

मार्क्स के समय के हेनरी मार्गन ने अपनी पुस्तक 'एंशिएंट सोसायटी' में आदिम मानव के इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या करके, मार्क्स के समय ही मार्क्सवादी इतिहास लिखना शुरू कर दिया था।

20 वीं शताब्दी के मध्य ग्रेट ब्रिटेन में भी कम्युनिस्ट पार्टी के एक सक्रिय सदस्य के रूप में इतिहासकार ई.पी. थाम्सन ने मार्क्सवादी हिस्टोरियन ग्रुप की स्थापना में सहयोग किया जो कालान्तर में असाधारण रूप से विकासशील सिद्ध हुआ। थाम्सन के साथी सदस्यों में क्रिस्टोफर हिल, एरिक हॉब्सबाम और राडनी हिल्टन इत्यादि शामिल थे। इसी मार्क्सवादी हिस्टोरिकल ग्रुप द्वारा आज की प्रसिद्ध ऐतिहासिक पत्रिका 'पास्ट एंड प्रजेंट' का बीजारोपण किया। 1950 ई. के बाद भारत में भी मार्क्सवादी इतिहास लेखन की ओर लेखकों की रुचि बढ़ी। भारतीय मार्क्सवादी विद्वानों को 'पास्ट एंड प्रजेंट' जैसी पत्रिका, 'संक्रमण पर बहस' और हिल, हाब्सन तथा थाम्सन जैसे इतिहासकारों की रचनाएं सर्वाधिक प्रभावशाली लगीं, जिन्हें पश्चिम में शैक्षणिक प्रतिष्ठानों ने अक्सर दर–किनार करने का प्रयास किया था। विद्वानों की मान्यता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय इतिहास लेखन में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के प्रभाव क्षेत्र का असाधारण विस्तार हुआ है। यह आधुनिक और मध्यकालीन भारतीय इतिहास के संबंध में तो सच लगता ही है, प्राचीन भारतीय इतिहास के बारे में भी सही लगता है।

प्राचीन भारतीय इतिहास का मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लेखन

भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन के प्रारम्भिक प्रयास के रूप में बी.एन. दत्त की दो पुस्तकों 'डाइलेक्टिक्स ऑफ लैण्ड ओनरशिप इन इण्डिया' और 'कास्ट एण्ड क्लास इन एंशिएंट इण्डिया' को लिया जा सकता है। भारत के चर्चित मार्क्सवादी विचारक श्रीपाद अमृत डांगे ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखी गई अपनी रचना 'इण्डिया फ्रॉम प्रिमिटिव कम्यूनिज्म टू स्लेवरी' में यह सिद्ध किया है कि भारत भी पश्चिमी देशों की भांति विकास के विभिन्न चरणों से होकर गुजरा है। डांगे ने आर्यों की प्राचीन सामुदायिक व्यवस्था की समाप्ति के बाद भारत में दास समाज के उदय का उल्लेख किया है। मार्क्सवाद के प्रति अत्यधिक झुकाव के बाद भी दत्त व डांगे की रचनाओं को भारतीय इतिहास में कोई विशेष महत्व नहीं मिला।

भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा में दामोदर धर्मानन्द कोसांबी का प्रमुख स्थान है। मार्क्सवादी इतिहासकार डी.डी. कोसांबी की दो प्रमुख रचनाओं 'एन इण्ट्रोडक्शन टू दि स्टडी ऑफ हिस्ट्री' (1956) और 'कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ एंशिएंट इण्डिया' (1964) को मार्क्सवादी रचनाओं के रूप में इतिहास जगत में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कोसांबी अपनी रचनाओं में भारतीय समाज के महत्व को अस्वीकार करते हैं।

प्राचीन भारतीय मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा में कोसांबी के बाद रामशरण शर्मा जैसे मार्क्सवादी इतिहासकार का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है। उनकी प्रमुख रचनाओं– 'प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं', 'प्राचीन

टिप्पणी

भारत में भौतिक प्रगति और सामाजिक संरचनाएं', 'सामंतीय समाज और संस्कृति', 'शुद्राज इन एंशिएंट इण्डिया' एवं 'भारतीय सामंतवाद' आदि में मार्क्सवादी दृष्टिकोण की छाप देखी जा सकती है। रामशरण शर्मा भी भारत में सामंतवाद के विकास को क्षेत्रीय प्रभावशाली व्यक्तियों के एक शक्तिशाली वर्ग के रूप में देखते हैं। यही सामंतवादी वर्ग भारत में सामाजिक रूप से शक्तिशाली वर्ग बना।

मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा में डी. आर. चानना की रचना 'स्लेवरी इन एंशियण्ट इण्डिया' (1960), रोमिला थापर की रचनाएं 'ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', 'आइडियोलॉजी एण्ड द इण्टरप्रिटेशन ऑफ अर्ली इण्डियन हिस्ट्री', एल. गोपालकृत 'द इकॉनोमिक लाइफ ऑफ नार्थ इण्डिया' आदि महत्वपूर्ण हैं।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास का मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लेखन

मध्यकालीन भारतीय इतिहास का जिन इतिहासकारों ने मार्क्सवादी इतिहास के दृष्टिकोण से लेखन किया है, उनमें इरफान हबीब का नाम प्रमुख है। इरफान हबीब मार्क्स के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बहुत प्रभावित थे। उनका मानना था कि मार्क्स को समझने के लिए भी एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

कोई भी यह देख सकता है कि मार्क्स ने पूंजीवाद के विकास या राजनीतिक इतिहास पर जिस प्रकार अपनी ही विधि को अपने कार्यों पर लागू किया है, वह कहीं अधिक बेहतर तरीका है और न ही इसमें कोई सच्चाई. है कि मार्क्स का मत था कि सभी प्रकार के विचार भौतिक विश्व को प्रतिबिम्बित करते हैं। इसके विपरीत मार्क्स ने बस यह चेतावनी दी थी कि सैद्धांतिक या वैचारिक रूपों को प्राकृतिक विज्ञान के समाज में यथातथ्य रूप में निर्धारित किया जा सकता है बल्कि उनका यह भी मानना था कि मानव समाज की प्रगति उसे आवश्यकता के क्षेत्र से निकालकर स्वतंत्रता की तरफ ले जाती है। इस फार्मूले का मतलब इसके सिवाए और क्या हो सकता है कि मानव समाज की हर प्रगति के साथ, भौतिक परिस्थितियों का महत्व मानव चेतना के सामने और कम हो जाता है। इसके अलावा मार्क्स ने आख्याताओं की इस अवधारणा को भी निश्चय ही माना होगा कि मनुष्य एक अकेले व्यक्ति के रूप में मुख्यतः अपने हितों के लिए ही काम करता है।

इरफान हबीब के अलावा नूरुल हसन व बी.आर. ग्रोवर आदि ने भी मध्यकालीन भारतीय इतिहास का मार्क्सवादी दृष्टि से लेखन किया। सोवियत इतिहासकार रेसनर व मार्क्सवादी इतिहासकार रजनी पामदत्त ने 'इण्डिया टुडे' में विचार व्यक्त किया कि आधुनिक युग के पहले की भारतीय अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद के विकास की सम्भावनाएं थीं और इस तरह के मूल तत्वों ने जातियों के विकास में योगदान दिया जो मुगल साम्राज्य के विघटन का कारण बनीं पर ये दोनों ही प्रक्रियाएं ब्रिटेन द्वारा भारत विजय के कारण बेकार हो गईं। इस संबंध में विरोध व्यक्त करते हुए इरफान हबीब ने लिखा है कि ''पूंजीवाद और जातीयता का उभरना एक–दूसरे से जुड़ी हुई दो ऐसी प्रक्रियाएं हैं जो सिर्फ आधुनिक भारत की घटनाएं हैं और जिन्हें मार्क्स ने 'पुनरुत्पत्ति' की संज्ञा दी जो कि औपनिवेशिक शासन का परिणाम थीं। इन प्रक्रियाओं की शुरुआत उसके पहले के काल में मानना अनैतिहासिक बात होगी।'' हबीब के इस कथन से साफ है कि मार्क्स के सिद्धांतों को लेकर भी सभी भारतीय मार्क्सवादी इतिहासकार एक–दूसरे का अन्धानुकरण नहीं करते थे।

आधुनिक भारतीय इतिहास का मार्क्सवादी उपागम से लेखन

टिप्पणी

आधुनिक भारत के इतिहास का मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लेखन का श्रेय विपिनचन्द्र, वरुन डे, रजनी पामदत्त, एम.एन. राय और ए.आर. देसाई. जैसे विद्वानों को जाता है। आधुनिक भारत के आर्थिक इतिहास लेखन की मार्क्सवादी परंपरा में आर.पी. दत्त जैसे मार्क्सवादी इतिहासकार का नाम उल्लेखनीय है। इन इतिहासकारों में ए.आर. देसाई. की 'सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म', 'विपिनचन्द्र की 'द राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इकनॉमिक नेशनलिज्म इन इण्डिया' आदि महत्वपूर्ण रचनाएं हैं।

इस प्रकार भारत के कई मार्क्सवादी इतिहासकारों ने प्राचीन, मध्ययुगीन एवं आधुनिक भारत के इतिहास को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखने का सराहनीय प्रयास किया है। इस बारे में जगदीश नारायण तिवारी लिखते हैं–''प्रतिभाशाली इतिहासकारों के मार्क्सवाद के प्रति आकर्षण से मैं प्रभावित हूं और मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में अनेक अच्छे शोध मार्क्सवादी विद्वानों की देन हैं।''

भारत में प्राचीन से आधुनिक काल तक की मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा पर सतीशचन्द्र ने भी लिखा है– ''मार्क्स की ऐतिहासिक प्रणाली से प्रभावित बहुत से भारतीय विद्वानों ने भारतीय समाज और भारतीय समाज की जाति, ग्रामीण अर्थव्यवस्था जैसी ठोस संस्थाओं के विकास में विभिन्न चरणों को स्थापित करने का प्रयास किया। इन सभी विकासों ने एक बड़ी संख्या में भारतीय विद्वानों का ध्यान भारतीय समाज की ठोस समस्याओं और उसके विकास पर केंद्रित करने की प्रवृत्ति को प्रदर्शित किया है।''

भारत तथा दूसरे एशियायी देश गुलामी और सामंतवाद के चरणों से गुजरे या नहीं, इस बहस ने भारत और विदेशों दोनों में मार्क्सवादी विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है।

मार्क्सवादी इतिहास लेखन की पाश्चात्य परंपरा में ई.एच.कार का नाम बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने अपनी प्रसिद्ध रचना 'इतिहास क्या है?' में न केवल मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि की समीक्षात्मक विवेचना प्रस्तुत की है बल्कि मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि के अग्रणी आलोचकों की आलोचनाओं का उत्तर भी देने का प्रयास किया है। मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि के अग्रणी आलोचकों में कार्ल आर. पापर तथा इसाइया बर्लिन के नाम प्रमुख हैं। पापर ने अपनी रचनाओं 'द ओपन सोसाइटी एण्ड इट्स एनिमीज', 'द पावर्टी ऑफ हिस्टोरिसिज्म' तथा इसाइया बर्लिन ने अपने लेख 'हिस्टोरिकल इन एविटेबिलिटी' में हीगेल और मार्क्स के नियतिवादी इतिहास दर्शन की आलोचना करते हुए इस बात पर अपत्ति प्रकट की है कि मार्क्स ने इतिहास में संयोगों की भूमिका स्वीकार नहीं की। ई.एच.कार. ने मार्क्स का पक्ष साफ करते हुए उक्त दोनों ही आलोचनाओं का सटीक उत्तर दिया है। कार अपनी रचना 'इतिहास क्या है' में स्पष्ट करते हैं कि मार्क्स ने इतिहास में संयोग के तीन उपादान बताए हैं।

इस स्पष्ट है कि पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा के

टिप्पणी

साथ डी.डी. कोसांबी, आर.एस. शर्मा, रोमिला थापर, इरफान हबीब, ए.आर. देसाई, विपिनचन्द्र, आर.सी. दत्त, ई.पी. थाम्सन तथा ई.एच.कार जैसे अनेक प्रसिद्ध इतिहासकारों का नाम जुड़ा होना, इतिहास के क्षेत्र में मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि के महत्व का प्रतीक है। इस संबंध में जगदीशनारायण तिवारी तो यहां तक मानते हैं कि ''हाल के दशकों में इतिहास विषय की गम्भीरता बनाये रखने और इसके अध्ययन, अध्यापन तथा शोध के उच्च प्रतिमान स्थापित करने में मार्क्सवादी इतिहासकारों का सराहनीय योगदान है और उन केंद्रों में इतिहास के अध्ययन और शोध को बहुत गम्भीरता से लिया जाता है जहां मार्क्सवादी दृष्टिकोण का सम्मान है।''

3.5.4 एनाल्स

इतिहास लेखन की एनाल्स परंपरा का प्रारंभ फ्रांस में इतिहासकारों द्वारा एनाल्स सम्प्रदाय (Annals School) की स्थापना के साथ हुआ। 1929 ई. में पेरिस में 'द एनाल्स' शीर्षक के एक फ्रेंच हिस्टोरिकल जर्नल का आरंभ हुआ। संभवतः इसी शोध पत्रिका के नाम के आधार पर फ्रांस में 'द एनाल्स स्कूल' की स्थापना हुई।

पृष्ठभूमि

फ्रांसीसी दार्शनिक वाल्टेयर एवं मान्टेस्क्यू ने राजनीतिक इतिहास के स्थान पर अतीत के दार्शनिक वृतान्त पर बल दिया। 18वीं सदी का यह इतिहास आम जनता के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष पर केंद्रित हुआ। परिणाम यह हुआ कि एक बार पुनः फ्रांस में ऐतिहासिक अध्ययन के केंद्र से राजनीतिक इतिहास अलग कर दिया गया।

फ्रांस के लूसियन फेब्रे (1878–1956 ई.) एवं लियोपोल्ड बेंजमिन मार्क ब्लाख (1886–1944 ई.) ने समाज में मानव जीवन की घटनाओं को गहन एवं विस्तृत रूप से विश्लेषित किया। इनसे पूर्व हेनरी बेर (1863–1954 ई.) ने 1900 ई. में 'रिव्यू ऑफ हिस्टॉरिकल सिन्थेसिस' नामक पत्रिका आरंभ की। हेनरी बेर ने समाज में मानवीय क्रियाकलापों को संकलित करने के उद्देश्य से सौ भागों में 'इवॉल्यूशन ऑफ ह्यूमेनिटी' नामक पुस्तक लिखने की योजना बनाई। यद्यपि हेनरी बेर अपनी यह परियोजना पूर्ण न कर सके फिर भी उन्होंने एनाल्स इतिहास लेखन संवर्धन के लिये मार्ग अवश्य प्रशस्त कर दिया।

एनाल्स इतिहास लेखन एक समग्र एवं वृहद इतिहास लेखन था जिसमें अतीत की घटनाओं के सभी पक्ष सामाजिक, सांस्कृतिक, भौतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, वातावरणिक, जनसांख्यिकीय आदि सम्मिलित थे।

परिभाषा एवं विशेषताएं

एनाल्स स्कूल का नामकरण 1929 ई. में आरंभ फ्रेंच हिस्टोरिकल जर्नल 'एनाल्स डी हिस्टोरी इकॉनोमिक एट सोशियल' के आधार पर हुआ। 1929 से ही एनाल्स स्कूल का प्रभाव इतिहास लेखन एवं पद्धतियों में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होने लगा। इस जर्नल के संस्थापक प्रख्यात फ्रांसीसी इतिहासकार लुसियन फेब्रे और मार्क ब्लाख थे। ये दोनों ही बाद में एनाल्स स्कूल हिन्दी के पथ प्रदर्शक बने। बाद में अन्य इतिहासकार फर्नांड ब्रॉडेल (जन्म 1902), राबर्ट मैन्डो (जन्म 1921), जैक्स ली गॉफ (जन्म 1924), एवं इमैन्युअल ली राय लेडुरी (जन्म 1929 ई.) इसमें शामिल हो गये। इतिहासकारो के इस

समूह ने एकीकृत सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास लिखकर एनाल्स स्कूल को एक सुव्यवस्थित ढांचा प्रदान किया।

टिप्पणी

एनाल्स इतिहास एक समग्र इतिहास लेखन का उपागम था। एनाल्स उपागम में उस समय प्रचलित सभी प्रवृत्तियां – इतिहासवादी और प्रत्यक्षवादी, व्यक्तिवादी एवं समूहवादी, समाज और संस्कृति, आर्थिक एवं राजनीतिक मुद्दे और घटनाएं, नदी सागरों का इतिहास, इत्यादि सभी सम्मिलित थे।

एनाल्स परंपरा मात्र दार्शनिक विचारधारा न होकर अतीत की समस्याओं तक पहुंचने की एक ऐतिहासिक पद्धति है। इसमें सिद्धांतों के स्थान पर शोध पद्धति पर बल दिया गया। ऐतिहासिक अध्ययन के पारम्परिक दृष्टिकोण से अलग हट कर इसमें ऐतिहासिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास निहित है। किसी घटना के घटित होने से यह परंपरा कई कारणों को जिम्मेदार मानती है। इस पद्धति में साधारण घटनाओं को भी महत्व दिया गया है। वस्तुनिष्ठता को महत्व देते हुए एनाल्स परंपरा में विषय वस्तु का विश्लेषण किया गया है। एनाल्स परंपरा में यद्यपि राजनीतिक इतिहास से परहेज किया है मगर राजनीति से जुड़े सामाजिक एवं सांस्कृतिक मुद्दों को शामिल किया गया है।

एक नए उपागम के रूप में एनाल्स इतिहास–लेखन

एनाल्स इतिहास में परंपरावादी इतिहास से अलग हटकर एक समग्र इतिहास लिखने का प्रयास किया है। इसके अनुसार ऐतिहासिक घटनाएं अलग–अलग करके नहीं समझी जा सकतीं। इन सामान्य घटनाओं को एक साथ जोड़कर ही इन्हें समझा जा सकता है। एनाल्स परंपरा का मानना है कि ऐतिहासिक समस्याओं के समाधान के लिये इतिहास के स्रोतों से सही प्रश्न पूछे जाने चाहिये। समस्या की प्रकृति को ध्यान में रखते हुये तथ्य एकत्रित करने चाहिये।

एनाल्स स्कूल ऑफ हिस्ट्री ने शोध की गुणवत्ता के लिए अध्ययन की विभिन्न पद्धतियों को तोड़कर एक सार्वभौमिक पद्धति अपनाने पर बल दिया। इस परंपरा ने सूक्ष्म परिप्रेक्ष्य से समष्टि (Macro), एवं क्षेत्रीय इतिहास की विचारधारा को आगे बढ़ाया।

एनाल्स इतिहास लेखन का विकास

एनाल्स इतिहास लेखन के विकास को तीन चरणों में बांटा गया है–

एनाल्स इतिहास लेखन विकास का प्रथम चरण

एनाल्स स्कूल का प्रथम चरण एनाल्स पत्रिका के निर्माण काल 1929 ई. से 'सिक्स्थ सेक्शन ऑफ इकोल प्रेटिक ड्रेस हाटेस एच्यूडस्' 1947 ई.' तक इसकी स्थापना पर केंद्रित रहा। इस काल से फेब्रे एवं ब्लाख ने इसकी दृढ़ता हेतु इसकी मजबूत आधारशिला रखी।

लुसियन फेब्रे (1878–1956) एवं उनकी कृतियां

लुसियन फेब्रे एनाल्स स्कूल के प्रमुख संस्थापक थे। उन्होंने ऐतिहासिक अध्ययन में भिन्न–भिन्न स्रोतों के उपयोग की पैरवी की। फेब्रे ने प्रारंभ में 'स्ट्रासवर्ग' में अध्यापन कार्य किया बाद में वे आर्थिक इतिहास का अध्ययन करने के लिये सर्बोन विश्वविद्यालय

टिप्पणी

चले गये। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय वे ब्राजील के नगर रियो–दि–जेनेरियो में गये एवं वहां उन्होंने अपने विचारों से कई इतिहासकारों को प्रभावित किया। इससे एनाल्स परंपरा भी आगे बढ़ी। कुछ समय फेब्रे ने 'कालेज डी फ्रांस' में भी अध्यापन कार्य किया।

फेब्रे की कृतियां– लुसियन फेब्रे की प्रथम महत्वपूर्ण कृति 'रीजंस ऑफ फ्रांस : फ्रेंच कॉम्टे' थी। भौगोलिक विशिष्टताएं इस कृति की प्रमुख विषय–वस्तु थीं। फेब्रे की अगली कृति 'फिलिप II एवं फ्रेंच कॉम्टे' 1911 में आयी। इस कृति में सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों को प्रमुखता दी गई। 1922 में उनकी अगली पुस्तक 'द अर्थ एण्ड सोशल इवोल्युशन' आई। ऐतिहासिक घटनाओं में उन्होंने भौगोलिक कारकों को महत्वपूर्ण माना। 1928 ई. में उनकी अगली कृति 'मार्टिन लूथर' पर थी। इससे इतिहास लेखन में जीवन गाथा के प्रयोग को नई राह मिली। उन्होंने सांस्कृतिक इतिहास पर भी एक कृति लिखी। इसमें उन्होंने आधुनिक यूरोप के पुनर्जागरण पर बौद्धिक विचारों के प्रभाव का अध्ययन किया। इस प्रकार विभिन्न कृतियों के माध्यम से लुसियन फेब्रे ने इतिहास को अन्य दूसरे विषयों– समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, भूगोल एवं पारिस्थितिक विज्ञान से संबद्ध किया।

लियोपाल्ड बेंजामिन मार्क ब्लाख (1886–1944) एवं उनकी प्रमुख कृतियां

मार्क ब्लाख का जन्म 6 जुलाई, 1886 को फ्रांस के लियो नामक शहर में एक यहूदी परिवार में हुआ था। मार्क ब्लाख, लुसियन फेब्रे के अनुयायी थे। उन्होंने अपने उत्कृष्ट योगदान से ऐतिहासिक शोध में क्रांतिकारी परिवर्तन किये। मार्क ब्लाख ने अपना अध्यापन जीवन 1914 में 'स्ट्रासवर्ग विश्वविद्यालय' से आरंभ किया। बाद में 'सर्बोन विश्वविद्यालय' में अध्यापक नियुक्त हुए। उन्होंने विश्वयुद्धों में भाग लिया। जर्मन पुलिस गेस्टपो ने ल्योंस में 16 जून, 1944 को मार्क ब्लाख की गोली मार कर हत्या कर दी।

मार्क ब्लाख की कृतियां : 27 वर्ष की आयु में परंपरागत इतिहास लेखन की लीक से हटकर उन्होंने 1913 में अपनी प्रथम कृति 'द आइलैण्ड ऑफ फ्रांस' की रचना की। पारम्परिक वृत्तों के स्थान पर उन्होंने वहां की मिट्टी, जलवायु, भाषा, पुरातात्त्विक अवशेषों एवं स्थापत्य कला आदि पक्षों का विवरण प्रस्तुत किया। 1944 ई. में उन्होंने 20वीं शताब्दी की कालजयी रचना 'द रायल टच' की रचना की। इस कृति द्वारा उन्होंने इतिहास लेखन में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। इसमें आम जीवन के विविध पक्षों को शामिल किया। उदाहणार्थ इसमें बताया है– 'उस समय एक त्वचा रोग 'स्फ्रोफ्युला' होता था। लोगों की मान्यता थी कि यदि राजा इस व्यक्ति को स्पर्श कर ले तो वह व्यक्ति रोग मुक्त हो जाएगा। इसीलिये यह रोग 'राजा के अनिष्ट' (King's evil) के रूप में भी जाना जाता है। इसके आधार पर उन्होंने बताया कि किस तरह और क्यों राजभक्ति का फैलाव हुआ? क्यों इंलैण्ड एवं फ्रांस की आम जनता राजा को दैवीय प्रतिनिधि मानती है। इस प्रकार इस पुस्तक में मार्क ब्लाख ने मध्यकाल में राजाओं की योग्यता (दैवीय प्रतिनिधि की मान्यता) पर जनता के विश्वास की गवेषणा की गई है।

इस प्रकार ब्लाख ने असाधारण मुद्दों एवं स्वच्छन्द विषयों पर ध्यान केंद्रित किया। ब्लाख ने अपनी उल्लेखनीय पुस्तक 'द फ्रेंच रूरल हिस्ट्री' (1924 ई.) में फ्रांसीसी कृति के प्रारंभ तक के फ्रांस के मध्यकालीन ग्रामीण समाज का आलोचनात्मक

वृतान्त दिया है। इसमें कृषि संबंधी तकनीकें, औजारों का प्रयोग, मिट्टी की प्रकृति, लोगों के व्यवहारों का स्थानीय समुदायों से अन्तर्संबंध, एवं सिचाई. तकनीकों का विवरण दिया गया है।

टिप्पणी

ब्लाख को सर्वाधिक प्रसिद्धि 1940 में प्रकाशित उनकी कृति 'द फ्यूडल सोसायटी' से मिली। इसमें उन्होंने दासता की उत्पत्ति के उपरान्त यूरोप में सामंती समाज के विकास एवं उसकी प्रवृति की क्रमबद्ध व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने सामंती समाज के परिवर्तनशील पक्षों को दिखाने के लिये बहुत सारे तथ्यों और सूचनाओं को एकत्रित कर उन्हें रोचक ढंग से सजाया है। यह कार्य एनाल्स ऐतिहासिक उपागम के आलोचनात्मक अनुप्रयोग के रूप में जाना गया।

'द फ्यूडल सोयाइटी' में कृषि, समाज, पारिस्थितिकी, तकनीकी और कानूनी कारणों द्वारा किस प्रकार यूरोपीय सामंती समाज की उत्पत्ति हुई इस पर प्रकाश डाला गया है। इसमें चर्च की भूमिका एवं लोगों के सामान्य विश्वास की भी विवेचना की गई है।

इतिहास जगत में मार्क ब्लाख का महानतम योगदान उनकी अपूर्ण रचना 'इतिहाकार का शिल्प' (The Historian's Craft) है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जब वे जर्मनी की जेल में थे तब उन्होंने इसका लेखन किया। यह कृति योजनाबद्ध शैली में ऐतिहासिक समस्याओं के अध्ययन हेतु एक महत्वपूर्ण पथप्रदर्शक है। उनका मानना था कि इतिहासकार को बांसुरी बनाने वाले के जैसा कार्य करना चाहिये न कि मशीन प्रचालक जैसा। उनका कहना था कि इतिहास का प्रमुख कार्य अतीत एवं वर्तमान के मध्य एक संबंध बनाना है जो वास्तव में मानक मूल्यों की उन्नति में सहायक है। ब्लाख की रुचि तुलनात्मक ऐतिहासिक विश्लेषण में थी, जिसके द्वारा उन्होंने मानव सभ्यता के महत्व का भलीभांति अध्ययन किया।

एनाल्स इतिहास लेखन विकास का द्वितीय चरण

द्वितीय विश्वयुद्ध (1939–45 ई.) के पश्चात एनाल्स स्कूल के क्षेत्र में विस्तार हुआ। द्वितीय चरण में इस परंपरा को गति प्रदान करने में फर्नांड ब्रॉडेल, कीथ टामस, पियरे चाउनू, एवं ई. ली राय लेडुरी की अहम भूमिका थी। इस चरण में जनसांख्यिकीय आंकड़ों, चर्च पंजिकाओं एवं अन्य संबंधित अभिलेखों को प्राथमिक स्रोतों के रूप में प्रयुक्त किया गया। नवीन–नवीन स्रोतों की खोज के साथ इस चरण के विद्वानों ने अपना ध्याय स्रोतों से उठ रहे नए–नए प्रश्नों पर भी केंद्रित किया।

फर्नांड ब्रॉडेल (1902–1985 ई.)

लुसियन फेब्रे एवं मार्क ब्लाख का अनुसरण करते हुए द्वितीय चरण में फर्नांड ब्रॉडेल ने एनाल्स इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1949 ई. में ब्रॉडेल की प्रख्यात कृति 'मेडिटेरियन एण्ड द मेडिटेरियन वर्ल्ड इन द एज ऑफ फिलिप' प्रकाशित हुई। इस कृति में उनका एनाल्स दृष्टिकोण प्रखरता के साथ परिलक्षित होता है। इस कृति ने उन्हें फ्रांसीसी इतिहास लेखन के शीर्ष पर प्रतिस्थापित किया।

ब्रॉडेल जब जर्मनी में 1940 से 1945 के मध्य कैदी के रूप में रहे उस समय उन्होंने इस कालजयी पुस्तक की रचना की। इसमें कुल छह लाख शब्द थे। बृहत रूप

टिप्पणी

से इसका प्रकाशन बाद में 1972 में हुआ। ब्रॉडेल ने अपनी इस मैग्नम ओपस (Magnum opus) वृहद रचना को लिखने के लिये विविध स्रोतों का भरपूर उपयोग किया। इस कृति में अधिकांश द्वितीयक स्रोतों की मदद ली गई है। प्राथमिक स्रोतों के रूप में भूमध्यसागरीय वातावरण का उपयोग किया है। ब्रॉडेल का स्रोतों सामग्री की भाषाओं–जर्मन, स्पेनिश, इटालियन एवं फलेमिश (बेल्जियम) पर पूर्ण नियंत्रण था। इससे तथ्यों के संग्रह एवं उनके प्रस्तुतिकरण में निखार आया। अभिलेखीय स्रोतों की प्राप्ति हेतु उन्होंने रोम, जिनेवा, फ्लोरेंस, पेरिस एवं सिमान्कास के संग्रहालयों में उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया। ब्रॉडेल की यह कृति तीन भागों में विभाजित है जिसमें एनाल्स परंपरा को देखा जा सकता है।

अन्य इतिहासकार

1960–70 के मध्य फर्नांड ब्रॉडेल का 'फ्रेंच स्कूल ऑफ हिस्ट्री' पर गहरा प्रभाव था। एनाल्स स्कूल के अन्य इतिहासकारों में ई.ली. राय लेडुरी का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने ब्रॉडेल की कई तकनीकों का उपयोग किया। उनकी उत्कृष्ट कृति 'द टेरिटरी ऑफ द हिस्टोरियन' है। उन्होंने ऐतिहासिक शोध हेतु विभिन्न समस्याओं को प्रस्तुत किया है। मौसम संबंधी विवरण,वातावरण संबंधी इतिहास एवं पर्यावरण संकट का अध्ययन उनके ऐतिहासिक शोध के नवीन विषय थे। उनके द्वारा ग्रामीण ऐतिहासिक अंकणों के विश्लेषण में संगणक तकनीक का प्रयोग किया गया।

एनाल्स स्कूल के द्वितीय चरण के एक अन्य इतिहासकार पियरे चाउन थे। ब्रॉडेल के नमूने पर ही उन्होंने अपनी कृति 'अटलांटिक व्यापार' लिखी। 1955 से 1960 के बीच अपनी पत्नी की सहायता से उन्होंने बारह भागों में इस कृति का सृजन किया। इस पुस्तक में 1501 से 1650 ई. तक अमेरिका के नये विश्व और सेविले (स्पेन) के मध्य व्यापार की उन्नति एवं अवनति का विवरण दिया गया है। उन्होंने संचार साधनों की परिवर्तित समस्याओं के बावजूद भी व्यापार के प्रति वैश्विक दृष्टिकोण अपनाया है।

एनाल्स इतिहास लेखन विकास का तृतीय अथवा समकालीन चरण

तृतीय अथवा समकालीन चरण में तीसरी पीढ़ी की उन्नति के साथ ही एनाल्स इतिहास लेखन परंपरा और अधिक उन्नत हुई। अन्य इतिहासकारों ने भी इतिहास लेखन में एनाल्स उपागम के प्रयोग को विस्तृत रूप से महत्व दिया। एनाल्स उपागम के तहत सांस्कृतिक–मानसिक एवं मनो इतिहास का अध्ययन हुआ।

रोजर कार्टियर ने फ्रांसीसी क्रांति की सांस्कृतिक उत्पत्ति को खोजने के प्रयास किये। इसके अलावा उन्होंने पुस्तक प्रकाशन,पाठन–प्रकृति एवं मुद्रण की शैली के विकास को भी अपने अध्ययन की विषयवस्तु बनाया।

ली गॉफ ने मानसिक समस्याओं को अपने अध्ययन में ध्यान दिया। सामुदायिक व्यवहार कैसे नियंत्रित होता है। सामुदायिक व्यवहार का क्या प्रभाव पड़ता है। नवीन स्थितियों के लिये समाज कहां तक उत्तरदायी है? ऐसे प्रश्नों पर ली गॉफ ने अपना ध्यान केंद्रित किया।

नाटालिया डेविस एवं अन्य इतिहासकारों ने आधुनिक फ्रांसीसी लोगों के वर्गिक लक्षणों पर बल दिया। लोगों के ऐतिहासिक, मानसिक एवं सामाजिक व्यवहार की व्याख्या का प्रयास किया। उन्होंने एक व्यक्ति समाज एवं भीड़ के व्यवहार का भी

अध्ययन किया। काल्पनिक प्रेम, हंसी एवं अन्य साधारण विषय आज फ्रेंच इतिहासकारों के अध्ययन की विषय वस्तु बन गये हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक शोध आजकल सघन, विस्तृत, वैज्ञानिक एवं समग्र होता जा रहा है।

टिप्पणी

एनाल्स और काल

काल को कई इतिहासकारों ने इतिहास की आंख कहा है। एनाल्स आन्दोलन के प्रणेताओं ने परंपरागत काल की अवधारणा को तोड़ते हुए एक नवीन ऐतिहासिक विचार प्रस्तुत किया। यद्यपि एनाल्स स्कूल समय के कठोर ढांचे के विरूद्ध था मगर फिर भी उसने आवश्यकतानुसार समय एवं काल की यथार्थता को महत्व दिया।

एनाल्स स्कूल के अनुसार काल को तीन भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम दीर्घकाल, द्वितीय मध्यकाल एवं तृतीय लघुकाल। दीर्घकाल सदैव प्रमुख भौगोलिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं से संबंधित होता है। मध्यकाल पारिस्थितिकीय एवं कम महत्व के सामाजिक मुद्दों से संबद्ध होता है। लघुकाल प्रतिदिन के विषयों जैसे राजनीतिशास्त्र, सामान्य घटनाएं और अन्य दूसरे कार्यों से संबंधित होता है। फर्नांड ब्रॉडेल ने इस काल तकनीक का अपनी प्रमुख कृति 'द मेडिटेरियन वर्ल्ड' में प्रयोग किया है।

एनाल्स स्कूल स्थानीय विषयों पर वैश्विक दृष्टिकोण अपनाने पर जोर देता है। यह व्यक्ति समस्याओं को समष्टि काल क्रम के आधार पर अध्ययन करने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिये लगभग एक हजार वर्ष में ग्रामीण समुदाय का अध्ययन।

मूल्यांकन

काल के परिप्रेक्ष्य में एनाल्स उपागम ने घटनाओं की प्रकृति को काल–व्यवहार के अनुसार बांट कर एक नए उपागम से परिचित कराया। इस उपागम ने वर्णनात्मक एवं वृत्तात्मक की अपेक्षा विश्लेषणात्मक पद्धति पर ज्यादा ध्यान दिया। इसने सदैव घटनाओं के वर्णन की अपेक्षा शोध से संबंधित समस्याओं पर अधिक बल दिया।

एनाल्स स्कूल ने अतीत कालिक घटनाओं के अध्ययन में परिस्थितिकीय कारणों, प्राकृतिक वातावरण, एवं सामाजिक वातावरण के प्रभावों पर ध्यान दिया। एनाल्स आन्दोलन स्थानीय महत्व के साथ–साथ वैश्विक उपागम के विचार के कारण भी प्रसिद्ध हुआ। एनाल्स उपागम के अनुप्रयोग से इतिहास मानवीय जीवन के लगभग सभी पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए एक विशिष्टीकृत शास्त्र विद्या बन गया। अपनी विभिन्न पद्धतियों एवं तकनीकों के प्रयोग के कारण एनाल्स उपागम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक उच्च मानक के रूप में माना जा रहा है। यद्यपि इतिहास का एनाल्स उपागम भारत में एक अलग उपागम के रूप में विकसित नहीं हुआ इसके बावजूद इसकी तकनीक, एवं पद्धति का प्रभाव भारतीय शोध पद्धति पर विभिन्न रूप में देख सकते हैं।

आलोचना

एनाल्स उपागम के सम्पूर्णात्मक दृष्टिकोण ने ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु को इतिहास में सम्मिलित कर, इतिहास को एक शुष्क विषय बना दिया। एनाल्स उपागम ऐतिहासिक घटनाओं की कुंजी के रूप में परिस्थितिकीय कारकों के द्वारा नियतिवाद को महत्व देता है। यह उपागम ऐतिहासिक घटनाओं के निर्णय में मानवीय क्रिया–कलापों की अपेक्षा प्राकृतिक कारकों पर अधिक जोर देता है।

ऐतिहासिक काल के बारे में भी एनाल्स उपागम का दृष्टिकोण अनिश्चित है। दीर्घकाल, मध्यकाल एवं लघुकाल की अवधारणा भी प्रत्येक घटनाक्रम के संबंध में सटीक नहीं बैठती।

टिप्पणी

एनाल्स उपागम राजनीतिक इतिहास के अलावा अन्य सभी विषयों को अपने में शामिल करता है। बिना राजनीति के अतीत की समस्त घटनाओं को समझना आसान नहीं है। राजनीतिशास्त्र एवं उसकी सामाजिक गतिविधियां मानव सभ्यता के विकास की कुंजी हैं। एनाल्स उपागम राजनीतिक घटनाओं को नकारते हुए सामाजिक घटनाओं की व्याख्या करने पर ध्यान देता है, जबकि बिना राजनीति के सामाजिक घटनाक्रम को समझना आसान नहीं है।

यह विशेषज्ञता का युग है, ऐसे में किसी घटना को समग्र रूप में देखना आसान नहीं है। एनाल्स अपने शोध में कई विषयों को लाया, इससे इतिहास प्रत्येक वस्तु का विषय बन गया। इसमें कुछ विषयों पर तो अधिक प्रकाश डाला गया एवं कुछ को कल्पना द्वारा प्रस्तुत किया गया।

उक्त आलोचनाओं के बावजूद ब्रॉडेल का 'मेडिटेरियन वर्ल्ड' एवं पियरेक 'अटलांटिक ट्रेड' एनाल्स उपागम के कालजयी उदाहरण हैं। वस्तुतः यह इतिहास का उपागम इतिहासकार से व्यापक दृष्टिकोण एवं उसके समग्र ज्ञान की अपेक्षा करता है।

एनाल्स इतिहास लेखन की उपलब्धियां

एनाल्स इतिहास लेखन ने अतीत की घटनाओं के अध्ययन में अतीत कालिक सभी तथ्यों को शामिल किया। छोटी से छोटी घटना को भी लेखन में शामिल किया। विभिन्न अध्ययन विषयों के मध्य के अवरोधों को तोड़ते हुए इतिहास ने सभी विषयों को शामिल किया। शोध कार्य को आगे बढ़ाने के लिये परिमाणात्मक तकनीकों को एवं संगणनीय पद्धतियों को इतिहास में शामिल किया। अतीत की घटनाओं को परिस्थितिकीय एवं वातावरण के प्रभावों द्वारा समझने की आवश्यकता पर बल दिया। उसके गैर राजनीतिक दृष्टिकोण को यदि छोड़ दिया जाए तो हम कह सकते हैं कि एनाल्स उपागम ने इतिहास लेखन को समृद्ध करने से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शीघ्र ही एनाल्स विचारधारा का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपयोग किया जाने लगा। लुसियन फेब्रे, मार्क ब्लाख, एवं फर्नांड ब्रॉडेल की कृतियां आज भी सशक्त रूप से एनाल्स उपागम के महत्व को दर्शाती हैं।

3.5.5 एनाल्स विचारक

फ्रांसीसी आत्मज्ञान के दौरान, वोल्टायर और मोंटेस्क्यू ने अतीत के अधिक दार्शनिक विवरण के पक्ष में, इस विचार को चुनौती दी थी कि इतिहास राजनीतिक लोगों के कार्यों का विवरण होता है। अठारहवीं शताब्दी के 'नये इतिहास' ने अपना ध्यान सारे लोगों के आचरण, रीति–रिवाजों और आस्थाओं पर और उनके सामाजिक–सांस्कृतिक विकास के वृहद तरीकों पर लगाया। फ्रांस में ही, बीसवीं शताब्दी के मध्य में, ऐतिहासिक आकर्षण केंद्र से राजनीतिक इतिहास को हटा ही देने का एक अधिक क्रांतिकारी प्रयास किया गया।

समाज में मनुष्य के जीवन के अधिक समृद्ध और पूर्ण इतिहास की दिशा में पहले ठोस कदम उठाने वाले दो लोग ल्यूसीन फेब्वरे और मार्क ब्लॉच थे। हेनरी बेर

टिप्पणी

(1863–1954) ने पहले ही पत्रिका 'रिव्यू ऑफ हिस्टॉरिकल सिंथेसिस' (1900) की स्थापना की थी और समाज में मनुष्य की सारी गतिविधियों को एक जगह इकट्ठा करने के इरादे से 'इवॉल्यूशन ऑफ ह्यूमैनिटी' के सौ भागों की योजना बनाई. थी। इस महान परियोजना में समाजविज्ञान और अन्य विज्ञानों की विधियों और अंतर्दृष्टियों का इस्तेमाल होना था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद, ल्यूसीन फेब्बरे और मार्क ब्लॉच की स्ट्रासबर्ग यूनिवर्सिटी में मुलाकात बीसवीं शताब्दी के इतिहास लेखन की आरंभिक घटना थी। स्ट्रासबर्ग में नियुक्ति से पहले फेब्बरे ने युद्ध के दौरान फ्रांसीसी सेना में काम किया था। विचारों के प्रति उत्तरदायी और उर्वर मन के साथ उसने भूगोल, समाज–भाषाविज्ञान और आकृति विज्ञान पर व्याख्यान सुने। उसने बर्कहार्ट की प्रशंसा की और जारेस जैसे मार्क्सवादियों के अध्ययन से उसने आर्थिक संघर्ष में दिलचस्पी पैदा की। सामाजिक–दर्शन में उनकी आजीवन दिलचस्पी हेनरी वॉलन और चार्ल्स ब्लॉन्डेल के कारण रही और वे विडाल डी ला ब्लाचे की 'मानव भूगोल' से बेहद प्रभावित रहे जिसने उन्हें भौतिक और सामाजिक जगत के बीच संवाद के संदर्भ में इतिहास के अध्ययन के लिए प्रेरित किया। अंतर्विषयक दृष्टिकोण पर आधारित नए तरह के इतिहास के प्रति अपने उत्साह में, फेब्बरे ने मार्क ब्लॉच में समान भावना पाई।

लेवी–ब्रूल से प्रेरित होकर दोनों ने यह विचार विकसित किया कि व्यक्तिगत विचारों और मूल्य आधारित मूल्य तथा आस्था की उनकी खास अभिव्यक्तियों ने विचार और मानसिकताओं की प्रणालियां निश्चित कीं– जो कि हर युग में क्रांतिकारी रूप से अलग रहीं; और दुर्खीम का अनुसरण करते हुए, दोनों इतिहासकारों ने ऐतिहासिक कारकों के जीवनों की सामाजिक और सामूहिकता की सर्वोच्चता को स्वीकार किया।

लियोपॉल्ड बेंजामिन मार्क ब्लॉच का जन्म ल्यॉन्स में एक यहूदी परिवार में हुआ था। फेब्बरे की तरह उसने भी प्रथम विश्वयुद्ध में फ्रांसीसी सेना में काम किया था, और वीरता के लिए क्रोइक्स डी ग्यूरे से उसे सम्मानित किया गया था, और लीगन ऑफ ऑनर में भी शामिल किया गया था। 1919 में उसे स्ट्रासबर्ग में मध्ययुगीन इतिहास की पीठ पर नियुक्त किया गया था जहां वह 1936 तक फेब्बरे के साथ रहा। इसके बाद वह सॉरबॉन में आर्थिक इतिहास की पीठ में चला गया और फेब्बरे पेरिस में कॉलेज डी फ्रांस चला गया। द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू होने पर, ब्लॉच फिर से सेना में भर्ती हो गया और 1940 में फ्रांस की पराजय में निजी रूप से शामिल रहा। 1943 में वह जर्मनी के कब्जे के खिलाफ फ्रांस के विरोध में शामिल हुआ और बंदी बना लिया गया, जिसके बाद गुप्त पुलिस गेस्टापो के हाथों काफी क्रूरता का शिकार हुआ, और 1944 में उसकी गोली मारकर हत्या कर दी गई।

ब्लॉच देशभक्त, सैनिक, विद्वान और उन लोगों के जीवन का इतिहासकार था जिनके जीवन का अतीत वर्तमान से अलग नहीं था। उदार मानवीय गुणों के लिए शहीद होकर वह युद्ध–काल के तुरंत बाद की पीढ़ी के लिए एक सशक्त प्रतीक बन गया। फेब्बरे रियो डी जेनेरियो में रहा और ब्रॉडेल जैसे इतिहासकारों को उसने प्रेरित किया जिसने एनाल्स परंपरा को आगे बढ़ाया।

फर्नांड ब्रॉडेल

ल्यूसीन फेब्बरे के आश्रित फर्नांड ब्रॉडेल (जन्म 1902), में एनाल्स का "संपूर्ण इतिहास" का विचार साकार हुआ। ब्लॉच और फेब्बरे ने केवल अतीत के कुछ अंशों के लिए ऐसा

इतिहास लिखा लेकिन ब्रॉडेल का मानव जीवन को उसकी सारी विविधताओं में दोबारा गिरफ्त में लेने का काम उनकी उत्कृष्ट रचना 'द मेडिटेरेनियन एंड द मेडिटेरेनियम वर्ल्ड इन द एज ऑफ फिलिप प्प' (1949) में सामने आया।

टिप्पणी

बीसवीं शताब्दी की यह सबसे महान ऐतिहासिक किताब थी जिसके कारण इसका लेखक तुरंत ही फ्रांसीसी ऐतिहासिक लेखन के शीर्ष पर पहुंच गया।

मेडेटेरेनियम बीस वर्षों में लिखी गई थी जिसमें द्वितीय विश्वयुद्ध के वर्ष शामिल थे जिनमें ब्रॉडेल जर्मनी के बंदी शिविर में रहा था। जब यह पहली बार 1949 में प्रकाशित हुई तब इसमें 6 लाख शब्द थे, और बाद में इनमें और वृद्धि होती गई! इसमें इतिहास के खंडीकरण का उत्तर तलाशने की कोशिश की गई।

जेम्स ए. हेनरेटा ने मेडेटेरेनियन को बहुत कुशलतापूर्वक समाज की एक व्यापक, बहुआयामी 'क्यूबिस्ट छवि' के रूप में वर्णित किया है।

मेडेटेरेनियन और एनाल्स : मेडेटेरेनियन के पीछे के प्रभाव

युद्धकाल के पहले के एनाल्स इतिहासकार हमेशा फेब्वरे और ब्लॉच का अहसान मानते हैं। ब्रॉडेल ने लिखा है, "एनाल्स के शिक्षण और प्रेरणा जो मैंने ली है, उसका मेरे ऊपर सबसे ज्यादा अहसान है।" मेडेटेरेनियन के विचार और रचना–योजना फेब्वरे की 'द अर्थ एंड ह्यूमन इवॉल्यूशन एंड फिलिप प्प एंड फ्रांचे–कॉम्टे' से सीधे–सीधे ली गई है– भौतिक परिवेश से शुरू करके तीन पुस्तकें, आर्थिक और सामाजिक संरचनाओं तक जाती हैं और फिर घटनाओं के विवरण के साथ समाप्त होती हैं। ब्रॉडेल ने अपने गुरु और प्रेरक फेब्वरे को अपनी किताब मेगनम ऑपस "एक बेटे का स्नेह" कहकर समर्पित की। और ब्लॉच के बारे में ब्रॉडेल ने कहा, "मुझे लगता है कि मैं ये ईमानदारी से कह सकता हूं कि उनका कोई विचार मुझे विदेशी नहीं लगता।" दोनों की दीर्घकालीन ऐतिहासिक प्रवृत्तियों के प्रति सरोकार और तुलनात्मक इतिहास के प्रति उनका प्यार समान था। समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम का घटनाओं के इतिहास के उथलेपन का विचार और मानव भूगोलविद डी ला ब्लाच का सामाजिक और ऐतिहासिक भूगोल फेब्वरे, ब्लॉच और ब्रॉडेल के लिए प्रभाव और प्रेरणा के समान स्रोत थे।

और मेडेटेरेनियन के इतिहासकार फ्रांसीसी गुरु जूलेस मिशलेट ने काव्यात्मक चित्रों के अपने उपहार को शामिल करना और क्षेत्रों के बारे में इस तरह से लिखना सीखा, जैसे कि वे व्यक्ति हों।

मेडेटेरेनियन को इतने विशाल पैमाने पर लिखा गया है कि समूची किताब के लिए दस्तावेजीकरण (परंपरागत अर्थ में) की समान तरह की गुणवत्ता और प्रकार की अपेक्षा करना बेकार है। पीटर बर्क ने लिखा है, "हमारे समय के महानतम इतिहासकार के कार्य का बड़ा हिस्सा द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। इसमें सबूत खोजे नहीं गए हैं, बल्कि सबूतों को ब्रॉडेल ने उत्कृष्ट बनाया है।" तीसरा भाग, इस महान किताब का सबसे परंपरागत हिस्सा है, जो रोम, जनेवा, फ्लोरेंस, पेरिस और सबसे बढ़कर सिमनकास, जहां स्पेनिश सरकारी कागजात रखे जाते हैं, के पुरालेखों से मिले दस्तावेजों पर ठोस रूप से आधारित है। बर्क के अनुसार, दूसरा भाग, पुरालेखीय सामग्री से सरलतापूर्वक चित्रित है जबकि मेडेटेरेनियन (प्रथम भाग) का भू–इतिहास का मुख्य स्रोत परिदृश्य स्वयं है।

टिप्पणी

ब्रॉडेल सामाजिक इतिहास की अवधारणा के अनुरूप ही समस्या–उन्मुख इतिहासकार हैं। मेडिटेरेनियन के मागदर्शक सिद्धांत के रूप में समय और स्थान के संदर्भ में ऐतिहासिक परिवर्तन की नई. अवधारणा थी। "समुद्र को ही अपने महाकाव्य का नायक बनाकर" और उसके साथ ही पाठक को बार–बार दूरी और संचार के महत्व की याद एक ऐसे युग में दिलाकर सजग बना देता है जब कई मालों की ढुलाई. खच्चरों की रफ्तार से हुआ करती थी और मार्सिलेस से अल्जीयर्स के बीच समुद्र के रास्ते आने में अक्सर दो हफ्ते तक लग जाते थे।

लेकिन समय के वर्णन में ब्रॉडेल सबसे अधिक मौलिक रहे हैं। उनका तर्क था कि ऐतिहासिक समय कई परतों वाला होता है, जिसमें से प्रत्येक परत की अपनी रफ्तार या गति होती है जिसमें विभिन्न चरणों में परिवर्तन होते हैं। उनका यह विश्वास था ऐतिहासिक समय का समान गति से आगे न बढ़ना उसके लंबे दौर, मध्यम दौर और लघु दौर में विभाजन से व्यक्त होता है–

"भौगोलिक काल, सामाजिक काल, और व्यक्तिगत काल।" ब्रॉडेल ने अपनी विशाल रचना को ऐसे तीन समय–परतों या चरणों में संगठित किया, जिनमें से प्रत्येक परत या चरण ऐतिहासिक चित्रण के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण को दर्शाता है। स्थान और काल के इस प्रकार के सांचे में, ब्रॉडेल चीजों को वैश्विक पैमाने पर देखने का प्रयास करते हैं, और विषय के दायरों को लांघते हुए, भौगोलिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक को 'संपूर्ण इतिहास' में एकीकृत करते हैं।

मेडिटेरेनियन ब्रॉडेल के तीन चरणों वाले इतिहास की सबसे निचली परत है, उसके प्रथम भाग में स्वाभाविक संसार के साथ मनुष्यों के संपर्क के विशाल, समयहीन चरण शामिल हैं। लेखक यहां जो सामने रखते हैं उसे वह स्वयं ही 'जियोहिस्ट्री' (भू–इतिहास) कहते हैं, जो एक प्रकार का ऐतिहासिक भूगोल है जो पर्वतों और मैदानों, द्वीपों और तटों, भू मार्गों और समुद्री मार्गों के प्रति समर्पित है। यहां, मनुष्य पृथ्वी के साथ अंतरंग संबंध में है जिसने उसे जन्म दिया और उसका भरण–पोषण कर रही है। इस स्तर पर, जिसे ब्रॉडेल ला लॉग डैरी (लंबे समय तक चलने वाला या दीर्घकालिक) कहते हैं, समय लगभग स्थिर है या सबसे धीमी रफ्तार से चलता है क्योंकि दूरी एक सच्चाई. थी और संचार कठिन था। इस निम्नतम स्तर का "एक इतिहास है जिसके गुजरने को जान पाना लगभग असंभव है, विशेष रूप से मनुष्य का अपने आसपास के वातावरण से कैसा संबंध रहा, और यह एक ऐसा इतिहास है जिसमें परिवर्तन धीमा, बार–बार दुहराया जाने वाला, सदैव किसी चक्र में घूमते रहने वाला दिखता है।" इस सबसे लंबी अवधि के दौरान, इतिहासकार को किसी भी परिवर्तन को समझने के लिए सदियों का दृष्टिकोण रखने की आवश्यकता पड़ती है।

मेडिटेरेनियन के भाग दो में, ब्रॉडेल परिवर्तन की एक मध्यम गति को स्पष्ट करते हैं, जिसे वह अनुमानों (घटनाओं का मेल) का काल कहते हैं। यह अर्थव्यवस्थाओं, सामाजिक संरचनाओं, राजनीतिक संस्थानों, सभ्यताओं और युद्ध के रूपों की व्यापक गतिविधियों में लिया जाने वाला मध्यम अवधि या समय होता है, जो कुल मिलाकर इस दूसरे चरण की विषय वस्तु का निर्माण करते हैं। यहां अवधि मूल्यों और वेतनों की चक्रीय गतिविधि, जनसांख्यिकीय, तकनीकी और सामाजिक परिवर्तन, तथा व्यापार और

टिप्पणी

विनिमय की प्रवृत्तियों और चलनों में लगने वाला समय होती है। इस प्रकार के चरण पांच, दस, बीस, या शायद पचास वर्षों तक चलते हैं। संरचनाओं के इस चरण में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन जीवन के अन्य विभागों में होने वाले संरचनात्मक परिवर्तनों के लिहाज से देखना होगा। उदाहरण के लिए स्पेन की नीति में परिवर्तनों को सही प्रकार से समझने के लिए सरकार के वित्तीय संसाधनों में परिवर्तनों को समझना होगा।

पारंपरिक पद्धति के समान ही, मेडिटेरेनियन के भाग तीन का संबंध 'घटनाओं, राजनीति और लोगों' से है। इनमें सबसे कम समय लगता है। यह राजनीतिक घटनाओं का समय क्षेत्र और विभिन्न मामलों से जुड़े व्यक्तिगत चरित्रों का काल होता है जैसा कि हम उन्हें जानते हैं, जिसमें सूक्ष्म इतिहास तेज गति से आगे बढ़ता है और पारंपरिक इतिहासकार आम तौर पर इसी का वर्णन करते हैं। भाग तीन में, फिलिप द्वितीय के युग में मेडिटेरेनियन क्षेत्र के पारंपरिक राजनीतिक और सैन्य इतिहास का वर्णन अपने आप में ही महत्वपूर्ण है।

इस संपूर्ण रचना की मुख्य बात समय की तीन परतों के बीच संबंधों का एक पदानुक्रम है। दूसरी (मध्य) परत की सामूहिक नियति और सामान्य रुझान इसी संदर्भ में सतत जारी रहने वाले चक्र में चलती है जिसका निर्धारत भौगोलिक स्थिति से होता है। व्यक्तिगत कार्रवाई और राजनीतिक घटनाएं जो सबसे ऊपरी परत का हिस्सा होती हैं, वे निम्नतम और मध्य परतों में स्थापित सीमाओं के भीतर चलती हैं। ब्रॉडेल का मानना था कि समय के बहुलवादी दृष्टिकोण पर आधारित प्राथमिकताओं का निर्णायक उत्क्रमण, जिसमें संरचनाओं की धीमी गति का इतिहास विशेष है, वह सामाजिक सिद्धांत में महत्वपूर्ण योगदान करने में सक्षम था।

तीसरी पीढ़ी के एनालिस्ट इतिहासकार

ठीक जिस प्रकार ब्रॉडेल पहली पीढ़ी के इतिहासकारों, फेब्वरे और ब्लॉच से प्रेरित और प्रभावित थे, जो लंबे दौर के सामाजिक इतिहास पर जोर दिया करते थे, उसी प्रकार उनकी मेडेटेरेनियन ने एक नए प्रकार के इतिहास के उदय में योगदान दिया जो तीसरी पीढ़ी के सामाजिक इतिहास पर जोर देने वाले एनाल्स इतिहासकारों से संबंधित था।

पीटर बर्क ने लिखा है कि 1950 के दशक के बाद, इस प्रभाव के कारण कई फ्रेंच इतिहासकारों ने राजनीतिक इतिहास से सामाजिक इतिहास की ओर रुख किया, और घटनाओं में उलझे रहने की तुलना में संरचनाओं पर ध्यान दिया। यह प्रभाव उनके कार्यों में भी देखा जा सकता है जिस प्रकार से वे भौगोलिक स्थिति से आर्थिक और सामाजिक संरचनाओं की दिशा में बढ़ गए, और उनका समापन अनुमानों के अध्ययन से, अर्थात एक अवधि के चलन के अध्ययन से हुआ जो आम तौर पर सैकड़ों वर्षों या उससे भी अधिक देखे गए।

फ्रांस के बाहर भी, ब्रॉडेल ने इटली, स्पेन, पोलैंड, ब्रिटेन और अमेरिका में कई लोगों का इस दृष्टि से नेतृत्व किया कि वे अतीत को अलग तरीके से देखें और उनमें अपनी पद्धतियों के प्रति दिलचस्पी पैदा की। फिर भी, तीसरी पीढ़ी के इतिहासकारों ने ब्रॉडेल के पूर्णतावादी दृष्टिकोण की आलोचनाओं से भी यह सीखा कि इसकी उपलब्धि संभवतः भूमध्यसागरीय संसार जितने पैमाने पर नहीं हो सकी। इस कारण ही उन्होंने

क्षेत्रों के अध्ययन के लिए सूक्ष्म–इतिहास के दृष्टिकोण को अपनाया, जिसमें चौनु एक अपवाद की तरह था। यही नहीं, उन्होंने फेब्बरे और ब्लॉच की ओर से शुरु किए गए सामूहिक मनोवृत्तियों के इतिहास को आगे बढ़ाने के साथ ही मात्रात्मक विधियों को अपनाने की दिशा में प्रगति की।

टिप्पणी

पियरे चौनु, ले रॉय लाडुरी, ले गोफ रॉबर्ट मानदौ, किथ थॉमस

तीसरी पीढ़ी के इतिहासकारों में, पियरे चौनु सबसे उल्लेखनीय रहे हैं।

चौनु ने ब्रॉडेल मॉडल को अपनाते हुए, अटलांटिक को अपना विषय चुना। उनका बारह खंडों वाला अध्ययन (1955–60) जिसे उन्होंने अपनी पत्नी की सहायता से लिखा, 1501 से 1650 के बीच सेविल और अमेरिका की नई. दुनिया के बीच व्यापार के पतन पर केंद्रित है।

इस विषय पर वैश्विक दृष्टिकोण को अपनाते हुए, चौनु ने संचार की बदलती समस्याओं का वर्णन करते हुए इतिहास में अंतरिक्ष का सफलतापूर्वक समावेश किया।

ब्रॉडेल या चौनु ने 'कुल इतिहास' की अवधारणा और कार्यान्वयन जिस पैमाने पर किया था, वह धीरे–धीरे असंभव लगने लगा। विचार की इस शैली का सबसे सशक्त प्रदर्शन ब्रॉडेल के सबसे होनहार शिष्य, एमानुएल ले रॉय लाडुरी ने किया, जो कॉलेज डे फ्रांस में उसी प्रकार उनके बाद आए, जिस प्रकार फेब्बरे का स्थान ब्रॉडेल ने लिया था।

ले रॉय लाडुरी पर ब्रॉडेल का गहरा प्रभाव था और वह कल्पना शक्ति, विविध प्रकार की जिज्ञासा तथा बहुविषयी दृष्टिकोण के आधारों पर अपने शिक्षक के समान थे। इसके बावजूद, उनकी ओर से लिखी गई 'कुल इतिहास' की एक उत्कृष्ट रचना, 'द पीजेंट्स ऑफ लांगडेक' (1966), मेडेटेरेनियन की तुलना में अपने अपेक्षाकृत सीमित भौगोलिक पैमाने के अनुसार अलग थी। यह एक क्षेत्रीय या स्थानीय 'कुल इतिहास' है, या जियोवानी लेवी ने कहा, सूक्ष्म इतिहास है, जिसका संबंध पंद्रहवीं से अठारहवीं सदी के बीच लांगडेक के किसानों से है।

ब्रॉडेल के पारिस्थितिक नियतिवाद को साझा करते हुए, अर्थात, मानव इतिहास की तुलना में स्वाभाविक विश्व को केंद्र में रखते हुए, लाडुरी लांगडेक की भौगोलिक स्थिति से शुरुआत करते हैं लेकिन ब्रॉडेल की त्रि–स्तरीय समय के पैमाने को नहीं अपनाते हैं। इसकी बजाय, उन्होंने इतिहास को अवधियों में बांट दिया और प्रमाण से जुड़ी जानकारियों को छांटने के लिए मात्रात्मक तकनीक तैयार की जिससे प्रत्येक युग की जनसंख्या संबंधी और आर्थिक चलनों का विश्लेषण किया जा सके।

ऐसे प्रत्येक विश्लेषण के साथ ही लाडुरी बदलती परिस्थितियों का सामना करते उन किसानों की प्रतिक्रिया भी सामने रखते हैं, जिसमें विरोध और विद्रोह के आंदोलनों पर खास जोर है।

सामाजिक इतिहासकारों की तीसरी पीढ़ी से जुड़ा संभवतः सबसे महत्वपूर्ण पहलू सामूहिक मनोवृत्तियों के इतिहास या फिर जिसे सांस्कृतिक इतिहास कहा जा सकता है, उसका उदय था – जो अध्ययन के सामाजिक इतिहास के क्षेत्र का पसंदीदा विषय है। फेब्बरे ने मनोवैज्ञानिक कालानुक्रम पर प्रहार किया था– "यह झूठी धारणा कि अतीत में लोग उसी प्रकार से सोचते थे जैसा कि हम सोचते हैं," और उसी प्रकार के

टिप्पणी

मनोविज्ञान से ऐतिहासिक बातों को जानने की हिमायत करते हैं जैसा कि उस समय के स्त्री और पुरुष सोचते और महसूस करते थे। ब्लॉच के द रॉयल टच ने पुराने जमाने के मानसिक ढांचे को समझने का रास्ता दिखाया था। इस उदाहरण पर चलते हुए प्राचीन काल के मन की दशा को समझने के कई प्रयास किए गए। इस दिशा में एक मौलिक अध्ययन रॉबर्ट मंडॉउ का 'इंट्रोडक्शन टू मॉडर्न फ्रांस : 1500–640' (1961) था। मंडॉउ की रचना उस अतिशयोक्तिपूर्ण भय को लेकर एक ऐतिहासिक पड़ताल है जो शुरुआती आधुनिक लोगों के मन में प्राकृतिक आपदाओं और बीमारियों को लेकर बना रहता था। एक ऐसा भय जो बीमारी की अतिसंवेदनशीलता, अत्यधिक दुख, दया और क्रूरता की स्थिति में होता है।

अपनी–अपनी दुनिया को लेकर भय से ग्रस्त लोगों की इस तस्वीर के संबंध में मंडॉउ ने ब्रॉडेल के सामाजिक नियतिवाद को साझा किया। उस विचार को जिसके अनुसार इस संसार को मानवता से बाहर की शक्तियों ने स्वरूप दिया है। प्राचीन काल की मनोदशाओं को समझने की इस परंपरा को विभिन्न सामाजिक इतिहासकारों ने अपनी कृतियों से आगे भी जारी रखा।

इसी प्रकार सामाजिक इतिहासकारों वाली विचारधारा से पूरी तरह प्रभावित कुछ अन्य कृतियां थीं– 'जाक ले ग्रॉफ यूरोपीय सर्वेक्षण', 'मिडिएवल सिविलाइजेशन 400–1500' (1964), ले रॉय लाडुरी का 'मॉन्टाइलू' (1975) और कार्निवल 'इन रोमन्स' (1980), और 'द इंग्लिशमैन' कीथ थॉमस का प्रमुख अध्ययन, 'रिलीजियन एंड द डिक्लाइन ऑफ मैजिक' (1971)। यह सभी प्राचीन धारणाओं और विचारों के भेदक अध्ययन थे।

अपनी प्रगति जांचिए

7. प्रत्यक्षवादी इतिहास लेखन का 'जन्मदाता' किसे माना जाता है?

   (क) फ्रांसिस बेकन (ख) ऑगस्ट कॉम्टे

   (ग) मैकियावली (घ) जोहन्नेस केपलर

8. भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान किसका माना जाता है?

   (क) डी.डी. कोसांबी (ख) रामशरण शर्मा

   (ग) रोमिला थापर (घ) डी.आर. चानना

3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (क)
4. (ग)
5. (ग)

6. (ख)
7. (ख)
8. (क)

टिप्पणी

3.7 सारांश

इतिहास लेखन की ग्रीको–रोमन अवधारणाओं में यूनानी कवि हेसियोड द्वारा प्रतिपादित युग चक्रवादी सिद्धांत का भी महत्वपूर्ण स्थान है। हेसियोड ने चार धातुओं के नाम पर चार युगों की परिकल्पना प्रस्तुत की थी–प्रथम युग स्वर्ण युग, द्वितीय युग रजत युग, तृतीय युग कांस्य युग एवं चतुर्थ व अंतिम युग लौह युग था। स्वर्ण युग में जहां मानव श्रेष्ठतम स्थिति में था वहीं वर्तमान में चल रहे लौह युग में मानव अपनी हीनतम अवस्था में है। वर्तमान काल लौह युग में मानव जीवन दुःख से परिपूर्ण है तथा देवता भी हम पर और अधिक भार डालेंगे। यूनानी कवि हेसियोड ने धर्मशास्त्र के प्रति अत्यधिक रुचि दर्शाते हुए देवों के जन्म के साथ मानवीय संबंधों को जोड़ने का प्रयास किया था। कॉलिंगवुड महोदय ने हेसियोड की युग–चक्रवादी अवधारणा को अनैतिहासिक अवधारणा करार दिया है। वस्तुतः कई विद्वानों ने होमर एवं हेसियोड की रचनाओं को इतिहास नहीं माना। शाटवेल महोदय ने तो यहां तक कहा है कि ये पद्यात्मक रचनायें इतिहास के मार्ग में बाधक हैं।

प्राचीन भारत में इतिहास लेखन के संबंध में दो प्रकार की अवधारणाएं प्रचलित हैं। अधिकांश पाश्चात्य विद्वानों के साथ–साथ कुछ भारतीय विद्वानों का मानना है कि प्राचीन भारतवासियों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव था एवं विविध कारणों से प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के प्रति उदासीन थे। दूसरी ओर, अब अधिकांश भारतीय विद्वानों के साथ–साथ कुछ पाश्चात्य विद्वान भी इस अवधारणा का तथ्यों के साथ पुरजोर विरोध करते हैं कि प्राचीन भारतवासियों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव था एवं वे इतिहास लेखन के प्रति उदासीन थे। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के विकास को समझने से पहले हम उक्त दोनों मतों की विवेचना प्रस्तुत करेंगे कि किस आधार पर विद्वानों का एक वर्ग प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अभाव को इंगित करता है और किन तर्कों के साथ विद्वानों का दूसरा वर्ग उक्त अवधारणा का विरोध करता है।

प्राचीन भारत में वैदिक काल से ही ऐतिहासिक साहित्य के सृजन की परंपरा किसी न किसी रूप में अस्तित्व में आ चुकी थी। प्राचीनतम वैदिक ग्रंथ ऋग्वेद को माना जाता है। जिसकी रचना 1500 से 1000 ई.पू. के बीच मानी जाती है। ऋग्वैदिक संस्कृति की पृष्ठभूमि पर ही उत्तर वैदिक कालीन संस्कृति का विकास हुआ और उत्तर वैदिक काल का इतिहास हमें ऋग्वेद के आधार पर ही विकसित संहिता ग्रंथ (सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद), ब्राह्मण, अरण्यक तथा उपनिषदों से ज्ञात होता है जिनका समय लगभग 1000 से 600 ई.पू. माना जाता है। इस प्रकार 1500 से 600 ई.पू. तक का इतिहास हमें वेदों के माध्यम से ही मिलता है।

मध्यकालीन इतिहास लेखन की परंपरा में पश्चिमी इतिहास लेखन का विशिष्ट स्थान है। पश्चिमी इतिहास लेखन का प्रमुख केंद्र बिंदु ईसाई इतिहास लेखन की

टिप्पणी

परंपरा है। विधर्मियों पर ईसाइयत की विजय ने इतिहास लेखन की परंपरा का भी प्रभावित किया। जहां इतिहास लेखन की ग्रीको–यूनानी परंपरा में बुद्धि एवं विवेक का महत्वपूर्ण स्थान था, वहीं ईसाई इतिहास लेखन की परंपरा में धर्म को सर्वोपरि स्थान प्राप्त हुआ। ईसाई इतिहासकारों ने विधर्मियों के इतिहास लेखन को शैतान की कृति कहकर इतिहास लेखन में ओल्ड टेस्टामेंट को उच्च स्थान दिया परंतु विधर्मी इतिहास लेखन के बावजूद भी ईसाई उनके इतिहास दर्शन से कहीं न कहीं प्रभावित थे क्योंकि ईसाई धर्म में परिवर्तन के पहले उनकी शिक्षा–दीक्षा वस्तुतः विधर्मी संस्कृति में ही संपन्न हुई थीं।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन कला की पृष्ठभूमि का निर्माण इसलाम धर्म के उदय के साथ अरब प्रायद्वीप में हुआ। इसलाम में इब्र शब्द का भावार्थ इतिहास ही है। इब्र शब्द का वास्तविक अर्थ 'शिक्षाप्रद दृष्टांत' है। इसलाम धर्म ग्रंथों कुरान तथा हदीस दोनों में ही इतिहास के प्रसंग में 'इब्र' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसलामी इतिहास लेखन में यथासंभव साक्ष्यों की सहायता लेकर यथार्थता की प्रस्तुति पर बल दिया गया है। पैगम्बर हजरत मोहम्मद साहब के समय (622–632 ई.) से ही प्रारंभिक इसलामी इतिहास अरबी भाषा में लिखा गया। इसके पश्चात यह फारसी एवं तुर्की भाषा में भी लिखा गया।

प्रत्यक्षवादी इतिहास लेखन का जन्मदाता फ्रांस के ऑगस्ट कॉम्टे को माना जाता है। किन्तु वास्तव में इस दिशा में प्रथम प्रयास 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी में हुआ। बार्थाल्ड जार्ज नेबूर (1776–1831 ई.) एवं लियोपोल्ड वॉन रॉके (1795–1886 ई.) ने 19वीं सदी के प्रारंभ में तथ्यों को पुनः स्थापित कर ऐतिहासिक दृष्टिकोण को दिशा दी। बर्लिन विश्वविद्यालय में कार्य कर नेबूर एवं रॉके ने वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक विश्लेषणों के सिद्धांत को आगे बढ़ाया।

इतिहास लेखन पर प्रत्यक्षवाद का प्रभाव एक नए तरह के इतिहास के विकास में देखा जा सकता है जिसमें विवरण का बहुत सूक्ष्मता से ध्यान रखा जाता है। प्रत्यक्षवादियों ने चाहे वे रैंकियन हों या कॉमेटियन, तथ्यों की अंधभक्ति और विवरणों का एक मत तैयार किया और इतिहासकार उन सारे विवरणों की जांच में लग गए जो वे कर सकते थे। इसका परिणाम विस्तृत और सावधानीपूर्वक जुटाई ऐतिहासिक सामग्री की अप्रत्याशित वृद्धि रहा, चाहे वह साहित्यिक हो, पुरालेखीय हो, या पुरातात्विक हो।

व्हिग परंपरा के एक और इतिहासकार जी.एम.ट्रेवेलान थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में स्वीकार किया था कि उनका पालन पोषण एक ऐसे परिवार में हुआ था जिसमें व्हिग परंपरा काफी मात्रा में विद्यमान थी। ई.एच. कार ने उसे व्हिग परंपरा का अंतिम महान उदारवादी इतिहासकार कहते हुए बताया है कि वह अपने वंश परंपरा की जड़े महान व्हिग इतिहासकार जार्ज ओटो ट्रेवलान से लेकर व्हिग इतिहासकारों में महानतम मैकाले तक खोजता है। जी. एम. ट्रेवलान ने अपनी श्रेष्ठतम परिपक्व कृति इंग्लैण्ड अंडर क्वीन एन के व्हिग परंपरा के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालते हुए व्हिग परंपरा की जड़ो को मजबूती के साथ स्थापित करने का प्रयास किया है।

भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा के प्रारम्भिक प्रयास के रूप में बी.एन. दत्त की दो प्रमुख पुस्तकों 'डाइलेक्टिक्स ऑफ लैण्ड ओनरशिप इन इण्डिया'

एवं 'कास्ट एण्ड क्लास इन एंशिएंट इण्डिया' को लिया जा सकता है। भारत के प्रमुख मार्क्सवादी विचारक श्रीपाद अमृत डांगे ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखी गई अपनी कृति 'इण्डिया फ्रॉम प्रिमिटिव कम्यूनिज्म टू स्लेवरी' में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भारत भी पश्चिमी देशों की भांति विकास के विभिन्न चरणों–दासता और सामंतवाद से होकर गुजरा है। डांगे ने आर्यों की प्राचीन सामुदायिक व्यवस्था की समाप्ति के उपरान्त भारत में दास समाज के उदय का दावा किया है। मार्क्सवाद के प्रति अत्यधिक झुकाव के बावजूद दत्त एवं डांगे की कृतियों को भारतीय इतिहास में कोई खास महत्व नहीं मिला।

टिप्पणी

3.8 मुख्य शब्दावली

- **गवेषणा** : खोज करना, छानबीन
- **कतिपय** : अनेक, विविध।
- **आख्यान** : पौराणिक कथा
- **सत्यानुसंधान** : सत्य की खोज।
- **संप्रदाय** : समुदाय, वर्ग
- **ख्वाब** : स्वप्न, सपना।
- **परिप्रेक्ष्य** : संदर्भ।
- **अतिशय** : अधिकता।
- **दृष्टिगोचर** : दिखाई. देना।
- **उत्तरदायित्व** : जिम्मेदारी।

3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. प्रमुख ग्रीको–रोमन इतिहासकारों के नामों का उल्लेख कीजिए।
2. इतिहास लेखन में वैदिक इतिहास की क्या भूमिका है? स्पष्ट कीजिए।
3. फारसी इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताएं बताइए।
4. आधुनिक इतिहास लेखन में प्रत्यक्षवाद पर संक्षिप्त नोट लिखिए।
5. परंपरागत मार्क्सवाद का जनक किसको माना जाता है? उल्लेख कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. ग्रीको–रोमन इतिहास लेखन परंपरा को समझाते हुए युग चक्रवादी सिद्धांत की विवेचना कीजिए।
2. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. अरबी एवं फारसी इतिहास लेखन का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।

4. आधुनिक इतिहास लेखन में ऑगस्ट कॉम्टे का क्या योगदान है? उल्लेख कीजिए।
5. एक नए उपागम के रूप में एनाल्स इतिहास लेखन पर टिप्पणी कीजिए।

टिप्पणी

3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. कार ई.एच., इतिहास क्या है, अनुवाद अशोक चक्रधर, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई. दिल्ली, 1993.
2. चौबे झारखंडे, इतिहास दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1999.
3. थापर रोमिला, इतिहास की पुनर्व्याख्या, राजकमल प्रकाशन, नई. दिल्ली, 1991.
4. पांडेय गोविंद चंद्र, इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धांत, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1993.
5. पांचाल एवं बघेला, इतिहास के सिद्धांत एवं पद्धतियां, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर.
6. बुद्ध प्रकाश, इतिहास दर्शन, हिंदी समिति, प्रयाग, 1962.
7. राय कौलेश्वर, इतिहास दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, 1999.
8. लोहिया राममनोहर, इतिहास चक्र, लहर प्रकाशन, इलाहाबाद, 1935.
9. वर्मा लालबहादुर, इतिहास के बारे में, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000.
10. शर्मा रामविलास, इतिहास दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई. दिल्ली, 1995.
11. सांकृत्यायन राहुल, अतीत से वर्तमान, विद्या मंदिर प्रेस, वाराणसी, 1956.
12. श्रीवास्तव बी.के., इतिहास लेखन : अवधारणा, विधाएं एवं साधन, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा, 2008.

इकाई 4 इतिहास के उपागम

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 इतिहास का धर्म संबंधी एवं प्राच्यवादी उपागम
4.3 इतिहास का साम्राज्यवादी एवं राष्ट्रवादी उपागम
4.4 इतिहास का मार्क्सवादी तथा आधुनिक मार्क्सवादी उपागम
4.5 इतिहास का उपाश्रय उपागम
4.6 इतिहास का उत्तर–आधुनिकतावादी उपागम
4.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.8 सारांश
4.9 मुख्य शब्दावली
4.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.11 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

सन् 1757 के प्लासी के युद्ध के पश्चात ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में अपनी राजनीतिक जड़ें फैलाना आरंभ किया। विभिन्न राजे रजवाड़ों को बेदखल कर उनके राज्य का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया। भारतीय न्याय विधि की जानकारी के अभाव में ब्रिटिश न्यायाधीशों को भारतीय मामलों में न्याय करने में मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था। भारतीय रीति रिवाज एवं न्याय परंपरा को समझने के लिए प्राचीन भारतीय ग्रंथ मनुस्मृति का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। इसके अनुवाद को पढ़कर पाश्चात्य देशों की रुचि प्राचीन भारतीय ग्रंथों के अध्ययन हेतु जागृत हुई। ऐसे विद्वान प्राच्यविद कहे गये। प्राच्यविद प्रशासकों ने भारत में एसियाटिक सोसाइटी की स्थापना की। इसके द्वारा प्राचीन भारतीय साहित्य का अंग्रेजी अनुवाद आरंभ हुआ। इस प्रकार प्राच्यविदों ने प्राच्यवादी उपागम का उपयोग कर भारतीय इतिहास का लेखन किया।

प्राच्यवादी उपागम द्वारा साम्राज्यवादी अंग्रेज प्राचीन भारत के इतिहास एवं संस्कृति के परिचित हुए। भारत में सत्ता के औचित्य को सिद्ध करने हेतु साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने दलील दी कि प्राचीन एवं मध्ययुगीन शासकों की तुलना में ब्रिटिश शासन भारतीयों के लिए अधिक लाभ दायक है। हम भारतीयों को सभ्य बनाने आये है। हम प्रथम बार भारत को गणतंत्रात्मक शासन दे रहे हैं। मध्य युगीन मुसलिम शासकों के अत्याचारपूर्ण शासन से ब्रिटिश शासन कई मामलों में उत्तम हैं।

साम्राज्यवादी इतिहासकारों की झूठी दलीलों को गलत प्रमाणित करने के उद्देश्य से राष्ट्रवादी इतिहास लेखन अस्तित्व में आया। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन कर बताया कि भारतीय सभ्यता, पाश्चात्य सभ्यता से प्राचीन है। प्राचीन भारत में गणतंत्र व्यवस्था विद्यमान थी। इलाहाबाद स्कूल ऑफ हिस्ट्री के राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भी साबित किया कि मध्ययुगीन मुसलिम शासकों के अधीन जनता की स्थित उत्तम थी। भारत का धन भारत में ही खर्च होने से अर्थव्यवस्था उन्नत थी।

टिप्पणी

इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या का प्रणेता स्वयं कार्ल मार्क्स था। मार्क्स ने इतिहास की आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत कर विश्व जनमत का ध्यान अपनी ओर खींचा। धनीवर्ग द्वारा गरीब वर्ग के शोषण को इतिहास की विषयवस्तु बनाकर वर्ग संघर्ष का सिद्धांत प्रतिपादित किया। मार्क्स एवं उनके दर्शन का उपयोग विश्व के इतिहासकारों ने किया। इसी शृंखला में भारत में भी मार्क्सवादी इतिहास लेखन का आरंभ हुआ।

मार्क्सवाद के पश्चात भारत में इतिहास लेखन की उपाश्रयी विचारधारा अस्तित्व में आयी। इसका अर्थ था इतिहास को नीचे से ऊपर की ओर देखना। इसे जनवादी इतिहास कहा गया।

विश्व में उत्तर–आधुनिकतावाद के प्रणेता फ्रांस के माइकल फूको, ज्यां एफ लियोतार्ड एवं देरिदा आदि माने जाते हैं। इन्होंने हाशिए पर रहे लोगों को इतिहास के पन्नों पर लाने की बात की। व्यक्ति सत्ता का उत्पाद है यह सिद्ध किया। भारत में स्वाधीनता पश्चात उत्तर–आधुनिकतावादी इतिहास लेखन आरंभ हुआ।

इस इकाई में धर्म संबंधी एवं प्राच्यवादी, साम्राज्यवादी एवं राष्ट्रवादी उपागम द्वारा इतिहास लेखन की विस्तार से विवेचना प्रस्तुत की गई है, साथ ही इतिहास के मार्क्सवादी, उपाश्रयी एवं उत्तर–आधुनिकतावादी उपागम की विस्तृत विवेचना भी की गई है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- इतिहास लेखन के धर्म संबंधी एवं प्राच्यवादी उपागम की व्याख्या कर पाएंगे;
- इतिहास के साम्राज्यवादी एवं राष्ट्रवादी उपागम को समझ पाएंगे;
- इतिहास लेखन के मार्क्सवादी तथा आधुनिक मार्क्सवादी उपागम के बारे में जान पाएंगे;
- इतिहास के उपाश्रयी उपागम की विवेचना कर पाएंगे;
- इतिहास लेखन के उत्तर आधुनिकतावादी उपागम की समीक्षा कर पाएंगे।

4.2 इतिहास का धर्म संबंधी एवं प्राच्यवादी उपागम

इतिहास के धर्म संबंधी एवं प्राच्यवादी उपागम को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है।

इतिहास का धर्म संबंधी उपागम

मध्य युग में संत आगस्टाइन ने धर्म संबंधी उपागम का प्रयोग किया। उनका जन्म 354 ई. में हुआ। वे पहले मैनेशियन विचारधारा के थे बाद में उन्होंने संशयवादी एवं नव प्लेटोवादी विचारधारा को अपनाया। एम्ब्रोज के संपर्क में आकर कैथोलिक ईसाई बन गया। 395 ई. में जूनियर बिशप बना एवं कालांतर में बिशप बना और जीवन के अंत तक इसी पद पर रहा।

टिप्पणी

संत आगस्टाइन ने अनेकानेक ग्रंथों का सृजन कर अपने धार्मिक तथा आध्यात्मिक विचारों को प्रकट किया। संत आगस्टाइन ईसाई जगत के महान विचारक थे। ईश्वर की आज्ञा का पालन करना उन्होंने मनुष्य का परम धर्म माना है। बुद्ध प्रकाश ईसाईयों के द्वारा अनुपयुक्त इतिहास के धर्म संबंधी उपागम को इससे पूर्व इसलाम एवं यहूदियों की इतिहास की धर्मगत अवधारणा के समन्वय के रूप में देखते है। ईसाईयों से पूर्व इतिहास की पारसी अवधारणा के तहत जरथुस्त्र ने इतिहास को सद् एवं असद् के बीच के संघर्ष के रूप में देखा था जिसमें सद् की विजय इतिहास का चरम लक्ष्य है। पारासियों के साथ–साथ इतिहास का धर्म संबंधी दृष्टिकोण यहूदियों की इतिहास की अवधारणा में भी दृष्टिगोचर होता है। एडवर्ड मेयर के अनुसार यहूदी धर्म और संस्कृति का प्रभाव जरथुस्त्र द्वारा प्रतिपादित ईरानी धर्म पर भी परलक्षित होता है। यहूदी परंपरा में प्रकृति और इतिहास को पूर्णतः भगवान की लीला बताया गया। यहूदी इतिहास के विद्वान दानियल ने इतिहास की रेखात्मक व्याख्या प्रस्तुत की। इसके अनुसार काल एक रेखा के समान एक प्रारंभिक बिन्दु से चलकर ऊपर नीचे सरकता हुआ एक लक्ष्य की ओर जा रहा है और यह ईश्वरीय चमत्कार है। उसकी इच्छा और उद्देश्य की पूर्ति है।

यहूदी एवं जरथुस्त्री इतिहास की अवधारणा में संसार की गति ईश्वर की लीला मानी गई है। यहूदी अपने को ईश्वर का सर्वप्रिय जन मानते हैं परंतु उनका इतिहास का दृष्टिकोण सार्वभौमिक है। इनके अनुसार चूंकि ये ईश्वर के सर्वप्रिय जन हैं। अतः ईश्वर पहले उनका एवं तत्पश्चात समस्त विश्व का कल्याण करेगा।

चीनी इतिहास दर्शन में भी इतिहास के धर्म संबंधी उपागम का अनुप्रयोग दृष्टिगोचर होता है। कन्फ्यूशियस धर्म चीन का प्रमुख धर्म है। चीनी अवधारणा के अनुसार तिएन (ईश्वर), बांग (सम्राट) को अपना मिङ्ग (अधिकार पत्र) देकर पृथ्वी पर शासन करने हेतु भेजता है। पृथ्वी पर अनाचार, अत्याचारों का बढ़ना, प्राकृतिक प्रकोप–बाढ़, भूकंप, महामारी आदि का बढ़ना इस बात का सूचक हैं कि ईश्वर ने सम्राट से शासन करने का अधिकार पत्र वापस ले लिया है। चीन में इस प्रक्रिया को मिङ्ग कहा गया है।

इसलामी इतिहास की अवधारणा में भी इतिहास का धर्म संबंधी उपागम स्पष्टतः देखा जा सकता है। इसकी विस्तृत विवेचना हम इतिहास लेखन की अरब एवं पर्शियन परंपरा में कर चुके हैं। इतिहास की ईसाई अवधारणा के अनुरूप ही इसलामी अवधारणा में भी ईश्वर अल्लाह को सृष्टि का प्रमुख नियंता माना गया है। इसलामी अवधारणा के अनुसार प्राकृतिक जगत को अनिवार्यतः अल्लाह द्वारा पूर्व निर्धारित परियोजना का पालन करना होता है। इसलामी इतिहास की अवधारणा के अनुसार चूंकि मनुष्य सृष्टि की विशिष्ट रचना है अतः अल्लाह समय–समय पर मनुष्य को सत्मार्ग का मार्ग प्रदान करने के निमित्त अपने पैगंबर दूत भी भेजता है। पैगंबर के रूप में मुहम्मद साहब को भेजा जाना इसी परंपरा की अंतिम कड़ी है।

इतिहास में धार्मिक उपागम का अनुप्रयोग मध्ययुगीन ईसाई इतिहास की सर्वप्रमुख विशेषता है। जहां इतिहास लेखन की ग्रीको–रोमन परंपरा में बुद्धि एवं विवेक को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, वहीं ईसाई इतिहास की मध्ययुगीन परंपरा में धर्म को सर्वोपरि स्थान दिया गया। ईसाई इतिहासकारों ने विधर्मियों के इतिहास लेखन को शैतान की कृति कहकर इतिहास लेखन में ओल्ड टेस्टामेंट को सर्वोच्च स्थान दिया।

टिप्पणी

संत पॉल को ईसाई इतिहास दर्शन का प्रतिपादक माना गया है। 'रोमंस' 5/12 में संत पॉल ने इतिहास को तीन–भाग में बांटा है जिनके प्रतिनिधि क्रमशः आदम, मूसा और ईसा हैं। ईसाई अवधारणा के अनुसार रोमन साम्राज्य का उत्थान एवं पतन ईश्वरीय इच्छा का परिणाम है। ईसाई धर्म की उन्नति के लिए ही रोमन साम्राज्य का पतन हुआ।

410 ई. में जब रोम बर्बर जातियों के आक्रमणों से जर्जरावस्था में था तो कुछ लोगों की धारणा थी कि रोमनों द्वारा ईसाई धर्म का अपनाना दैवीय प्रकोप के रूप में रोमनों पर अवतीर्ण हो रहा है। इस आरोप का उत्तर देने के लिए ईसाई लेखकों ने अपनी लेखनी संभाली जिनमें संत आगस्टाइन का नाम अग्रणी है।

उक्त आरोप का खंडन करने के लिए ही आगस्टाइन ने अपनी सर्वप्रमुख कृति देवनगर में तर्क दिया कि यदि यह आरोप सत्य होता कि ईसाई धर्म ग्रहण करने के कारण रोम पर बर्बर जातियों का कहर टूटा है तो वे रोमन ईश्वरीय कहर से कैसे बच गये जिन्होंने ईसाई गिरजाघरों में शरण ली थी।

संत आगस्टाइन ने देवनगर तथा पापनगर के विरोधाभास का प्रतिपादन करते हुए इतिहास की धार्मिक व्याख्या की। ईश्वर के प्रिय, आज्ञाकारी लोग देव नगर में रहते हैं एवं ईश्वर विरोधियों का वास पाप नगर है। रोम का उत्थान ईश्वरीय कृपा का प्रतीक था परंतु वहां पाप, अनाचार, अनैतिकता का बढ़ना उसके पतन का कारण है किन्तु ईसाईयों के लिए रोम के पतन का महत्व नगण्य है। आगस्टाइन ने इतिहास क्रम की एक धार्मिक रूपरेखा प्रस्तुत की है जिसमें ईश्वर को मुख्य अभिनेता माना गया है। सृष्टि में जो कुछ भी हो रहा है, सब उसी की कृपा का फल है। सत्य और पाप के द्वंद्व के कारण ही इतिहास की गति निश्चित होती है, साम्राज्यों का उत्थान–पतन होता है एवं संस्कृतियों का उद्‌भव एवं पतन होता है। पीटर ग्रे एवं कावनॉ के अनुसार संत आगस्टान की इतिहास की व्याख्या को एक हजार से अधिक वर्षों तक कैथोलिक ईसाईयों के मध्य इतिहास की संदेह रहित तथा सर्वस्वीकृत व्याख्या माना जाता रहा है। इस तारतम्य में माइकल मुरे ने भी लिखा है कि ''सम्पूर्ण मध्य युग में आगस्टाइन ने इतिहास की ईसाई व्याख्या के लिए प्रविधि एवं विषय–वस्तु की आपूर्ति की।''

बुद्ध प्रकाश के अनुसार इतिहास के धार्मिक उपागम के साथ–साथ ईसाई इतिहास दर्शन का उत्कर्ष एवं अंत फ्रेन्च विद्वान जाक बेबिन बोसुए 1627–1704 ई. की कृति 'विश्व इतिहास का निबन्ध' में परिलक्षित होता है। उनके मतानुसार विश्व का सफल कार्यकलाप इतिहास की सम्पूर्ण गतिविधि ईश्वरीय इच्छा एवं लीला पर निर्भर है। ईसू क्राईस्ट का आगमन ईश्वर की महान और विशाल योजना का परिचायक है। यह योजना मानव को पाप से हटाकर सत्य और अमरत्व तक ले जा रही है। प्रो. जे.बी. ब्यूरी ने बोसुए की इस योजना की कटु आलोचना की है। कालांतर में काल्बिन तथा मार्टिन लूथर जैसे सुधारवादियों ने मनुष्य की वैयक्तिक स्वतंत्रता पर बल दिया जो कि आधुनिक इतिहास का प्रमुख आधार बना और मध्ययुगीन धर्मपरक इतिहास का स्थान मानवपरक गतिविधियों एवं मानवपरक विचारों ने ग्रहण कर लिया।

इतिहास का प्राच्यवादी उपागम

पाश्चात्य देशों के ऐसे विद्वान जिनकी रुचि प्राच्य (पूर्वी) देशों की संस्कृति के अध्ययन में थी उन्हें प्राच्य संस्कृति विशारद कहा जाता है। उनके द्वारा लिखित इतिहास प्राच्यवादी उपागम कहलाया।

पृष्ठभूमि

प्राच्य संस्कृति विशारद अथवा प्राच्यविद् प्रायः उन यूरोपीय विद्वानों को कहा गया है जिन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के अध्ययन में रुचि ली। 18 वीं सदी से भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के प्रति यूरोपीय विद्वानों ने रुचि लेना आरम्भ किया। 15 वीं शताब्दी में यूरोप का भारत के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित हुआ जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न यूरोपीय विद्वान और मिशनरी एशियाई इतिहास एवं संस्कृति के प्रति आकर्षित हुए। प्रारंभिक दौर में यूरोपीय विद्वान का ध्यान भारत के विशेष संदर्भ में विशेषतः संस्कृत एवं फारसी भाषा के अध्ययन की ओर आकृष्ट हुआ। अठारहवीं शताब्दी के अंत में रायल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना के साथ ही व्यवस्थित तौर पर प्राचीन भारतीय संस्कृत ग्रंथों मुख्यतः वैदिक ग्रंथों के अध्ययन और अनुवाद के कार्य में तेजी आई।

टिप्पणी

1765 ई. में बंगाल और बिहार पर जब ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन स्थापित हुआ तो शासकों को हिंदुओं के उत्तराधिकार की न्याय व्यवस्था करने में कुछ कठिनाइयां सामने आयीं, परिणामतः 1776 ई. में मनु स्मृति का अंग्रेजी अनुवाद 'ए कोड ऑफ जेंटू लाज' के नाम से किया गया। इस प्रकार प्राचीन भारतीय रीति–रिवाज और कानूनों को समझने का प्रयास किया गया। आचार्य द्विवेदी के अनुसार, ''इसे देखकर यूरोप के विद्वानों में खलबली मच गई।'' उन्होंने कहा, ''जिस जाति के ज्ञान भंडार में ऐसी–ऐसी पुस्तकें विद्यमान हैं, उसका भूतकाल बड़ा ही उज्जवल रहा होगा, उसमें ऐसे–ऐसे न मालूम कितने ग्रंथ पड़े होगे, अतएव इस जाति के पूर्वेतिहास से परिचय प्राप्त करने से अनेक लाभ होने की संभावना है।''

एसियाटिक सोसायटी की स्थापना

सर विलियम जोंस (1746–1794) ने तत्कालीन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स की सहायता से कलकत्ता में 15 जनवरी, 1784 ई. को 'एशियाटिक सोसायटी' नामक संस्था की स्थापना की। इस संस्था ने एशिया खंड के इतिहास, साहित्य, स्थापत्य, धर्म, समाज और विज्ञान आदि विषयों के संबंध में खोज करना, अपना उद्देश्य निश्चित किया। प्राच्यविदों में सर विलियम जोंस का नाम अग्रणी रूप से लिया जा सकता है। सन् 1783 ई. में विलियम जोंस फोर्ट विलियम के प्रधान न्यायाधीश पद पर नियुक्त हुए थे। न्यायाधीश के रूप में इन्होंने अनुभव किया कि प्राचीन भारतीय सामाजिक परंपराओं एवं रीति–रिवाजों को समझे बिना भारतीय न्याय व्यवस्था का सुचारू संचालन संभव नहीं है। अतः उन्होनें प्राचीन भारतीय संस्कृत ग्रंथों के अध्ययन के साथ–साथ उनके अनुवाद की भी आवश्यकता अनुभव की। फलस्वरूप विलियम जोंस ने 1789 ई. में कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक का अनुवाद अंग्रेजी में किया। मनुस्मृति एवं अभिज्ञान शाकुन्तलम् के अंग्रेजी अनुवाद ने यूरोपीय विद्वानों को काफी प्रभावित किया। जर्मन कवि गेटे ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् की अत्यधिक प्रशंसा की है। इससे प्राचीन भारतीय संस्कृत वाड्.मय के अध्ययन एवं अनुशीलन के प्रति लोगों में उत्साह का संचार हुआ।

सर विलियम जोंस के अनन्तर चार्ल्स विलिकिंस ने संस्कृत भाषा सीखी। उन्हीं प्रयत्न से देवनागरी और बंगला टाइप तैयार हुए। उन्होंने कुछ पुराने लेख भी ढूंढ निकाले और उन पर विवेचनापूर्ण नोट भी लिखे। 1785 में इन्होंने ही भगवत गीता का

टिप्पणी

अंग्रेजी अनुवाद किया। एशियाटिक सोसाइटी ने 'एशियाटिक रिसर्चेज' नाम की एक पत्रिका भी 1788 ई. में निकालनी आरम्भ की। सर विलियम जोंस की मृत्युपरांत उनका स्थान उनके कनिष्ठ सहयोगी हेनरी कोलब्रुक ने ग्रहण किया। उन्होंने भारत के संबंध में अनेक ग्रंथ और लेख लिखे। उनके द्वारा 'आन द वेदाज' नामक ग्रंथ एवं 'हिंदुओं के धार्मिक रीति–रिवाज', 'भारतीय वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति', 'संस्कृत और प्राकृत छंदशास्त्र' इत्यादि महत्वपूर्ण लेख लिखे गये। उन्होंने इनके अलावा भी वेद, सांख्य, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, वेदांत, भारतीय कृषि, वाणिज्य, समाज व्यवस्था, कानून, धर्म, गणित इत्यादि अनेकानेक विषयों पर गवेषणापूर्ण लेख लिखे।

1804 ई. में बंबई में भी एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना हुई। 1823 ई. में लंदन में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन स्थापित हुई। महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार कोलब्रुक ने भारत से चले जाने पर इंग्लैण्ड में रायल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की और संस्कृत भाषा सीखने तथा भारतीय पुरातत्व का ज्ञान संपादन करने के विषय में लोगों को ऐसा चस्का लगा दिया कि दिन व दिन नये–नये संस्कृतज्ञ और पुरातत्वविद पैदा होने लगे। यदि कोलब्रुक के सदृश्य प्रकाण्ड विद्वान इस ओर ध्यान नहीं देते तो यूरोप में संस्कृत भाषा का इतना प्रचार शायद ही होता। सर्वप्रथम विलियम जोंस ने यह अवधारणा प्रस्तुत की कि मूलतः यूरोपीय भाषाएं संस्कृत और ईरानी भाषाओं से काफी कुछ मिलती–जुलती हैं। इस तथ्य से प्रेरित होकर जर्मनी, फ्रांस एवं रूस इत्यादि यूरोपीय देशों में भारतीय विद्या के अध्ययन में अत्यधिक रुचि जाग्रत हुई। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में इंग्लैण्ड सहित अन्य यूरोपीय देशों में संस्कृत के आचार्य पद स्थापित हुए।

जर्मनी के प्राच्यविद

1818 ई. में जर्मनी के हॉग विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रथम विभागाध्यक्ष पद पर आगस्ट विल्हेम वान श्लेगल की पदस्थापना हुई। इनके भाई फ्राइड्रिश श्लेगल को भी संस्कृत में रुचि थी। हर्न विल्हेम नामक जर्मन विद्वान ने इन्हीं श्लेगल बंधुओं की प्रेरणा से गीता का अध्ययन किया और उसे एक उच्च कोटि के साहित्य का नाम दिया। भारतीय उपनिषद् ग्रंथों का भी जर्मन भाषा में अनुवाद किया गया। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शापेन हावर ने उपनिषदों को मानव बुद्धि की सर्वोच्च उपज करार देते हुए कहा कि इनका अध्ययन मेरे जीवन काल के लिए आश्वासन है और मेरी मृत्यु के लिए भी यह आश्वासन सिद्ध होगा। जर्मनी के महान विद्वान एफ. मैक्समूलर (1823–1902) ने भारतीय विद्या के अध्ययन को सर्वाधिक बढ़ावा दिया। उनके संपादकत्व में 'सैक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट सीरीज' के पचास खंडों में बृहत् पैमाने पर प्राचीन धर्म ग्रंथों का अनुवाद किया गया। यद्यपि इस सीरीज में कुछ चीनी और ईरानी ग्रंथों का अनुवाद भी शामिल है परंतु मुख्यतः प्राचीन भारतीय धर्म ग्रंथ ही शामिल हैं। रोमिला थापर के अनुसार, ''जो लोग भारतीय संस्कृति के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया रखते थे, उन्होंने समाज का चित्रण उन सुंदर ग्राम समुदायों के जीवन के रूप में किया है जिनकी विशेषताएं सौहार्द्रतापूर्ण थीं। ऐसे वर्णन मैक्समूलर के लेखन में अक्सर पाये जाते थे।''

जर्मनी के प्रमुख पुराविद विन्टरनिट्ज ने भारतीय प्राचीनतम ग्रंथों के अन्वेषण एवं अनुवाद पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए मत व्यक्त किया है कि जब भारतीय वाङ्मय

टिप्पणी

पश्चिम में प्रथम बार प्रकाश में आया, तब अधिकांश विद्वानों की रुचि प्रत्येक भारतीय ग्रंथ को प्राचीनतम मानने में थी। प्राचीन भारतीय वाङ्मय के प्रति बढ़ती रुचि ने यूरापीय देशों में कोषों एवं संदर्भ ग्रंथों की रचना को भी प्रोत्साहित किया। राय एवं बोथलिंग के अथक प्रयासों से सात खंडों में एक विशाल संस्कृत–जर्मन शब्दकोष प्रकाशित किया गया। इसी परंपरा में मोनियर विलियम्स ने संस्कृत–अंग्रेजी शब्दकोष प्रकाशित किया। संदर्भ ग्रंथों के रूप में ब्लूमफील्ड का 'ए वैदिक कान्फार्डेस' एवं मैकाडनेल एवं कीथ का 'वैदिक इंडेक्स' एक सराहनीय प्रयास था। इस तारतम्य में विजय बहादुर राव का यह कथन उचित ही प्रतीत होता है कि ''वस्तुतः प्रारंभिक प्राच्यविदों में भारतीय विद्या के प्रति एक सहज अनुराग था। उनकी टिप्पणियों में प्राचीन भारतीय ज्ञान के प्रति आदर और प्रशंसा का भाव दिखाई देता है। उनकी दृष्टि प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति सहानुभूति एवं उदार थी। वस्तुतः भारतीय विद्या के प्रति अनुराग के अभाव में वह दुष्कर कार्य संभव भी नहीं था जो मैक्समूलर, ह्विटने रॉथ, बोथलिंग आदि विद्वानों ने अपने अनुवादों के माध्यम से कर दिखाया।''

विभिन्न विद्वानों की नजरों मैं प्राच्यवादी उपागम

रोमिला थापर ने इतिहास के प्राच्यवादी उपागम को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''उनमें (प्राच्यविदों में) से जिन लोगों ने संस्कृत का अध्ययन किया, वे आर्य भाषा–भाषी जनगण की संस्कृति के उत्साही प्रतिपादक बन गये। उन लोगों ने भारत–यूरोपीय मूलस्थान तथा संस्कृत और यूनानी संस्कृतियों की समान पूर्वज परंपरा का सिद्धांत विकसित किया। आर्यों को संबद्ध भाषाएं बोलने वाले लोगों के समूह के स्थान पर एक जातीय इकाई के रूप में देखा गया और भारत की आर्य संस्कृति तथा यूरोप की यूनानी संस्कृति के गतिविज्ञान को संबद्ध करने की कोशिश की गई। वैदिक युग को बढ़ा–चढ़ाकर आंका गया और प्राच्यविदों ने प्राचीन भारतीयों को खुशहाल ग्राम्य समाज के लोगों के रूप में देखा। तनाव भरी बातों को नजर–अंदाज कर दिया गया और गौरव के पक्ष पर जोर दिया गया।

यहां रोमिला थापर का यह लिखना कि वैदिक युग बढ़ा–चढ़ाकर आंका गया। इस बात का संकेत देता है कि प्राच्यविदों का ऐसा करने के पीछे कुछ न कुछ कारण अवश्य रहा होगा। अतः प्राच्यविदों के ऐसा लिखने के पीछे प्रेरक कारणों का भी यहां उल्लेख करना आवश्यक है, ताकि इतिहास के प्राच्यवादी उपागम को संपूर्णता के साथ समझा जा सके। वस्तुतः अधिकांश विद्वान बस तस्वीर के एक पक्ष कि–प्राच्यविदों ने भारतीय अतीत को गौरवमंडित किया है – को देखकर प्राच्यविदों की अत्यधिक प्रशंसा करते है। वे प्रायः तस्वीर के दूसरे पक्ष–आखिर प्राच्यविदों ने ऐसा किन हेतुओं से किया–को प्रायः नजर अंदाज कर देते है। अतः हम यहां उन हेतुओं का भी अध्ययन करेंगे।

रोमिला थापर के अनुसार बहुत–से प्राच्यविद ऐसे थे जो कि अपने समाज में बेगाने हो गये थे। औद्योगीकरण के फलस्वरूप यूरोपीय भौतिकवादी परिवर्तनों के प्रति उनके मन में संशय व्याप्त था और वे एक आदर्श लोक की तलाश में थे। उन्हें अपने आदर्श लोक की तलाश प्राच्य जगत की संस्कृतियों में पूर्ण होती दिखाई दी। अतः प्राच्यविदों ने भारतीय संस्कृति को आदर्श के सांचे में ढालकर उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने की कोशिशें कीं। इसके अलावा प्राच्यविदों द्वारा भारतीय संस्कृति के समर्थन का द्वितीय कारण कदाचित् यह भी था कि उस समय ब्रिटेन में उपयोगिता

टिप्पणी

दर्शन का विकास हो रहा था जिससे प्राच्यविदों की पूर्ण असहमति थी। उपयोगितावादियों का मानना था कि भारत में अंग्रेजों का आगमन एक दैवीय सुयोग है एवं भारत जैसे पिछड़े हुए देश का पिछड़ापन ब्रिटिश प्रशासन एवं कानून द्वारा दूर किया जा सकता है।

रामशरण शर्मा ने भी प्राच्यविदों द्वारा बृहत् मात्रा में प्राचीन भारतीय ग्रंथों के अनुवाद कार्य के पीछे उनके निहित उद्देश्यों पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार मनुस्मृति के अंग्रेजी अनुवाद का प्रमुख हेतु, ईस्ट इंण्डिया कंपनी के शासकों द्वारा हिंदू उत्तराधिकार संबंधी न्याय व्यवस्था में आ रही व्यवहारिक कठिनाईयों पर पार पाना था। कुछ प्राच्यविद ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार की भावना से भी प्रेरित थे। मैक्समूलर के बारे में भी यही मान्यता है कि वह प्राचीन भारतीय धर्म ग्रंथों में भारतीय धर्म की खामियों को ढूंढ़ना चाहता थ। आर. एस. शर्मा ने इस संदर्भ में लिखा है कि 1857 ई. के विद्रोह ने ब्रिटिश शासकों की आंखे खोल दीं। उन्हें महसूस हो गया कि जिन विदेशी लोगों पर उन्हें शासन करना है, उनके रीति–रिवाजों और सामाजिक व्यवस्थाओं का उन्हें गहन ज्ञान प्राप्त करना होगा। इसी तरह क्रिश्चियन मिशनों के धर्म प्रचारकों ने भी हिंदू धर्म की दुर्बलताओं को जानना आवश्यक समझा, ताकि वे धर्म परिवर्तन करा सकें, और इसके द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य को मजबूत बना सकें, इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मैक्समूलर के संपादकत्व में विशाल मात्रा में प्राचीन धर्म ग्रंथों का अनुवाद किया गया। मोनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत अंग्रेजी शब्दकोष की भूमिका में लिखा है कि बोडेन द्वारा स्थापित ट्रस्ट के माध्यम से ग्रंथों का जो अनुवाद कार्य हो रहा है, वह भारतीयों को ईसाई बनाने में प्रकारान्तर में सहायक सिद्ध होगा। इसी प्रकार बोडन पीठ पर नियुक्त होने वाले विद्वान विल्सन द्वारा सृजित ग्रंथ 'रिलीजन एण्ड फिलसिफिकल सिस्टम ऑफ द हिंदूज' का एक उद्देश्य भी हिंदू–धर्म दर्शन के दोषों को उद्घाटित कर ईसाई धर्म के प्रसार का मार्ग प्रशस्त करना था।

समीक्षा

प्राच्यविदों द्वारा इतिहास के अपनाये जाने वाले उक्त दृष्टिकोणों के बावजूद उनके प्रयास अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, भारतीय इतिहास के लिए किसी न किसी रूप में लाभप्रद ही सिद्ध हुए। प्राच्यविदों के कृतित्व का भारतीय समाज एवं चिंतन पर गहरा प्रभाव पड़ा। सकारात्मक दृष्टि से देखें तो उन्नीसवीं शताब्दी के अनेक भारतीय धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आंदोलन किसी न किसी रूप में प्राच्यविदों के कृतित्व से प्रभावित थे। यह भले ही मात्र संयोग क्यों न हो परंतु इसी समय आर्य समाज द्वारा वैदिक संस्कृति को भारतीय परंपरा का मूल मानने पर जोर दिया गया। भारत ही नहीं, यूरोपीय चिंतन के भी कुछ पक्ष प्राच्यविदों के कृतित्व से प्रभावित थे। इसे यूरोपीय साहित्य के रोमांटिक आंदोलन से लेकर 19 वीं शताब्दी में यूरोप के नक्सलवादी सिद्धांत तक विविध आंदोलनों में देखा जा सकता है। कुछ यूरोपीय विद्वानों ने संस्कृत और यूनानी भाषा की समानता को देखते हुए आर्य भाषा और जाति की पकिल्पना की और भारत की आर्य संस्कृति तथा यूरोप की यूनानी संस्कृति को परस्पर संबंध करने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया में जो, विचार उभरे, उन्होंने आगे चलकर ब्रिटिश साम्राज्य के शासक वर्ग तथा भारत के शासित उच्च वर्गों के बीच एक बंधुत्व की भावना को अंकुरित किया जिसका राजनीतिक कारणों से स्वागत भी हुआ।

टिप्पणी

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राच्यविदों का इतिहास उपागम भले ही ईसाई धर्म के प्रचार की भावना एवं अन्य कारणों से प्रभावित रहा हो परंतु उन्होंने प्राचीन भारतीय वाङ्मय की ओर न केवल यूरोपीय विद्वत जगत अपितु पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त भारतीय मनीषियों का भी ध्यान आकृष्ट करने का एक सराहनीय कार्य किया था।

सर विलियम जोंस, मैक्समूलर, एच.टी. कोलब्रुक, एच. एच. विल्सन, राथ, बोथलिंग एवं मोनियर विलियम्स जैसे प्राच्यविदों ने निस्संदेह प्राचीन भारतीय वाङ्मय का अन्वेषण एवं अनुवाद कार्य संपन्न कर आगामी भारतीय इतिहास लेखन एवं अनुसंधान हेतु प्रचुर मात्रा में आधार सामग्री उपलब्ध कराने का श्लाध्य कार्य संपन्न किया। इस तारतम्य में प्रो.लोटू सिंह गौतम का यह कथन उल्लेखनीय है कि ''पाश्चात्य विद्वानों की सहकारिता से इतिहासशास्त्र के विधान में महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। यह सत्य है कि पश्चिमी विद्वानों की सहकारिता पर गलतियां कीं किन्तु प्रधानतः उन्हीं के प्रोत्साहन से अनेक देशी विद्वान इस क्षेत्र में आ उतरे। इन्हीं के परिश्रम से भारतीय इतिहास में इतिहासत्व आया। जो लोग पहले भारतीयों के प्राचीन पुरुषों को 'असभ्य शैशवावस्था' में मानते थे, वे भी ऐतिहासिक तथ्य के आगे नतमस्तक हैं।'' अतः अनुकूल दृष्टिकोण से देखने पर प्राच्यविदों का भारतीय इतिहास से संबंधित प्रयास निःसंदेह कई दृष्टियों से लाभकारी रहा है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. धर्म संबंधी उपागम का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया था?

   (क) कन्फ्यूशियस (ख) संत आगस्टाइन

   (ग) प्लेटो (घ) एम्ब्रोज

2. सर विलियम जोंस ने 'एशियाटिक सोसायटी' नामक संस्था की स्थापना कब की थी?

   (क) 10 जनवरी, 1772 (ख) 15 जनवरी, 1775

   (ग) 15 जनवरी 1784 (घ) 10 जनवरी 1795

4.3 इतिहास का साम्राज्यवादी एवं राष्ट्रवादी उपागम

इतिहास लेखन के साम्राज्यवादी एवं राष्ट्रवादी उपागम को इस प्रकार समझा जा सकता है–

इतिहास का साम्राज्यवादी उपागम

ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा इतिहास के साम्राज्यवादी उपागम को अपनाने का मूलभूत उद्देश्य भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को स्थायित्व एवं दृढ़ता प्रदान करना था। इतिहास के साम्राज्यवादी उपागम के अंकुर इतिहास के प्राच्यवादी उपागम में मौजूद थे। रोमिला थापर के अनुसार 'यह अशंतः प्राच्यविद्या का एक पहलू था जिसमें ज्ञान के उपयोग को शक्ति का एक स्वरूप समझने का सिद्धांत अंतर्निहित है। एडवर्ड सेड द्वारा किए गए अध्ययनों की तरह प्राच्य विज्ञान के हाल के अध्ययनों ने भी इस पहलू को दर्शाने का प्रयास किया है। एक उपनिवेश की संस्कृति की पुनर्रचना और प्राच्यविद

टिप्पणी

प्रतिमानों के संदर्भ में अपने प्रतिरूप को देखना ये औपनिवेशिक शक्ति के लिए नियंत्रण स्थापित करने के तरीके थे। यही कारण है कि लार्ड कर्जन ने ऐसी विद्वता और ज्ञान को 'साम्राज्यवाद की आवश्यक सामग्री कहकर उसे प्रोत्साहन देने की बात कही थी। 1857 ई. की क्रांति ने ब्रिटिश साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा को सर्वप्रथम चुनौती प्रस्तुत की, अतः अब उन्हें यह आवश्यक लगने लगा कि भारत में उनके स्थायित्व के लिए आवश्यक है कि भारतीयों के धार्मिक रीति–रिवाज एवं परंपराओं का अध्ययन किया जावे। इस समय तक प्राच्यविदों द्वारा कई प्राचीन ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवाद किए जा चुके थे, अतः प्राच्यविदों के इस कार्य को अपने साम्राज्यवादी हितों की खातिर प्रोत्साहित किया।

पृष्ठभूमि

19वीं शताब्दी के प्रारंभ में इंग्लैण्ड के उपयोगितावादी दर्शन को हम आंशिक रूप से प्राच्यवादी इतिहास उपागम एवं साम्राज्यवादी इतिहास उपागम की एक कड़ी के रूप में देख सकते हैं। उपयोगितावादी सिद्धांत का प्रमुख प्रतिपादक जेरेमी बेंथम नामक दार्शनिक को माना जाता है। उपयोगितावादियों ने भारत को उपयोगितावादी सिद्धांत को परखने की प्रमुख प्रयोगशाला के रूप में देखा। उन्होंने भारत को सभ्यता के मापदंड की कसौटी पर सबसे निम्नतर स्तर पर माना और उन्होंने भारतीय पिछड़ापन दूर करने, उसकी सभ्यता के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए भारत पर ब्रिटिश आधिपत्य की उपयोगिता को प्रतिपादित किया। रोमिला थापर के अनुसार, ''उपयोगितावादियों का पक्का विश्वास था कि भारत में अंग्रेजों का आगमन एक दैवी सुयोग था क्योंकि ब्रिटिश प्रशासन और कानून से भारत का पिछड़ापन खत्म हो जायेगा। उससे अब तक कि निरंकुश शासकों का अटूट सिलसिला समाप्त हो जायेगा और भारत के जनगण में राजनीतिक चेतना का संचार होगा।

उपयोगितावादी दृष्टिकोण से भारत का इतिहास लिखने का श्रेय प्रसिद्ध उपयोगितावादी दार्शनिक जॉन स्टुअर्ट मिल के पिता जेम्स मिल को जाता है। जेम्स मिल बेंथम का एक घनिष्ठ अनुयायी था। उसने छः खंडों के ग्रंथ 'ब्रिटिश भारत का इतिहास' की रचना उपयोगितावादी दृष्टिकोण से ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन को ध्यान में रखते हुए की। उसने असिस्टेंट टू द एक्जामिनर ऑफ इंडिया कॉरसपान्डेन्स के पद पर रहते हुए ईस्ट इंडिया कंपनी की नीतियों को प्रभावित भी किया था। मिल न तो कभी भारत आया और न ही यहां की भाषा जानता था, इसके बावजूद भी उसने भारत के अतीत को अत्यंत अविकसित, भ्रष्ट एवं पतनोन्मुख दिखाया और उन्हें असभ्य कहकर संबोधित किया। सबसे मजेदार बात तो यह है कि मिल स्वयं तो कभी भारत आया ही नहीं और भारत रहकर भारतीय भाषा सीखकर भारतीय समाज के बारे में अनुभवाश्रित चिंतन प्रस्तुत करने वाले प्रख्यात प्राच्यविद विलियम जोंस की आलोचना करते हुए मिल ने कहा है कि ''यह दुर्भाग्यपूर्ण ही है कि विलियम जोंस जैसे प्रतिभा–संपन्न, प्रबुद्ध, सत्यान्वेशी और प्राच्य विद्याओं के अध्ययन के प्रति समर्पित व्यक्ति ने एशिया के देशों में एक समुन्नत सभ्यता की परिकल्पना की।'' यहां यह भी उल्लेखनीय है कि मिल ही वह प्रथम व्यक्ति था जिसने भारतीय इतिहास के प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास को क्रमशः हिंदू सभ्यता, मुसलिम सभ्यता तथा ब्रिटिश सभ्यता का नाम देकर सांप्रदायिक की भावना को इतिहास में प्रतिरोपित किया था। इस प्रकार मिल का इतिहास नितांत अव्यावहारिक एवं पूर्वाग्रहों से ग्रसित था,

टिप्पणी

इसलिसे आर. सी. मजूमदार ने जेम्स मिल की कड़ी आलोचना करते हुए कहा है कि ''एक इतिहासकार की योग्यता व गुणों से संपन्न व्यक्ति द्वारा लिखी गई ऐसी कोई दूसरी कृति शायद ही मिले जिसमें अथक परिश्रम का दुरुपयोग एक ऐसा इतिहास लिखने में किया गया हो जो आलोच्य होने के साथ–साथ किसी भी परिस्थिति में इतिहास कहलाने के काबिल नहीं है।'' इस प्रकार हम देखते हैं कि निश्चित रूप से जेम्स मिल की दृष्टि प्राच्यविदों की तुलना में भारतीयों के प्रति असहिष्णुतापूर्ण थी।

साम्राज्यवादी उपागम के अनुप्रयोग का उद्देश्य

जेम्स मिल द्वारा लिखित 'भारत का इतिहास' अपनी तमाम आलोचनाओं, दुराग्रहों एवं अव्यवहारिक दृष्टिकोण के बावजूद 19 वीं सदी में एक स्तरीय ग्रंथ माना गया। मिल का उपयोगितावादी सिद्धांत ब्रिटिश प्रशासकों के लिए भारत में साम्राज्य की दृढ़ता के लिए मार्गदर्शक बना। यहां यह उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश प्रशासकों ने ही कालांतर में भारत के इतिहास पर कलम उठाई और उनके लिए जेम्स मिल का यह ग्रंथ संदर्भ ग्रंथ सिद्ध हुआ। इन्हीं इतिहासकारों को हम साम्राज्यवादी इतिहास कह सकते हैं। एच.एच. विल्सन, माउंट स्टुअर्ट एल्फिसटन, विंसेट स्मिथ आदि सभी किसी न किसी रूप में कंपनी अथवा ब्रिटिश साम्राज्ञी की शाही सरकार में प्रशासक थे। एच.एच. विल्सन ने तो मिल के एक परवर्ती संस्करण का संपादन भी किया था।

प्रशासक से इतिहासकार बने एवं अन्य साम्राज्यवादी इतिहासकारों का इतिहास लेखन का मूलभूत उद्देश्य, ब्रिटिश साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करना था। ये साम्राज्यवादी अपने इतिहास लेखन द्वारा यह प्रचारित करना चाहते थे कि भारतीय समाज की जड़ता को ब्रिटिश शासन एवं उसके कानूनों द्वारा ही तोड़ा जा सकता है। अतः वे बताना चाहते थे कि भारतीय जन मानस का हित इसी में है कि वे ब्रिटिश शासन के अधीन रहकर ही प्रगति करें, इसके पीछे वस्तुतः ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा एवं स्थिरता की दृष्टि प्रबल रूप से विद्यमान थी। साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने प्रायः उन्हीं साक्ष्यों का अनुप्रयोग किया जो उनकी साम्राज्यवादी अवधारणा को पुष्ट कर सकें। प्रशासक से इतिहासकार बने विसेंट स्मिथ को एक महानतम साम्राज्यवादी इतिहासकार माना जा सकता है। उसने अपनी सर्वप्रसिद्ध कृति 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया' (1924) में अपने साम्राज्यवादी दृष्टिकोण का स्पष्ट परिचय दिया है।

प्राचीन भारतीय इतिहास का साम्राज्यवादी उपागम से लेखन

स्मिथ इतिहास में मात्र महानतम शासकों एवं महान् साम्राज्यों का ही उल्लेख करना उचित मानते हैं। अतः उन्होंने भारतीय इतिहास में मात्र अशोक, चन्द्रगुप्त द्वितीय एवं अकबर को ही महान नायक माना है। जिन छोटे–छोटे कालखंडों में स्थानीय राज्यों की स्थापना हुई, उसे कुशासन एवं अराजकतापूर्ण शासन का प्रतिनिधि मानते हुए स्मिथ अंधकार युग की संज्ञा देते हैं। अपने साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के चलते उन्होंने सिकंदर के भारत पर आक्रमण के बारे में विस्तारपूर्वक इस उद्देश्य से लिखा है, ताकि एशियाई सेनाओं की दुर्बलता को दर्शाया जा सके। स्मिथ भारतीय सभ्यता की उन्नत अवस्था एवं भारतीय कला के विकास को यूनानी कला की देन बताते हैं। जेम्स मिल ने कहा था कि ''वास्तव में हिंदू नपुंसक थे जो गुलामी की प्रवृत्तियों से परिपूर्ण, गुलामी के लिए ही बने थे।'' मिल की यही अवधारणा कुछ परिष्कृत शैली में विन्सेन्ट स्मिथ के लेखन में भी दृष्टिगोचर होती है। हर्षोत्तरकालीन राजनीतिक स्थिति की अव्यवस्था के मद्देनजर

टिप्पणी

स्मिथ की टिप्पणी थी कि भारत जब भी किसी शक्तिशाली सत्ता के नियंत्रण से मुक्त हुआ, अराजकता और अव्यवस्था की स्थिति में पहुंच गया और यदि वह सद्भावनापूर्ण ब्रिटिश शासन के कठोर बंधन से मुक्त हो जाये तो पुनः उसी स्थिति में पहुंच जायेगा।'' स्मिथ का यह कथन इतिहास के साम्राज्यवादी दृष्टिकोण का स्पष्ट प्रमाण है। आर. सी. मजूमदार ने स्मिथ की उक्त टिप्पणी पर खेद प्रकट करते हुए कहा था कि यह दृष्टिकोण प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के संदर्भ में न केवल अनावश्यक एवं भ्रामक है अपितु पाठकों की दृष्टि एवं निर्णय को प्रभावित करने की भावना से प्रेरित है। यद्यपि मजूमदार ने स्मिथ की इतिहास लेखन में योगदान की सराहना की परंतु साथ ही यह भी कहा है, कि यूरोपीय विद्वान भारतीय इतिहास लेखन के साथ उस समय तक पूर्णतः न्याय कर सकेंगे जब तक कि वे अपनी जातीय श्रेष्ठता एवं भारतीयों की हीनता आदि दुराग्रहों से मुक्त नहीं होंगे।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास का साम्राज्यवादी उपागम से लेखन

मध्यकालीन भारत के इतिहास के संदर्भ में इलियट एण्ड डाउसन द्वारा आठ जिल्दों में लिखा गया ग्रंथ 'ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया एज टोल्ड वाय इट्स ओन हिस्टोरियन' भी उनके साम्राज्वादी उपागम का ही एक सोचा–समझा प्रयास था। हरवंश मुखिया ने इलियट एवं डाउसन के इतिहास के साम्राज्यवादी उपागम को स्पष्ट करते हुए लिखा है,'' यह मध्यकालीन भारत के फारसी में लिखे गये इतिहास ग्रंथों के अंशों का अनुवाद था।'' इन अंशों के चयन में पाठक की कल्पना शक्ति के लिए कुछ बचा ही नहीं, ये अनूदित अंश हमेशा ही सांप्रदायिक भावना को उकसाते रहे। लगता है इलियट को पता था कि वे क्या कर रहे हैं। कारण कि उनकी पूरे बौद्धिक श्रम का घोषित उद्देश्य भारत के तीसमार खां बाबुओं को उन्हें प्राप्त उस सुशासन के अच्छे गुणों की शिक्षा देना था जो उन्हें मुसलिम शासन में उनकी बदहाल किस्मत की तुलना में ब्रिटिश राज्य में प्राप्त था।'' इस कथन से स्पष्ट है कि अधिकांश ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहासकार यह बताना चाहते थे कि मध्यकालीन भारत में हिंदुओं का दमन किया गया एवं जो सुशासन उन्हें मध्ययुग में सांप्रदायिक दृष्टिकोण के कारण नहीं मिला, वह ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन उन्हें प्राप्त होगा।

आधुनिक भारतीय इतिहास का साम्राज्यवादी उपागम से लेखन

आधुनिक भारतीय इतिहास के लेखन में भी साम्राज्यवादी दृष्टिकोण ही हावी रहा। लार्ड मिंटो आदि वायसरायों की घोषणाओं में साम्राज्यवादी दृष्टिकोण उभरकर सामने आया। इतिहास के साम्राज्यवादी उपागम को वेलेन्टाइन शिरोल, रॉकेट समिति की रिपोर्ट, वर्नी लाभेट एवं मांटेस्क्यू चेम्सफोर्ड की रिपोर्ट द्वारा सुनियोजित रूप से सामने रखा गया। मांटफोर्ड रिपोर्ट के लेखकों ने भारत में अंग्रेजी राज को ही भारतीय राष्ट्रीय जागृति का कारक माना। इस रिपोर्ट में लिखा था,''राजनीतिक भावना से प्रेरित भारतीय बौद्धिक रूप से हमारी ही संतान हैं। उन्होंने वे ही विचार अपनाए हैं जो हमने उनके सामने रखे हैं और इसका श्रेय हमें ही मिलना चाहियें।'' एक प्रमुख साम्राज्वादी इतिहासकार रेगिनाल्ड कूपलैण्ड ने तो साफ–साफ लिखा था कि ''भारतीय राष्ट्रवाद तो ब्रिटिश राज की ही संतति थी। कूपलैंड के अलावा, वेलण्टाइन की कृति 'इंडियन अनरेस्ट' में भी साम्राज्यवादी उपागम स्पष्टतः देखा जा सकता है। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए सर्वाधिक हानिकारक मानते हुए बाल गंगाधर तिलक को 'भारत में अशांति का

जन्मदाता' कहा था। इनके अलावा पर्सिवल स्पीयर, अनिल सील, जे. ए. गुलहार आदि के लेखन में भी इतिहास का साम्राज्यवादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है।

टिप्पणी

अनिल सील एवं उसके अनुयायियों द्वारा 1968 ई. के पश्चात इतिहास के साम्राज्यवादी उपागम का एक अनुदारवादी दृष्टिकोण अपनाया गया जिसे लोकप्रिय रूप में कैंब्रिज स्कूल के नाम से जाना जाता है। मणिकांत सिंह के अनुसार कैंब्रिज इतिहासकार साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रवाद के संघर्ष को एक छद्म संघर्ष मानते है। कैंब्रिज इतिहासकार इस बात से सहमत नहीं है कि भारत एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में था बल्कि वे मानते है, कि जिसे भारत के नाम से जाना जाता है, वह वस्तुतः विभिन्न धर्मों, जातियों, समुदायों और हितों का समूह था। भारत विभिन्न पहचानों, यथा–ब्राह्मण, गैर–ब्राह्मण, हिंदू–मुसलिम, आर्य और भद्रलोक आदि पहचानों में विभाजित है। भारत का राष्ट्रीय आंदोलन साम्राज्यवाद के विरुद्ध, भारतीय जनता के हितों का प्रतिनिधित्व न कर मात्र कुलीन समूहों के हितों का ही प्रतिनिधित्व करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन, मध्ययुगीन एवं आधुनिक भारत के इतिहास में संलग्न साम्राज्यवादी इतिहासकारों का इतिहास के साम्राज्यवादी उपागम को अपनाने का मुख्य उद्देश्य भारतीयों का यह बताना था कि उन्हें अपने उत्थान के लिए ब्रिटिश शासन की अधीनता की परम आवश्यकता है एवं इस दृष्टिकोण द्वारा वे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा एवं स्थायित्व को सुनिश्चित करना चाहते थे एवं भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात के साम्राज्यवादी इतिहासकार यह बताना चाहते थे कि भारत में राजनीतिक चेतना का संचार ब्रिटिश शासन की कृपा से ही संभव हो पाया था।

इतिहास का राष्ट्रवादी उपागम

इतिहास का राष्ट्रवादी उपागम से लेखन करने वाले इतिहासकार राष्ट्रवादी इतिहासकार कहलाते हैं।

पृष्ठभूमि

इतिहास के साम्राज्यवाद उपागम के प्रत्युत्तरस्वरूप इतिहास का राष्ट्रवादी उपागम अस्तित्व में आया। इतिहास के राष्ट्रवादी उपागम के पीछे तर्क दिया गया कि यदि अंग्रेज साम्राज्यवाद के पक्ष में भारतीय इतिहास का दुरुपयोग कर सकते हैं तो हम भी राष्ट्रवाद के पक्ष में इसका उपयोग कर सकते हैं। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने साम्राज्यवादी इतिहासकारों मुख्यतः जेम्स मिल एवं विसेंट स्मिथ द्वारा प्रतिपादित विचारों का, ब्रिटिश राजतंत्र प्रणाली की श्रेष्ठता, कुशाण एवं गुप्तों के बीच भारतीय इतिहास का अंधकार युग था– आदि का प्रतिकार किया। साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने जहां भारतीय इतिहास की छवि को धुंधला करने के प्रयास किए थे, वहीं राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को गौरवान्वित करन के प्रयास किए थे। इस तारतम्य में सतीश चन्द्र ने लिखा है, ''उन्नीसवीं सदी के आखिर के ढाई दशकों में राष्ट्रवादी आंदोलन के विकास ने भारतीय इतिहासकारों के इतिहास लेखन को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। इन इतिहासकारों ने ब्रिटिश इतिहासकारों के बहुत से अस्पष्ट रवैयों के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की। भारतीय संस्कृति की अद्वितीयता और प्राचीनता एवं स्वतंत्र अस्तित्व पर (यूनानी अथवा फारसी संस्कृति पर आधारित नहीं) विस्तार से लिखकर भारत को गर्व का अनुभव कराया। इन रचनाओं में भारतीय संस्कृति की अद्भुत निरंतरता पर भी बल दिया गया।''

टिप्पणी

राष्ट्रवादी उपागम का अनुपयोग

रामशरण शर्मा ने भी इसी तथ्य को उद्घाटित किया है कि साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा इतिहास की एकपक्षीय व्याख्या भारतीय विद्वानों – विशेषकर पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त विद्वानों के लिए एक चुनौती के समान थी। इन्होंने लिखा है, ''वे एक ओर उपनिवेशवादियों द्वारा इतिहास को तोड़–मरोड़ कर भारत की अतीत छवि को धूमिल किए जाने से चिढ़े हुए थे तो दूसरी ओर भारत के पतनोन्मुख सामंती समाज और इंग्लैण्ड के फूलते–फलते पूंजीवादी समाज के बीच घोर वैषम्य देखकर दुखी भी थे। बहुतेरे विद्वान दृढ़ संकल्प के साथ मैदान में उतरे। उनका संकल्प भारतीय समाज को सुधारना ही नहीं था बल्कि यह भी था कि भारत के प्राचीन इतिहास का इस प्रकार पुनर्निर्माण किया जाए कि उससे समाज को सुधारने में, और इससे भी बढ़कर, स्वराज्य प्राप्त करने में सहारा मिले। ऐसा करने में अधिकतर इतिहासज्ञ तो हिंदू पुनर्जागरण की राष्ट्रीय भावना की लहर में प्रभावित हुए किन्तु ऐसे विद्वानों की भी कमी न थी जो तर्क–निष्ठ और वस्तुनिष्ट रूख अपनाये रहे।''

राष्ट्रवादी इतिहासकार

ब्रिटिश शासन काल में राष्ट्रवादी लेखन के प्रमुख प्रतिनिधि के रूप में हम लाला लाजपत राय, ए.सी. मजूमदार, आर.जी. प्रधान, पट्टाभि सीतारमैया, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, बी.डी. सावरकर, सी.एफ. एन्ड्रयूज, गिरजा मुखर्जी आदि विद्वानों को ले सकते हैं। वी.डी. सावरकर ने 'द इण्डियन वार ऑफ इन्डिपेन्डेन्स' में 1857 ई. के विद्रोह को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का प्रथम संग्राम कहकर संबोधित किया है। भारत में राष्ट्रीयता की लहर को उत्पन्न करने में लाजपत राय की कृति 'पंजाब केसरी' ने भी अहम् भूमिका निभाई थी। ए.सी. मजूमदार ने 'इण्डियन नेशनल इवोलूशन', सी.वी. चिंतामणि ने 'इण्डियन पोलिटिक्स सिन्स द म्युटिनिटी' एवं सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने 'ए नेशन इन द मेकिंग' की रचना कर भारत में राष्ट्रीय मत को पुष्ट किया।

साम्राज्यवादी इतिहासकारों को अपने राजनीतिक इतिहास एवं अपनी राजनीतिक संस्थाओं का अत्यधिक अभिमान था। अतः डी.आर. भंडारकर, के.पी. जायसवाल एवं ए. एस. अल्तेकर आदि भारतीय विद्वानों ने प्राचीन भारतीय राजव्यवस्था एवं राजनीतिक इतिहास का अध्ययन कर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि प्राचीन काल में भी भारत का राजनीतिक इतिहास था एवं भारतवासियों को प्रशासनिक कार्यों का ज्ञान था। पुरालेखविद देवदत्त राम कृण भंडारकर (1857–1950ई.) ने प्राचीन भारतीय राजनीतिक संस्थाओं पर कई कृतियों का सृजन किया। भंडारकर की सर्वोच्च प्रतिभा का प्रमाण तो यह है कि उन्होंने मात्र अशोक के अभिलेखों के आधार पर अशोक का इतिहास लिखने का श्लाघ्य प्रयास किया था।

के.पी. जायसवाल का राष्ट्रवादी लेखन

राष्ट्रवादी इतिहासकारों की श्रेणी में सर्वाधिक अग्रणी स्थान पर डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल (1881–1937) को रखा जा सकता हैं। काशीप्रसाद जायसवाल ने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की थी। अंग्रेजों का ऐसा मानना था कि वे द इंडिया हाउस के क्रांतिकारियों से जुड़े हुए हैं। अतः उन्हें प्रतिभा–संपन्न एवं कुशाग्र बुद्धि होने के बावजूद भी कलकत्ता विश्वविद्यालय में कार्य न मिल सका। इसी कारण उन्हें

टिप्पणी

वकालत का पेशा अपनाना पड़ा और कलकत्ता हाईकोर्ट एवं पटना उच्च न्यायालय में वकालत की। राष्ट्रीयता की उदात्त भावना के चलते काशी प्रसाद जायसवाल ने इतिहास लेखन के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि प्राचीन भारतीय सभ्यता किसी भी मायने में पाश्चात्य सभ्यता से कमतर नहीं थी। साम्राज्यवादी पाश्चात्य इतिहासकारों को अपनी सभ्यता के जिन पहलुओं पर अभिमान है, वे सभी प्राचीन भारतीय इतिहास में भी मौजूद थे। डॉ. जायसवाल ने 'बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी' के माध्यम से प्राचीन भारतीय संस्कृति का गहन अध्ययन किया। भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने अनेक कृतियों का सृजन किया। उन्होंने जेम्स मिल एवं विसेंट स्मिथ द्वारा प्रतिपादित विचारों को काटने का हर सम्भव प्रयास किया था।

काशीप्रसाद जायसवाल की कृति 'हिंदू पालिटी' राष्ट्रवादी भावना से ओत–प्रोत सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है। इस कृति के माध्यम से उन्होंने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि प्राचीन भारत में गणराज्य थे एवं एक तरह की संवैधानिक राजतंत्रात्मक प्रणाली का भी अस्तित्व था। साथ ही वे यह भी बताते हैं कि प्राचीन भारत में ऐसी संस्थाएं भी विद्यमान थीं जिन्हें हम आधुनिक संसद का प्रतिरूप मान सकते हैं। वस्तुतः जायसवाल ने इसके माध्यम से साम्राज्यवादियों के अभिमान को चुनौती दी थी। इस संबंध में बी.पी. सिन्हा ने लिखा है कि 'जायसवाल ने प्राचीन भारत में संसद, राजा के भाषण, प्रजातन्त्र व संसद की सत्ता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है।' अपनी उच्चता को दिखाने के लिए अपने लोगों की कमियों को छुपाने का भी प्रयास किया है। इस तारतम्य में रामशरण शर्मा ने भी स्पष्ट किया है कि 'जहां विसेंट स्मिथ ने अपने इतिहास में सिकंदर के आक्रमण को लगभग एक–तिहाई स्थान दिया, वहीं भारतीय विद्वानों ने सिकंदर के साथ पोरस की लड़ाई एवं भारत के पश्चिमोत्तर प्रांत को सेल्यूकस के हाथ से चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा मुक्त कराने की घटना को अधिक महत्व दिया' जायसवाल एवं ए.एस. अल्तेकर (1898–1959) ने देश को शकों एवं कुषाणों जैसी विदेशी शक्तियों से मुक्त कराने में भारतीय राजवंशों (भार शिव–नागों) की भूमिका बढ़ा–चढ़ा कर दिखाई है। वी.पी. सिन्हा के अनुसार, ''जायसवाल ने धागों के समान सूक्ष्म, महीन व बिखरे हुए तथ्यों के माध्यम से, जो अप्रमाणिक व संदिग्ध भी थे – यह सिद्ध करने की चेष्टा की है है कि प्राचीन युग में भी भारतीयों ने भारत में बाहर से आये आक्रमणकारियों के विरुद्ध राष्ट्रीय आंदोलन चलाये थे।''

इस प्रकार जायसवाल की कृतियों में इतिहास लेखन के राष्ट्रवादी के उपागम का चरमोत्कर्ष देखा जा सकता है। उनके राष्ट्रीय इतिहास लेखन की सर्वप्रमुख विशेषता यह थी कि जहां साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने भारत की छवि धुंधली, निर्जीव व अंधकारमय प्रस्तुत की थी, वहीं जायसवाल ने भारत की छवि को स्पष्ट, सजीव एवं गौरवशाली प्रस्तुत किया है। एक राष्ट्रवादी इतिहासकार के रूप में तो उनका प्रयास सराहनीय है लेकिन इतिहास के साथ उन्होंने न्याय नहीं किया। उनके इतिहास लेखन में जेम्स मिल एवं विसेंट स्मिथ द्वारा व्यक्त विचारों का प्रतिकार करने का पूर्वाग्रह स्पष्टतः परिलक्षित होता है। रोमिला थापर ने राष्ट्रवादी इतिहासकारों की सर्वप्रमुख कमजोरी यह मानी है कि उन्होंने मिल के अन्य विचारों की तो काट प्रस्तुत की मगर मिल द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन को कोई चुनौती नहीं दी। इस काल विभाजन के संदर्भ में प्राचीनतम काल के गौरव मंडन का अर्थ बुनियादी तौर से हुआ–हिंदू काल का गौरव मंडन। इससे मिल की काल–विभाजन की अवधारणा को और भी बल मिला।

टिप्पणी

इलाहाबाद स्कूल ऑफ हिस्ट्री

इलाहाबाद स्कूल ऑफ हिस्ट्री (इलाहाबाद मत) ने राष्ट्रीय इतिहास लेखन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डॉ. ताराचन्द ने जो इलाहाबाद मत के प्रवर्तकों में अग्रणी थे, इन्फ्लूऐंस ऑफ इसलाम ऑन इंडियन कल्चर एवं कई खंडों में हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम स्ट्रगल लिखकर राष्ट्रवादी विचारों को दृढ़ता प्रदान की। इलाहाबाद मत से संबंधित अन्य प्रमुख राष्ट्रवादी इतिहासकार डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी, डॉ. बेनी प्रसाद एवं डॉ. बनारसी प्रसाद सक्सेना प्रमुख थे। आर. पी. त्रिपाठी की कृति 'सम आस्पेक्टस ऑफ मुसलिम एडमिनिसट्रेशन'' (1926), 'राइज एण्ड फाल ऑफ द मुगल एम्पायर' (1956), बेनी प्रसाद की कृति 'जहांगीर' एवं बनारसी प्रसाद सक्सेना की कृति 'शाहजहां' इनके राष्ट्रवादी विचारों को प्रतिबिंबित करती हैं। जहां ब्रिटिश इतिहासकारों एवं संप्रदायवादी इतिहासकारों ने मध्यकालीन भारतीय इतिहास में मुसलिम शासकों द्वारा हिंदुओं के दमन एवं हिंदुओं द्वारा प्रबल प्रतिरोध की बातें कहकर इसे सांप्रादायिक रंग देने की कोशिश की थीं, वहीं इलाहाबाद स्कूल ऑफ हिस्ट्री के राष्ट्रवादी इतिहासकारों आर. पी. त्रिपाठी, ताराचन्द्र एवं बी.पी. सक्सेना इत्यादि ने मध्यकालीन भारत में सांप्रदायिक सद्भाव दिखाने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत किए। उन्होंने मध्यकालीन भारत को सांस्कृतिक समन्वयन के रूप में देखा।

हरवंश मुखिया के अनुसार, ''मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन को धर्मनिरपेक्ष स्वरूप देने में राष्ट्रवादी इतिहासकारों का योगदान किसी भी पैमाने पर नापें, अत्यंत महत्वपूर्ण था। फिर भी वे सांप्रादायिक इतिहास लेखन का मुकाबला वास्तव में उसी की जमींन पर कर रहे थे। अगर सांप्रादायिक इतिहासकार हिंदू प्रजा पर मुसलमान के अत्याचार दर्शाने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करते थे। तो राष्ट्रवादी इतिहासकार मुसलिम शासकों की सहिष्णुता के दृष्टांत देते थे, दोनों हिंदु – मुसलिमों का सहयोग देने वाले अन्य उदाहरण देते थे। दोनों प्रकार के इतिहासकारों ने मुख्य रूप से राजनीतिक और प्रशासनिक इतिहास का अध्ययन किया और अपन–अपने साक्ष्य ज्यादातर दरबारी वृतान्तों से निकाले। अगर सांप्रदायिक इतिहासकार एक प्रकार के साक्ष्यों पर जरूरत से ज्यादा जोर देते थे और दूसरे साक्ष्यों को छुपाते थे तो राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भी काफी कुछ ऐसा ही किया हालांकि एक विपरीत और सच मानें तो अधिक प्रशंसनीय उद्देश्य से किया।''

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में जहां ब्रिटिश इतिहासकारों ने हिंदू–मुसलिम वैमनस्य को भड़काया था, वहीं आधुनिक काल में उन्होंने नई रणनीति अपनाई। विपिन चन्द्र के अनुसार ब्रिटिश इतिहासकारों ने 18 वीं शताब्दी के मराठा साम्राजय के ब्राह्ण प्रभुत्व के बारे में उसी तरह लिखा जैसे दिल्ली सल्तनत या मुगल साम्राज्य के मुसलिम प्रभुत्व के बारे में लिखा। पर भारतीय इतिहासकारों ने इस बदले हुए दृष्टिकोण को ग्रहण नहीं किया। उदाहरण के लिए जी.एस. सरदेसाई ने कहा था, ''यह कहा जाता है कि माधव राव और नारायण राव के राज्य काल में देशार्थो और कोंकणस्थों (ब्राह्मणों) के बीच ठनी हुई थीं, पर यह कतई सही नहीं है। मैं दोनों जातियों के ऐसे सदस्यों को पेश कर सकता हूं जो दूसरे पक्षों के साथ पंक्तिबद्ध थे। विपिन चंद्र ने इतिहासकार सरदेसाई के इस कथन को राष्ट्रीय एकता की भावना का परिचायक माना है।''

टिप्पणी

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भारतीय राष्ट्रीय अस्मिता पर ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा किए गय प्रत्येक प्रहार का हर संभव प्रतिकार करने की कोशिश की। पार्थ चटर्जी इस तारतम्य में लिखते हैं कि ''नई भारतीय विद्वान मंडली ने यूरोपीय इतिहास लेखन के आधुनिक बुद्धिसंगत सिद्धांतों को बड़े उत्साह के साथ अंगीकार किया लेकिन अंग्रेज इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को जिस रूप में लिखा, उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया।'' भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को एक गौरवशाली एवं समृद्ध परंपरा के रूप में प्रस्तुत किया। मध्यकालीन भारतीय इतिहास को एक सुंदर सांस्कृतिक समन्वय के रूप में चित्रित किया एवं आधुनिक भारतीय इतिहास में समस्त भारत में फैलती राष्ट्रीय, चेतना की भावना एवं जनजागृति को प्रखरता के साथ सामने रखा। अतः सुमित सरकार ने उचित ही लिखा है कि ''औपनिवेशिक इतिहास को मुख्य रूप से अंग्रेजी शासन को कायम रखने और उसकी पुष्टि के लिए विकसित किया गया था परंतु इसका परिणाम पूर्णतया विपरीत हुआ। वह शीघ्र ही सीमित परंतु शक्तिशाली देशभक्ति के दावों को प्रस्तुत करने का आधार बन गया।'' यह एक ऐसा आधार था जिसने इतिहास के राष्ट्रवादी उपागम द्वारा साम्राज्यवादी एवं सांप्रदायिक इतिहासकारों को कड़ी चुनौती प्रस्तुत की।

अपनी प्रगति जांचिए

3. 'कैंब्रिज स्कूल' के नाम से किस उपागम को जाना जाता है?

   (क) साम्राज्यवादी उपागम (ख) प्राच्यवादी उपागम

   (ग) मार्क्सवादी उपागम (घ) उपाश्रय उपागम

4. राष्ट्रवादी भावना से ओतप्रोत 'हिंदू पालिटी' कृति के रचयिता निम्न में से कौन हैं?

   (क) ए.सी. मजूमदार (ख) के.पी. जायसवाल

   (ग) बी.डी. सावरकर (घ) सी.एफ. एन्ड्रयूज

4.4 इतिहास का मार्क्सवादी तथा आधुनिक मार्क्सवादी उपागम

इतिहास का मार्क्सवादी उपागम स्वयं कार्ल मार्क्स की विश्व इतिहास को एक महत्वपूर्ण देन है। कार्ल मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या कर वर्ग संघर्ष का सिद्धांत प्रतिपादित किया। मार्क्स प्रतिपादित इतिहास की व्याख्या शीघ्र ही लोकप्रिय हुई और विश्व में मार्क्सवादी इतिहास लेखन का आरंभ हुआ।

कार्ल मार्क्स : एक परिचय

इतिहास की मार्क्सवादी अवधारणाा के प्रणेता स्वयं कार्ल मार्क्स थे। कार्ल मार्क्स का जन्म 5 मई, 1818 ई. को जर्मनी (प्रशा के राइन प्रांत) के एक छोटे–से नगर ट्रेब्स में एक यहूदी परिवार में हुआ था। उनका पूरा नाम कार्ल हेनरिख मार्क्स था। मार्क्स के पिता जो कि एक वकील थे, ने राजनीतिक कारणों से 1824 ई. में यहूदी धर्म के स्थान

टिप्पणी

पर प्रोटेस्टेंट धर्म अंगीकार कर लिया था। मार्क्स ने 1836 ई. में बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। वहां वह कानून पढ़ते थे परंतु उनकी रुचि मुख्यतः इतिहास एवं दर्शन के प्रति थी। मार्क्स के स्वभाव में एक विचारक की गम्भीरता एवं एक क्रांतिकारी की कर्मठता व उग्रता दोनों मौजूद थीं। वह यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर बनना चाहते थे परंतु उनके उग्र विचारों के मद्देनजर उन्हें यह पद नहीं दिया गया।

1833 ई. में एक संपन्न परिवार की लड़की जेनी से मार्क्स को प्रेम हो गया और उसी से विवाह किया। जर्मनी में अपने स्वतंत्र विचारों की गुंजाइश न देख मार्क्स पेरिस चला गया और वहां उन्होंने फ्रेंको–जर्मन शब्द कोश का संपादन किया। 1844 ई. में जर्मन विद्वान फ्रेडरिक ऐंगल्स से उनकी मैत्री हुई जो जीवन पर्यन्त बरकरार रही। अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण मार्क्स को एक के बाद एक जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम आदि देशों से निकाला गया। अतः आयु के अंतिम 34 वर्ष उन्होंने इंग्लैंड में बिताए और ब्रिटिश म्यूजियम में बैठकर अध्ययन कार्य किया और भविष्य में क्रांति के मार्ग की रूपरेखा तय की। इंग्लैंड में रहकर उन्होंने लगातार मजदूर आंदोलनों में भाग लिया और अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन किया। अपने अध्ययन के आधार पर उन्होंने सर्वप्रमुख कृति 'पूंजी' दास कैपिटल लिखी। इस कृति का प्रथम भाग उन्होंने 14 मार्च, 1884 ई. को लिखा। उनकी मृत्यु के पश्चात दूसरा व तीसरा भाग ऐंगेल्स ने लिखा और उसे प्रकाशित करा दिया। मार्क्स की यह पुस्तक दास कैपिटल मार्क्सवाद या Communism की आधारशिला है।

इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या

इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या का श्रेय स्वयं कार्ल हेनरिख मार्क्स (1818–1883 ई.) को जाता है। मार्क्स के इतिहास उपागम के प्रमुख आधार स्तम्भ निम्न सिद्धांत थे–

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद

मार्क्स के हीगेल के विपरीत इतिहास के निर्माण में विचारों की अपेक्षा भौतिक तत्वों को प्रधानता दी थी। इसीलिए उसने हीगेल का द्वंद्वात्मक दर्शन स्वीकार कर उसके आदर्शवाद को भौतिकवाद से विस्थापित किया। इसे मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद एवं द्वंद्वात्मक भौतिकवाद कहा गया। मार्क्स के इस मत को इतिहास दर्शन के रूप में समझा जाता है। मगर मार्क्स इसे दार्शनिक व्याख्या न कहकर ऐतिहासिक व्याख्या कहता था। मार्क्स भले ही अपने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की व्याख्या को इतिहास दर्शन नहीं मानता लेकिन गोविंद चंद्र पांडे इसे इतिहास दर्शन ही मानते हैं। उनके अनुसार, ''मार्क्स के अनुयायियों ने विश्व इतिहास में एक निश्चित सामान्य क्रम को स्वीकार किया है, भले ही विशेष परिस्थितियां इस क्रम में अपवाद प्रस्तुत करें। यह भी स्मरणीय है कि लेनिन ने इस दृष्टि अथवा पद्धति के दार्शनिक उपागम की स्वीकारपूर्वक व्याख्या की है। फलतः यह स्पष्ट है कि यद्यपि मार्क्स का आग्रह ऐतिहासिक विश्लेषण और उसकी एक विशेष पद्धति पर है, उसकी व्याख्या सारणी एक विशेष दार्शनिक दृष्टि के ऊपर आधारित है। इस प्रकार की दर्शनमूलक ऐतिहासिक विश्लेषण पद्धति को एक प्रकार का इतिहास दर्शन कहना गलत नहीं कहा जा सकता, यद्यपि सही है कि मार्क्स इतिहास को सामान्य दार्शनिक सिद्धांतों से निगमित नहीं करता।''

हीगेल के मतानुसार समाज गतिमान और परिवर्तनशील है और विश्वात्मा या सूक्ष्म आत्मतत्व उसका नियामक कारण है। इस प्रकार आध्यात्मिक आदर्श उसके

टिप्पणी

चिंतन का लक्ष्य था। मार्क्स के अनुसार विचार नहीं वरन् भौतिक पदार्थ सामाजिक परिवर्तन का आधार है। मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद प्रकृति और समाज के अंतर्द्वन्द्व को इतिहास का आधार मानता है। मार्क्स सामाजिक व्यवस्था को भी शोषक एवं शोषित के अंतर्द्वन्द्व के रूप में देखता है। सेवाइन ने लिखा है कि ''हीगेल के विचारों में द्वंद्वात्मक चिंतन शीर्षासन कर रहा था। मार्क्स ने यथार्थवादी भ्रांतियां दूर करके उसे प्राकृतिक स्थिति में पैरों के बल पर खड़ा कर दिया।''

मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार इतिहास में प्रत्येक युग के उत्पादन की शक्तियों द्वारा समाज में एक आर्थिक अंतर्द्वंद्व पैदा होता है। इस द्वंद्व के परिणामस्वरूप समाज आर्थिक वर्गों में विभाजित रहता है। प्राचीन यूनान में स्वतंत्र नागरिक एवं दास, रोम में पैट्रोशियन एवं प्लीब्यिन, मध्ययुग में भूमिपति एवं दास किसान तथा वर्तमान युग में पूंजीपति और मजदूर वर्ग उसके उदाहरण हैं। इस वर्ग संघर्ष के अंतर्द्वंद्व के कारण ही इतिहास को गति एवं दिशा मिलती है। दो वर्गों के बीच वाद और प्रतिवाद की प्रक्रिया संपन्न होती है तथा इनके संवाद या संश्लेषण के फलस्वरूप एक नया वर्ग जन्म लेता है। इतिहास के विकास की यह एक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया है जिसके मूल में आर्थिक शक्तियां निहित हैं। सेवाइन के अनुसार मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का लक्ष्य एक वर्गहीन समाज की स्थापना करना है। वर्ग संघर्षविहीन समाज मार्क्स का वह संवाद है जिसके आगे कोई प्रतिवाद जन्म नहीं लेता और वर्ग संघर्ष की द्वंद्वात्मक प्रक्रिया रुक जाती है।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

इतिहास के उपागम के रूप में मार्क्स द्वारा प्रतिपादित इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मार्क्स उत्पादन की शक्तियों को इतिहास के विकास का निर्णायक तत्व मानता है। मनुष्य के क्रियाकलाप आर्थिक एवं भौतिक कारकों द्वारा नियमित होते हैं। मार्क्स मानव को आर्थिक शक्तियों के दास के रूप में देखता है। मार्क्स प्रतिपादित ऐतिहासिक भौतिकवाद के दो मूल सिद्धांत है। प्रथम यह कि प्रकृति विकास की ही तरह सामाजिक विकास के भी कुछ निश्चित नियम होते हैं। द्वितीय यह कि सामाजिक विकास के नियमों के निर्धारण में भौतिक एवं आर्थिक शक्तियों की भूमिका प्रमुख होती है। किसी भी देश एवं समाज में जैसी भौतिक परिस्थितियां होंगी, समाज का सामाजिक–राजनीतिक संगठन, धर्म, कानून, नैतिक मूल्य एवं मान्यताएं तद्नुसार ही होगी। इस प्रकार इतिहास की दृष्टि से मार्क्स की इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या अत्यंत महत्वपूर्ण है।

वर्ग संघर्ष का सिद्धांत

मार्क्स प्रत्येक युग एवं समाज के इतिहास को वर्ग–संघर्ष का इतिहास मानता है। मार्क्स के वर्ग संघर्ष में एक वर्ग साधन–संपन्न शोषक वर्ग है एवं द्वितीय वर्ग साधनहीन शोषित वर्ग है। दोनों वर्गों के हित, स्वार्थ, जीवन–शैली एवं सांस्कृतिक आदर्श भिन्न–भिन्न है। किसी भी देश का, किसी भी काल का, किसी भी समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का ही इतिहास है एवं प्रत्येक घटना के घटित होने के पीछे भी वर्ग संघर्ष की ही भूमिका मुख्य है। मार्क्स के अनुसार वर्ग संघर्ष सिद्धांत विश्व इतिहास को समझने की महत्वपूर्ण कुंजी है। इस संबंधा में बुद्ध प्रकाश लिखते हैं, ''मार्क्स के सिद्धांत के निरूपण से यह प्रकट होता है कि आर्थिक उत्पादन और उपयोग के विधान से मानव इतिहास का

टिप्पणी

स्वरूप निश्चित होता है। जब कोई आर्थिक विधान अपनी उपयोगिता से आगे निकल जाता है तो इसके स्थान पर दूसरा विधान आ जाता है। इस परिवर्तन में सामाजिक वर्गों का विरोध उग्र रूप धारण कर लेता है। शोषक और शोषित एक दूसरे के विरुद्ध उठ जाते हैं। प्रथम वर्ग नष्टप्रायः आर्थिक ढांचे को खड़ा करने की चेष्टा करता है और दूसरा वर्ग इसे उखाड़ फेंकने की जल्दी करता है। अतः वर्ग युद्ध भड़क उठता है। इस युद्ध; विरोध और संघर्ष से एक नूतन व्यवस्था का जन्म होता है। मानव इतिहास युद्धों का वृत्तांत है।''

अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत

मार्क्स प्रतिपादित अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत मार्क्स के शब्दों में, ''अतिरिक्त मूल्य उन दो मूल्यों का अंतर है जिसे मजदूर पैदा करता है और वास्तव में जिसे वह पाता है।'' यह अतिरिक्त मूल्य पूंजीपति को शोषणस्वरूप बिना किसी श्रम के प्राप्त होता है। पूंजीपति श्रमिक को उचित पारिश्रमिक नहीं देते और न्यूनतम मजदूरी देकर उनका शोषण करते हैं। मार्क्स के इस सिद्धांत का यद्यपि कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं है परंतु प्रचारात्मक महत्व अवश्य है।

वैज्ञानिक समाजवाद

मार्क्स का वैज्ञानिक समाजवाद एक व्यावहारिक दर्शन है। मार्क्स के पूर्व के विचारक समाज की आर्थिक विषमता की बात तो करते हैं मगर यह नहीं बताते कि यह आर्थिक विषमता क्यों आई एवं उत्पादन की विधियों से उनका क्या संबंध है। वेबर ने मार्क्स के पूर्व के विचारकों के बारे में लिखा है कि ''उन्होंने सुंदर गुलाब के फूलों की कल्पना तो की मगर गुलाब के पौधों के लिए कोई जमीन तैयार नहीं की।'' अतः इन्हें स्वप्न लोकीय समाजवादी कहा गया। मार्क्स का मानना है कि दार्शनिकों का मुख्य कार्य मात्र जगत का विश्लेषण न होकर उसे बदलना है। मार्क्स का वैज्ञानिक समाजवाद इतिहास के विकास को भी समझाता है। वह प्रत्येक ऐतिहासिक घटना के पीछे आर्थिक कारकों को उत्तरदायी मानता है। एल.डब्ल्यू. लंकास्टर के अनुसार, मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद के दो मूल आधार हैं–एक वह जो वास्तविकता पर आधारित है, मात्र कपोल कल्पना नहीं है। द्वितीय, यह प्राचीन व्यवस्था को ही वैज्ञानिक तरीकों से नहीं समझता अपितु नवीन व्यवस्था स्थापित करने हेतु भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाता है।

सामाजिक विकास की अवस्थाएं

मार्क्स के इतिहास उपागम का एक महत्वपूर्ण घटक उसके द्वारा प्रतिपादित सामाजिक विकास की अवस्थाएं हैं। ये अवस्थाएं हैं– आदिम साम्यवादी समाज, दास समाज, सामंतवादी समाज, पूंजीवादी समाज एवं समाजवादी समाज। इनमें मार्क्स प्रथम व अंतिम को वर्ग संघर्षविहीन समाज बताता है एवं उसके अनुसार बाकी सभी अवस्थाओं में वर्ग संघर्ष विद्यमान था। वर्गविहीन समाजवादी समाज की स्थापना मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का चरम लक्ष्य है।

रूस के संदर्भ में देखें तो मार्क्स की इतिहाससम्मत व्याख्या सही साबित होती है, वहां 1917 ई. की क्रांति के पश्चात साम्यवादी व्यवस्था अस्तित्व में आई। चीनी इतिहास में भी साम्यवाद की स्थापना का मूल स्रोत मार्क्सवादी प्रभाव ही माना जाता है।

मार्क्सवादी इतिहास लेखन

मार्क्स के समकालीन हेनरी मार्गन ने अपनी कृति 'एशिएंट सोसायटी' में मात्र आदिम मानव के इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत कर, मार्क्स के समय ही मार्क्सवादी इतिहास लेखन आरंभ कर दिया था।

टिप्पणी

20 वीं शताब्दी के मध्य ग्रेट ब्रिटेन में भी कम्युनिस्ट पार्टी के एक सक्रिय सदस्य के रूप में इतिहासकार ई.पी. थाम्सन ने मार्क्सवादी हिस्टोरियन ग्रुप की स्थापना में सहयोग किया जो कालांतर में असाधारण रूप से विकासशील सिद्ध हुआ। थाम्सन के साथी सदस्यों में क्रिस्टोफर हिल, एरिक हॉब्सबाम और राडनी हिल्टन इत्यादि शामिल थे। इसी मार्क्सवादी हिस्टोरिकल ग्रुप द्वारा आज की प्रसिद्ध ऐतिहासिक पत्रिका 'पास्ट एंड प्रजेंट' का बीजारोपण किया। 1950 ई. के पश्चात भारत में भी मार्क्सवादी इतिहास लेखन की ओर रुझान बढ़ा। भारतीय मार्क्सवादी विद्वानों को 'पास्ट एंड प्रजेंट' जैसी पत्रिका, 'संक्रमण पर बहस' और हिल, हाब्सन तथा थाम्सन जैसे इतिहासकारों की रचनाएं सर्वाधिक प्रेरणात्मक प्रतीत हुईं जिन्हें पश्चिम में शैक्षणिक प्रतिष्ठानों ने अक्सर दरकिनार करने का प्रयास किया था। विद्वानों की मान्यता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय इतिहास लेखन में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के प्रभाव क्षेत्र का असाधारण विस्तार हुआ है। यह आधुनिक और मध्यकालीन भारतीय इतिहास के संबंध में तो सत्य लगता ही है, प्राचीन भारतीय इतिहास के विषय में भी सत्य लगता है।

प्राचीन भारतीय इतिहास का मार्क्सवादी उपागम से लेखन

भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा के प्रारंभिक प्रयास के रूप में बी.एन. दत्त की दो प्रमुख पुस्तकों 'डाइलेक्टिक्स ऑफ लैंड ऑनरशिप इन इंडिया' एवं 'कास्ट एंड क्लास इन एंशिएंट इंडिया' को लिया जा सकता है। भारत के प्रमुख मार्क्सवादी विचारक श्रीपाद अमृत डांगे ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखी गई अपनी कृति 'इंडिया फ्राम प्रिमिटिव कम्युनिज्म टू स्लेवरी' में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भारत भी पश्चिमी देशों की भांति विकास के विभिन्न चरणों–दासता और सामंतवाद से होकर गुजरा है। डांगे ने आर्यों की प्राचीन सामुदायिक व्यवस्था की समाप्ति के उपरान्त भारत में दास समाज के उदय का दावा किया है। मार्क्सवाद के प्रति अत्यधिक झुकाव के बावजूद दत्त एवं डांगे की कृतियों को भारतीय इतिहास में कोई खास महत्व नहीं मिला।

भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दामोदर धर्मानन्द कोसांबी का है। मार्क्सवादी इतिहासकार डी.डी. कोसांबी की दो प्रमुख कृतियों 'एन एण्ट्रोडक्शन टू दि स्टडी ऑफ हिस्ट्री' (1956) एवं 'कल्चर एंड सिविलाइजेशन ऑफ एशिएंट इंडिया' (1964) को मार्क्सवादी दृष्टि से लिखी गई कृतियों के रूप में इतिहास जगत में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कोसांबी अपनी कृतियों में भारतीय समाज के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं। कोसांबी की मान्यता है कि आर्य जनजातियों द्वारा गैर–कार्य दासों का सामूहिक रूप से शोषण किया जाता था।

प्राचीन भारतीय मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा में कोसांबी के बाद रामशरण शर्मा जैसे मार्क्सवादी इतिहासकार का नाम प्रमुखता के साथ लिया जा सकता है। उनकी प्रमुख कृतियां–'प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं', 'प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति और सामाजिक संरचनाएं', 'सामंतीय समाज और संस्कृति', 'शुद्राज इन एशिएंट इंडिया' एवं 'भारतीय सामंतवाद' आदि में मार्क्सवादी

टिप्पणी

दृष्टिकोण की झलक देखी जा सकती है। कोसांबी के साथ–साथ रामशरण शर्मा भी भारत में सामंतवाद के विकास को क्षेत्रीय प्रभावशाली व्यक्तियों के एक शक्तिशाली वर्ग के उदय के रूप में देखते हैं जो ग्रामीण अभिशेष का निबटारा करता था और यही सामंतवादी वर्ग भारत में सामाजिक रूप से शक्तिशाली वर्ग बना।

मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा में डी.आर. चानना की कृति 'स्लेवरी इन एंशिएंट इंडिया' (1960), रोमिला थापर की कृतियां 'ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया', 'आइडियोलॉजी एंड द इंटरप्रिटेशन ऑफ अर्ली इंडियन हिस्ट्री', एल. गोपालकृत 'द इकनॉमिक लाइफ ऑफ नार्थ इंडिया' आदि महत्वपूर्ण हैं एवं ये सभी कृतियां प्राचीन भारतीय इतिहास से संबंधित हैं।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास का मार्क्सवादी उपागम से लेखन

मध्यकालीन भारतीय इतिहास का जिन इतिहासकारों ने मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि से लेखन किया है, उनमें इरफान हबीब का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। इरफान हबीब मार्क्स से एवं उसके वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अत्यधिक प्रभावित थे। उनका मानना था कि मार्क्स को समझने के लिए भी एक वृहद वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

इरफान हबीब ने मार्क्स के पक्ष को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''मार्क्स के कुछ अनुयायियों ने सार्वभौमकाल विभाजन तय किए जाने पर जोर देकर (आदि साम्यवाद, दासता, सामंतवाद, पूंजीवाद) और सभी समाजों का वर्गीकरण इन्हीं के बाद एक घटित होने वाली सामाजिक संरचनाओं के अनुसार किए जाने पर बल देकर, मार्क्स का अहित किया है। कोई भी यह देख सकता है कि मार्क्स ने पूंजीवाद के विकास (जैसे कि उनकी पुस्तक कैपिटल) या राजनीतिक इतिहास पर जिस प्रकार अपनी ही विधि को अपने कार्यों पर लागू किया है, वह कहीं अधिक परिष्कृत तरीका है और न ही इसमें कोई सच्चाई है कि मार्क्स का मत था कि सभी प्रकार के विचार भौतिक विश्व को प्रतिबिंबित करते हैं। इसके विपरीत मार्क्स ने केवल यह चेतावनी दी कि सैद्धांतिक अथवा वैचारिक रूपों को प्राकृतिक विज्ञान के समाज में यथातथ्य रूप में निर्धारित किया जा सकता है बल्कि उनकी यह भी मान्यता थी कि मानव समाज की प्रगति उसे आवश्यकता के क्षेत्र से निकालकर स्वतंत्रता की ओर ले जाती है। इस फॉर्मूले का मतलब इसके सिवाय और क्या हो सकता है कि मानव समाज की प्रत्येक प्रगति के साथ, भौतिक परिस्थितियों का महत्व मानव चेतना के सामने कुछ और कम हो जाता है। इसके अलावा मार्क्स ने आख्याताओं की इस अवधारणा को भी निश्चय ही माना होता कि मनुष्य एक अकेले व्यक्ति के रूप में मुख्यतः और अनिवार्यतः अपने हितों के लिए ही काम करता है।''

इरफान हबीब के साथ–साथ, नूरुल हसन एवं बी.आर. ग्रोवर आदि ने भी मध्यकालीन भारतीय इतिहास का मार्क्सवादी दृष्टि से लेखन किया। सोवियत इतिहासकार रेसनर एवं मार्क्सवादी इतिहासकार रजनी पामदत्त ने 'इंडिया टुडे' में मत व्यक्त किया कि आधुनिक युग के पहले की भारतीय अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद के विकास की संभावनाएं मौजूद थीं और इस तरह के मूल तत्वों ने जातियों के उदय में योगदान दिया जो मुगल साम्राज्य के विघटन की सहकारी कारण बनी किन्तु ये दोनों ही प्रक्रियाएं ब्रिटेन द्वारा भारत विजय के कारण निष्फल हो गईं। इस संबंध में विरोध व्यक्त करते हुए इरफान हबीब ने लिखा है कि ''पूंजीवाद और जातीयता का उभरना एक दूसरे से जुड़ी हुई दो ऐसी प्रक्रियाएं हैं जो केवल आधुनिक भारत की घटनाएं हैं और जिन्हें

टिप्पणी

मार्क्स ने 'पुनरुत्पत्ति' की संज्ञा दी जो कि औपनिवेशिक शासन का अनिश्चित परिणाम थीं। इन प्रक्रियाओं का आरंभ उसके पहले के काल में मानना अनैतिहासिक बात होगी।'' हबीब के इस कथन से स्पष्ट है कि मार्क्स के सिद्धांतों को लेकर भी सभी भारतीय मार्क्सवादी इतिहासकार लकीर–के–फकीर होकर एक–दूसरे का अन्धानुकरण नहीं करते थे।

आधुनिक भारतीय इतिहास का मार्क्सवादी उपागम से लेखन

आधुनिक भारत के इतिहास का मार्क्सवादी दृष्टि से लेखन का श्रेय विपिनचंद्र, वरुन डे, रजनी पामदत्त, एम.एन. राय एवं ए.आर. देसाई आदि विद्वानों को जाता है। आधुनिक भारत के आर्थिक इतिहास लेखन की मार्क्सवादी परंपरा में आर.पी. दत्त जैसे मार्क्सवादी इतिहासकार का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। इन इतिहासकारों में ए.आर. देसाई की 'सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म', विपिनचंद्र की 'द राइज एंड ग्रोथ ऑफ इकोनॉमिक नेशनलिज्म इन इंडिया' आदि महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार भारत के अनेक मार्क्सवादी इतिहासकारों ने प्राचीन, मध्ययुगीन एवं आधुनिक भारत के इतिहास को मार्क्सवादी दृष्टि से लिखने का सराहनीय प्रयास किया है। इस तारतम्य में जगदीशनारायण तिवारी लिखते हैं–''प्रतिभाशाली इतिहासकारों के मार्क्सवाद के प्रति आकर्षण से मैं प्रभावित हूं और मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में अनेक उत्कृष्ट शोध मार्क्सवादी विद्वानों की देन हैं।'' भारत में प्राचीन से आधुनिक काल तक की मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा पर प्रकाश डालते हुए सतीशचंद्र ने भी लिखा है कि ''मार्क्स की ऐतिहासिक प्रणाली से प्रभावित बहुत से भारतीय विद्वानों ने भारतीय समाज और भारतीय समाज की जाति, ग्रामीण अर्थव्यवस्था जैसी ठोस संस्थाओं के विकास में विभिन्न चरणों को स्थापित करने का प्रयास किया। इन सभी विकासों ने एक बड़ी संख्या में भारतीय विद्वानों का ध्यान भारतीय समाज की ठोस समस्याओं और उसके विकास पर केंद्रित करने की प्रवृत्ति को प्रदर्शित किया है।''

भारत और दूसरे एशियाई देश गुलामी और सामंतवाद के चरणों से गुजरे अथवा नहीं, इस बहस ने भारत और विदेशों दोनों में मार्क्सवादी विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किए रखा है।

मार्क्सवादी इतिहास लेखन की पाश्चात्य परंपरा में ई.एच.कार का नाम इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कृति 'इतिहास क्या है?' में न केवल मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि की समीक्षात्मक विवेचना प्रस्तुत की है अपितु मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि के अग्रणी आलोचकों की आलोचनाओं का उत्तर भी देने का प्रयास किया है। मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि के अग्रणी आलोचकों में कार्ल आर.पापर एवं इसाइया बर्लिन के नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं। पापर ने अपनी कृतियों 'द ओपन सोसाइटी एंड इट्स एनिमीज', 'द पावर्टी ऑफ हिस्टोरिसिज्म' एवं इसाइया बर्लिन ने अपने लेख 'हिस्टोरिकल इन एविटेबिलिटी' में हीगेल तथा मार्क्स के नियतिवादी इतिहास दर्शन की आलोचना करते हुए इस बात पर ऐतराज व्यक्त किया है कि मार्क्स ने इतिहास में संयोगों की भूमिका स्वीकार नहीं की। ई.एच.कार. ने मार्क्स का पक्ष स्पष्ट करते हुए उक्त दोनों ही आलोचनाओं का तथ्यपरक जवाब दिया है। कार अपनी कृति 'इतिहास क्या है' में स्पष्ट करते हैं कि मार्क्स ने इतिहास में संयोग के तीन उपादान स्वीकार किए हैं।

टिप्पणी

इस प्रकार हम देखते हैं कि पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परंपरा के साथ डी.डी. कोसांबी, आर.एस. शर्मा, रोमिला थापर, इरफान हबीब, ए.आर. देसाई, विपिनचंद्र, आर.सी. दत्त, ई.पी. थाम्सन एवं ई.एच.कार जैसे अनेकानेक ख्यातिप्राप्त इतिहासकारों का नाम जुड़ा होना, इतिहास के क्षेत्र में मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि के महत्व का सूचक है। इस तारतम्य में जगदीशनारायण तिवारी तो यहां तक स्वीकार करते हैं कि ''हाल के दशकों में इतिहास विषय की गम्भीरता बनाए रखने और इसके अध्ययन, अध्यापन तथा शोध के उच्च प्रतिमान स्थापित करने में इनका (मार्क्सवादी इतिहासकारों का) निश्चित योगदान है और उन केंद्रों में प्रायः इतिहास के अध्ययन और शोध को अधिक गम्भीरता से लिया जाता है जहां मार्क्सवादी दृष्टि का भी सम्मान है।''

अपनी प्रगति जांचिए

5. "समाज गतिमान और परिवर्तनशील है और विश्वात्मा या सूक्ष्म आत्मतत्व उसका नियामक कारण है।" यह कथन किसका है?

   (क) जी.डी.एच. कोल (ख) सेवाइन

   (ग) टीगेल (घ) इनमें से कोई नहीं

6. "अतिरिक्त मूल्य उन दो मूल्यों का अंतर है जिसे मजदूर पैदा करता है और वास्तव में जिसे वह पाता है।" यह किसका कथन है?

   (क) कार्ल मार्क्स (ख) हीगेल

   (ग) प्लेटो (घ) सबाल्टर्न

4.5 इतिहास का उपाश्रय उपागम

20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इतिहास लेखन का एक नवीन संप्रदाय उभरकर सामने आया है जिसे उपाश्रयवादी संप्रदाय कहा जाता है। चूंकि इतिहास के उपाश्रयी उपागम या यूं कहें कि उपाश्रयी इतिहासकारों के अध्ययन की प्रमुख विषय–वस्तु निम्नवर्गीय अध्ययन के इर्द–गिर्द घूमती है, अतः कतिपय विद्वान इसे निम्नवर्गीय अध्ययन भी कहते हैं। इतिहास की व्याख्या का यह तरीका (इतिहास नीचे से) के नाम से भी जाना जाता है। इसे जनता का इतिहास लेखन भी कहा जाता है। अब प्रश्न उठता है कि यदि यह जनता का इतिहास है तो जो इतिहास अब तक लिखा गया, वह क्या है, इस प्रश्न का उत्तर उपाश्रयवादी संप्रदाय यह कहकर देता है कि इससे पूर्व का समस्त इतिहास लेखन 'अभिजनवादी इतिहास लेखन' था जिसमें समाज के निम्नतम वर्ग की चेतना, भावनाओं एवं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इतिहास में उनके योगदान की पूर्णतः अवहेलना की गई। इस अभिजनवादी इतिहास के पास जनता के इतिहास की समझ में योगदान देने के लिए कुछ भी नहीं है। अतः आम जनता, उसकी चेतना, विचारधारा, उसके तौर–तरीकों को इतिहास के पन्नों पर लाना ही इतिहास की सबाल्टर्न एप्रोच का प्रमुख ध्येय है।

उपाश्रयी उपागम के अनुप्रयोग का उद्देश्य

इतिहास की सबाल्टर्न विचारधारा से जुड़े हुए विद्वान शाहिद अमीन एवं ज्ञानेन्द्र पाण्डेय इतिहास के उपाश्रयी उपागम के महत्व एवं उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए बताते हैं कि

टिप्पणी

'सबाल्टर्न स्टडीज' के प्रकाशित होने के पहले ही कई वर्षों से आम जनता इतिहास के पन्नों पर नजर आने लगी थी। बहुधा लेखक इस जनता की गुरबत और भुखमरी की ही ओर इशारा करके रह जाते थे। जनता का दिमाग और दिल, विचारधारा और विकल्प अधिकांश इतिहासकारों के लिए नगण्य से रह जाते थे। अगर यदा–कदा ऐसे दरिद्र सुदामा कार्यशील होते थे और गैर–मोत्वक्को तौर पर अचानक अभिजात–राजनीतिक अखाड़ों में तालें ठोकते नजर आते थे तो वह केवल 'पेट के वास्ते'। यही कारण है कि जहां हम भारतीय अभिजात जन की सोच व फिक्र, मर्म और पेट, आकांक्षाएं, तमन्ना, आशा–निराशा, कथन, पाठन, मनन और यत्न के बारे में इतना कुछ जानते हैं, वहां जनता के बारे में हमारी जानकारी सतही और छिछली रही है। 'सबाल्टर्न स्टडीज' में हमारा प्रयास 'आम–जनता'–गरीब किसान, चरवाहा, कामगार, मजदूर, दलित जातियां, स्त्री समाज आदि की उदरावस्था तक ही सीमित न रहकर उनके सोच–विचार तक पहुंचने का रहा है।

भारत में उपाश्रयी इतिहास लेखन का आरंभ

उपाश्रयी (सबाल्टर्न) शब्द इटली के प्रख्यात मार्क्सवादी विचारक अंतोनियो ग्राम्शी की रचनाओं से लिया गया है। भारत में उपाश्रयी इतिहास लेखन के प्रमुख इतिहासकार एवं 'सबाल्टर्न स्टडीज' का एक प्रमुख संस्थापक रणजीत गुहा को माना जाता है। 'सबाल्टर्न स्टडीज' के खंड एक एवं खंड दो का संपादन रणजीत गुहा द्वारा ही किया गया था। इन दोनों खंडों के सभी 14 लेख भारतीय समाज के दलित वर्गों, काश्तकारों, आदिवासियों के बारे में है। एक लेख श्रमिकों से भी संबंधित है। प्रथम खंड में गुहा ने जो भूमिका और प्रस्तावना लेख लिखे हैं, वे निम्नवर्ग के प्रसंगों और अंतोनियो ग्राम्शी के आह्वानों से ओत–प्रोत हैं। मातहत वर्ग के इतिहास के लिए ग्राम्शी ने छः सूत्रीय 'पद्धति संबंधी कसौटियां' निर्धारित की थीं। रणजीत गुहा ने 'सबाल्टर्न स्टडीज' के प्रथम पृष्ठ पर बड़ी प्रशंसा के साथ इनका उल्लेख किया है और इसे एक ऐसा नमूना बताया है जो अप्राप्य तो है लेकिन उसके लिए प्रयास किया जाना चाहिए। ग्राम्शी की छः सूत्रीय पद्धति संबंधी कसौटियां निम्न हैं–

1. आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र में हो रहे विकास और रूपान्तरणों द्वारा मातहत सामाजिक वर्गों का निष्पक्ष निर्माण।
2. शक्तिशाली राजनीतिक निर्माणों के साथ उनका सक्रिय अथवा निष्क्रिय संबंध और अपने स्वयं के दावों पर बल देने के लिए इन निर्माणों के कार्यक्रमों को प्रभावित करने के प्रयास।
3. शक्तिशाली वर्गों की नई पार्टियों का जन्म, जो मातहत वर्गों के उत्थान को सुरक्षित रखते हुए उन पर अपना नियंत्रण कायम रखना चाहते हैं।
4. सीमित और आंशिक चरित्र के दावों पर बल देने के लिए जिन निर्माणों को स्वयं मातहत वर्ग तैयार करते हैं।
5. वे नये निर्माण जो प्राचीन ढांचे के अंदर मातहत वर्ग की स्वायत्तता पर बल देते हैं।
6. वे निर्माण जो अविभाज्य स्वायत्तता पर बल देते हैं ... इत्यादि।

वस्तुतः सबाल्टर्न स्टडीज गुट के विद्वानों ने अभिजन वर्ग एवं मातहत वर्ग को पृथक कर मातहतों की स्वायत्तता पर बल दिया है। सबाल्टर्न स्टडीज ने जो पृथक्करण

टिप्पणी

किया, वह मार्क्स की पद्धति से हटकर था। मार्क्स के पृथक्करण का मुख्य आधार आर्थिक था, जबकि सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्तर पर भी दोनों वर्गों में विभिन्नता थी। अतः उपाश्रयी प्रवृत्ति ने आमजन की जागृति और संस्कृति के लोकप्रिय अथवा मातहतों की स्वायत्तता के उपेक्षित आयाम को खोजने का प्रयास किया।

सबाल्टर्न स्टडीज ग्रुप का सर्वाधिक प्रमुख तर्क यह है कि अभिजात वर्ग का अस्तित्व मातहत वर्ग पर टिका है। राष्ट्रीय आंदोलन के प्रत्येक चरण में आम जनता की भूमिका प्रमुख थी। यहां तक कि भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माण एवं विकास में भी जन साधारण की भूमिका को भुलाया नहीं जा सकता। अतः उपाश्रयवादियों ने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि औपनिवेशिक भारत का इतिहास लेखन किसी प्रकार शीघ्रता से भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास लेखन का रूप ले लेता है। बुनियादी गलती यह बताई जाती है कि ''राष्ट्रवाद के निर्माण और विकास में जन साधारण ने स्वतः ही जो योगदान दिया, उसे इतिहास लेखकों ने नजर अंदाज किया। अंत में राष्ट्र को स्वाभिमानी बनने में उनके योगदान को स्वीकार न करना ही एक ऐतिहासिक असफलता बन जाती है।'' इतिहास की इस असफलता अथवा विसंगति अथवा रिक्तता को पूर्ण करने का दायित्व सबाल्टर्न ग्रुप द्वारा संभाला गया।

उपाश्रयी विचारधारा और मार्क्सवाद

डॉ. एन. धांगरे ने 'सोशल साइंटिस्ट', अंक–16, 1988 ई. में प्रकाशित अपने लेख Subaltern Consciousness and Populism : Two Approaches in the Study of Social Moment में रणजीत गुहा द्वारा स्थापित सबाल्टर्न स्टडीज की सैद्धांतिक जड़ों को समकालीन चार मार्क्सवादी विचारधाराओं में खोजने की कोशिश की है जो निम्न हैं–

1. ग्राम्शी की मार्क्सवादी विचारधारा के आधार पर इन्होंने उपाश्रयियों की क्रियात्मक भूमिका को पहचानना एवं उस पर जोर देना सीखा है।
2. दलीय कौशल की भूमिका का विचार ट्राटस्की की मार्क्सवादी अवधारणा की उपज है।
3. इन पर आंशिक रूप से एरिक हाब्सन, जॉर्ज रूड एवं ई.पी. थाम्सन के मार्क्सवादी विचारों का भी प्रभाव था।
4. इन पर 1968 ई. के पेरिस विद्रोह, लेटिन अमेरिका के आंदोलन में विद्यार्थी एवं निम्न वर्ग की भूमिका का भी प्रभाव देखा जा सकता है।

यह तो निश्चित है कि सबाल्टर्नवादी किसी न किसी रूप में मार्क्सवादी अवधारणा से प्रभावित थे परंतु उन्होंने अपने आपको मार्क्सवाद से पृथक् बतलाने की कोशिश की है। कई विद्वानों का आरोप है कि इनका इतिहास पूर्णतः निम्न वर्ग पर केंद्रित है, इसमें अभिजात वर्ग को कोई स्थान नहीं है एवं यह मार्क्सवादी विचारधारा पर ही आधारित है। वास्तविकता क्या है, इसे हम सबाल्टर्न स्टडीज गुट के दो प्रमुख इतिहासकारों शाहिद अमीन एवं ज्ञानेन्द्र पाण्डेय के इस कथन में देख सकते हैं–

''निम्न जन की स्वावलम्बी चेतना पर जोर देने का कतई यह मतलब नहीं था कि हम केवल निम्न जन का ही इतिहास लिखना चाहते थे। हमारी कोशिश एक नए तरह का इतिहास रचने की थी और अब भी है–एक ऐसा इतिहास जो अभिजन के दायरे से बाहर आकर निम्न वर्ग की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को भी परखे और इसके

टिप्पणी

साथ–साथ इन (अभिजन और निम्न जन की) प्रक्रियाओं को दो अलग पटरियों पर न ढकेलकर, इन दोनों के पारस्परिक संबंध, आश्रय और द्वंद्व के जोर पर हमारे उपनिवेशी काल की समझ को गतिशील करे। यही वजह है कि निम्नवर्गीय प्रसंग में निम्न जन की परिस्थितियों और प्रयासों के अलावा अभिजात वर्ग की परिस्थितियों और प्रयासों पर भी नेहरू, बंकिम, गांधी, राजाजी, सरोजिनी नायडू और रामास्वामी नायकर पर भी लेख पाए जाएंगे। हमारी मान्यता भी है कि इन दोनों पहलुओं को अख्तियार किए बगैर, इस निम्नवर्गीय परिवेश को अपनाए बिना, हिंदुस्तान का इतिहास– कहीं का भी इतिहास लिखा ही नहीं जा सकता।''

इस नजरिए से नए इतिहास लेखन के लिए हमने एक नए शब्द, एक नई परिभाषा का सहारा लिया है। इटली के मार्क्सवादी चिंतक अंतोनियो ग्राम्शी ने 'सबाल्टर्न' शब्द समाज के गौंण, दलित और उत्पीड़ित लोगों के लिए इस्तेमाल किया था। भारतीय इतिहास अध्ययन के लिए इस परिभाषा को अपने लेखन में कार्यान्वित करने के हमारे कई कारण थे। प्रयास था– भारतीय समाज में प्रभुत्व और मातहती के बहुआयामी रूप को सामने लाने का; वर्गसंघर्ष और आर्थिक द्वंद्व की कोरी आर्थिकता के कटघरे से आजाद कर उसके सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिरूप और विशिष्टताओं का करीब से विवेचन करने का।

मृदुला मुखर्जी ने इतिहास के उपाश्रयी उपागम एवं मार्क्सवादी उपागम में भेद करते हुए बताया है कि ''उपाश्रयी प्रवर्ग के विपरीत, जनता का मार्क्सवादी प्रवर्ग भी एक ऐतिहासिक विशिष्टता से युक्त प्रवर्ग है और औपनिवेशिक संदर्भ में इसका प्रयोग उन सभी के लिए हुआ है जो उपनिवेशवाद से उत्पीड़ित हैं और उसके विरोध में खड़े हैं। मार्क्सवादी इतिहास लेखन के ढांचे में जरूरी नहीं कि देशी अभिजन औपनिवेशिक शासकों के पक्ष में ही खड़े हों, जैसा कि उपाश्रयी ढांचे में मान लिया गया है कि मार्क्सवादी ढांचे में पारंपरिक और आधुनिक दोनों प्रकार के अभिजनों की स्थिति इस पर निर्भर होती है कि वे राष्ट्रीय और वर्गीय संघर्षों के विशिष्ट संदर्भ में कहां खड़े हैं। उनका अभिजन चरित्र अपने आप उनको उस राजनीतिक क्षेत्र का वासी नहीं बना देता जिसकी सीमाएं औपनिवेशिक राजसत्ता तय करती हैं। विशिष्ट ऐतिहासिक सन्दर्भों में वे जनता के पक्ष में भी खड़े नजर आ सकते हैं और आते हैं। मिसाल के लिए, माओ–त्से–तुंग और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने चीनी जनता की परिभाषा इस प्रकार की थी कि उसमें राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग तथा जापान–विरोधी संघर्ष के संदर्भ में जमींदार भी आ जाते थे।''

अपनी प्रगति जांचिए

7. 'जनता का इतिहास लेखन' किस उपागम को कहा गया है?

   (क) प्राच्यवादी उपागम (ख) उपाश्रय उपागम

   (ग) साम्राज्यवादी उपागम (घ) राष्ट्रवादी उपागम

8. उपाश्रयी (सबाल्टर्न) शब्द किस विचारक की रचना से लिया गया है?

   (क) अंतोनियो ग्राम्शी (ख) ट्राटस्की

   (ग) एरिक हाब्सन (घ) ई.पी. थाम्सन

टिप्पणी

4.6 इतिहास का उत्तर–आधुनिकतावादी उपागम

इतिहास का उत्तर–आधुनिकतावादी उपागम वर्तमान में प्रत्येक देश में महत्वपूर्ण होता जा रहा है।

उत्तर–आधुनिकतावाद के प्रणेता

इतिहास में उत्तर–आधुनिकतावादी उपागम का उद्‌भव 20वीं शताब्दी के चतुर्थांश से माना जा सकता है। फ्रांस के माइकल फूको, लियोतार्ड, देरिदा एवं ब्रादील इत्यादि विद्वानों को उत्तर–आधुनिकता के सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रणेता के रूप में समझा गया है। जीन–फ्रैंकोइस लियोतार्ड ने 1984 ई. में "The Post-modern Condition : A Report on Knowledge" के माध्यम से उत्तर–आधुनिकता के प्राथमिक बिंदु पथ की कलाओं से सामाजिक सिद्धांत, ज्ञानशास्त्र और तकनीकी विज्ञानों की ओर ले जाते हुए समकालीन फ्रांसीसी चिंतन की परस्पर आच्छादित प्रवृत्तियों को एक विशिष्ट नाम दिया। इतिहास के उत्तर–आधुनिक उपागम में तार्किकता, ज्ञानोदय, आधुनिकता, पठनीयता एवं साम्यवाद इत्यादि के बारे में व्यापक सामान्यीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है एवं वे तार्किक समालोचना की प्रक्रिया को अपनाते हैं। उत्तर–आधुनिकता आधुनिकता पूर्व को आधुनिकता की समस्याओं के उत्तर के रूप में प्रस्तुत करती है। यही सबाल्टर्नवादियों, स्वदेशीवादियों, दक्षिणपंथी परिवर्तनकामियों और वैज्ञानिक अतार्किकों के लिए उत्तर–आधुनिकता का आकर्षण है।

उत्तर–आधुनिक दौर

उत्तर–आधुनिकतावादी, इतिहास की एनाल्स परंपरा की भांति ही पूर्व से प्रचलित किसी भी अवधारणा एवं सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते। उनके द्वारा मार्क्सवाद की कभी आतंकवाद कभी अधिनायकवाद के रूप में तो कभी आधुनिकता के पुराने फर्नीचर के रूप में अतिरेकी निंदा की गई है। फूको 1790 से 1930 ई. के बीच के युग को आधुनिक युग मानते हैं। वह आधुनिक युग नेपोलियन के समय में मिस्र पर आक्रमण और द्वितीय विश्व युद्धोपरांत फ्रांस के हिंद चीन में ब्रिटेन के कंधों पर पुनर्प्रवेश के बीच के समय से सह–संबंध रखता है। फ्रांस ने 1960 ई. के बाद उत्तर–आधुनिक दौर में प्रवेश किया। वस्तुतः उत्तर–आधुनिक फ्रेंच होने से पूर्व अमेरिकन था क्योंकि द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात 1950 ई. के आते–आते अमेरिका विश्व में एक वर्चस्वशाली साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में उभरा। एजाज अहमद के अनुसार, ''यह विस्मृत कर दिया जाता है कि उत्तर–आधुनिक फ्रेंच होने से पूर्व बड़े पैमाने पर अमेरिकन था। विपरीत अर्थों में यह भी कहा जा सकता है कि जब विभिन्न प्रकार की अमेरिकन सामाजिक और सांस्कृतिक सैद्धांतिकी फ्रांसीसी दर्शन की भाषा में पुनर्प्रतिपादित हुई और पेरिस की अधिकारिता के साथ उत्तरी अमेरिका वापस भेज दी गई, तभी 'उत्तर–आधुनिकता' अपनी वास्तविक ख्याति प्राप्त कर सकी क्योंकि अब वह अमेरिकी अकादमिक संस्थान की आर्थिक पूंजी और पेरिस की बुद्धिजीवियों की सांस्कृतिक पूंजी के गठजोड़ पर निर्भर थी।''

1950 और 1960 के दशक का संयुक्त राज्य अमेरिका प्रगतिशीलता के चरम के साथ उत्तर–आधुनिक दौर का प्रमुख प्रतिनिधि था, तर्क यह था कि औद्योगिक सर्वहारा अतीत की वस्तु हो जाने से अब मार्क्सवाद अप्रासंगिक हो गया है। फ्रांस में अपने उत्तर–आधुनिक उत्तराधिकारियों से भिन्न लियोतार्ड, फूको आदि अधिकांश विश्लेषकों

ने ज्ञानोदय के मूल्यों को स्वीकारा, इन मूल्यों के संकट और अंत को एक त्रासदी माना और कम से कम उनमें से कुछ ने उन मूल्यों के पुनर्जन्म की आशा रखी।

उत्तर–आधुनिकता और मार्क्सवाद

टिप्पणी

रवि सिन्हा के अनुसार, वैचारिक स्तर पर उत्तर–आधुनिकतावादी मार्क्सवाद से निम्न तीन बातों को लेकर असंतोष की स्थिति में दिखाई देते हैं।

प्रथम यह कि उत्तर–आधुनिकों को व्यापक सिद्धांतों से जिन्हें वे महाव्याख्यान कहते हैं, परहेज है। मार्क्स की सिद्धांत संरचना में उन्हें 'सब कुछ के सिद्धांत' का आशय नजर आता है। उनके अनुसार, विशिष्ट ठोस अध्ययन की अपेक्षा इसमें सैद्धांतिक सामान्यीकरण एवं अमूर्तन की प्रवृत्ति है। उत्तर–आधुनिकों को मार्क्सवादी सिद्धांत गंतव्य निर्धारित प्रतीत होते हैं जो इतिहास को एक निश्चित गंतव्य की ओर सतत प्रवाहमान मानते हैं। मार्क्स की सिद्धांत प्रणाली इतिहास की प्रमुख धारा से मुखातिब है, जबकि उत्तर–आधुनिकों ने जो भी हाशिए पर है, उस पर जोर दिया है। अतः केंद्रीयता के स्थान पर सीमांतता पर जोर देते हुए उत्तर–आधुनिक प्रत्येक केंद्रीय को केंद्र से हटाने पर जोर देते हैं।

द्वितीय यह कि सत्य, ज्ञान, यथार्थ और यहां तक कि वस्तु जगत को या जगत की वस्तुगतता को संदेह की दृष्टि से देखने वाले ये विचारक मार्क्स को पुराने ढंग या यथार्थवादी पाते हैं जिसने यथार्थ संबंधी अपनी धारणाओं की अच्छी तरह चीरफाड़ नहीं की है। ज्ञान और यथार्थ की वस्तुगमता से इंकार उस धारणा से भी जुड़ा है कि ये मानवीय निर्मित है, सांस्कृतिक उत्पाद है और संबंधों का प्रकटीकरण है।

तीसरा असंतोष इस तथ्य को लेकर है कि मार्क्स के विचारों में इन्हें सत्यवाद और आधारवाद के दोष दिखाई पड़ते हैं। मार्क्स का जोर जो प्रत्यक्ष है, उस पर न होकर कल्पित, अंतर्गत सत्य पर है। इसी तरह समाज और इतिहास को अपने आप में संपूर्ण और बंद मानने की बजाय मार्क्स उनका आधार बाह्य प्रकृति से मानव की अंतर्क्रिया से देखते हैं। मार्क्स की उत्पादक शक्तियों की अवधारणा, जो समाज की प्रकृति के बीच के रिश्ते के केंद्रीय और सक्रिय तत्व का निरूपण है, इतिहास की गति की नियामक अवधारणा है और सामाजिक संरचना का बाह्य आधार है। इतिहास की एकमुश्त गति की धारणा से इंकार करने वाले उत्तर–आधुनिकों के लिए इस प्रकार के दोषों वाली सैद्धांतिक संरचना अस्वीकार्य है।

माइकल फूको एवं उनका उत्तर–आधुनिकतावादी इतिहास दर्शन

फूको को उत्तर–आधुनिक यूरोपीय दर्शन का एक बीज व्यक्तित्व माना जाता है। वे एक बहुआयामी प्रतिभा–संपन्न, महान दार्शनिक इतिहासकार थे। उत्तर–आधुनिक चिंतन के प्रमुख व्यक्तियों में फूको इस बात में अद्वितीय हैं कि वे एक इतिहासकार थे। उन्होंने 'कॉलेज डी फ्रांस' के अपने पद का 'हिस्ट्री ऑफ द सिस्टम ऑफ थॉट' ऐसा नामकरण अकारण नहीं किया था। फूको का जन्म 1926 ई. में हुआ था एवं मृत्यु एड्स के कारण 1984 ई. में हुई। इससे पूर्व वे कॉलेज डी फ्रांस में 'हिस्ट्री ऑफ द सिस्टम ऑफ थाट' के प्रोफेसर थे परंतु इतिहास की अपेक्षा भाषा विज्ञान के क्षेत्र में उन्हें अधिक जाना जाता था। पामेला मेजर पोटबेल के अनुसार, फूको इतिहास को एक नवीन विज्ञान के रूप में देखते थे जिसका प्रमुख आधार पश्चिमी संस्कृति का अन्वेषण था। वे सौसर्स के

टिप्पणी

सिद्धांतों, आधुनिक भौतिकी एवं आइन्सटीन के सापेक्षतावादी सिद्धांतों से प्रभावित थे। इस प्रकार विज्ञानेतिहास की फ्रांसीसी परंपरा से उन्होंने अपने प्रारंभिक जुड़ाव के चलते ज्ञानशास्त्र में अपनी विशेष रुचि का विकास किया लेकिन पुनः उस परंपरा के अन्य लोगों से भिन्न उन्होंने भौतिक विज्ञान के स्थान पर मानव विज्ञानों के ज्ञानशास्त्र का अध्ययन किया। अपने इसी ज्ञान के आधार पर उन्होंने दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृतियों 'द आर्डर ऑफ थिंग्स इन आर्कियोलॉजी ऑफ द ह्यूमन साइन्सेज' (1966) एवं 'द आर्कियालॉजी ऑफ नॉलेज' (1969) का सृजन किया। उनकी सर्वमहत्वपूर्ण कृति 'हिस्ट्री डी ला कोलिक' (1961) थी जिससे उन्हें काफी प्रसिद्धि मिली थी।

हीगेल एवं मार्क्स के विपरीत उत्तर–आधुनिकतावादी एक प्रगतिशील एवं सुनिर्दिष्ट लक्ष्य की ओर गत्यात्मक इतिहास की अवधारणा को नहीं मानते। आधुनिकता का प्रखर आलोचक नीत्शे एक निश्चित गंतव्य की ओर उन्मुख इतिहास की अवधारणा का विरोध करता है, वह समाज को प्रभुत्व के लिए सतत चलने वाले अंतहीन संघर्ष का रणक्षेत्र मानता है। इनकी अवधारणा में सत्ता का इतिहास से स्वतंत्र अस्तित्व दिखाई देता है। सत्ता संबंध शाश्वत रूप ग्रहण कर लेते है और इतिहास ही नहीं, प्रकृति को भी सत्ता संचालित करने लगती है। यहां तक कि आम मानव के रूप में कर्ता भी प्रकृतिभूत हो जाता है।

उत्तर–आधुनिकतावादियों ने मार्क्सवाद को आधुनिकता के अनेक महाव्याख्यानों में से एक मानते हुए उसकी आलोचना प्रस्तुत की है। स्कूल ऑफ एनाल्स की तरह उत्तर–आधुनिकों को भी व्यापक सिद्धांतों से, जिन्हें वे महाव्याख्यान कहते हैं, सख्त विरोध है। मार्क्स द्वारा प्रतिपादित इतिहास की गंतव्य निर्धारित प्रणाली उत्तर–आधुनिकों की समालोचना का प्रमुख मुद्दा है। मार्क्स जहां इतिहास की मुख्य धारा से मुखातिब है, वहीं उत्तर–आधुनिकों ने जो भी हाशिए पर है, उस पर बल दिया है।

जीन–फ्रैंकोइस लियोतार्ड का उत्तर–आधुनिकतावादी इतिहास दर्शन

उत्तर–आधुनिकतावाद के एक प्रमुख प्रणेता जीन–फ्रैंकोइस लियोतार्ड ने आधुनिकता एवं उत्तर–आधुनिकता की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए लिखा है–

''मैं आधुनिक शब्द का प्रयोग किसी ऐसे विज्ञान के लिए करूंगा जो स्वयं को किसी महा संभाषण द्वारा वैधता, किसी महावृत्तान्त जैसे आत्म की द्वंद्वात्मकता, अर्थ का निर्वचन, तार्किक या श्रमशील प्रमाता की मुक्ति या संपत्ति उत्पादन की प्रच्छन्न अपील द्वारा प्रदान करता है। यह ज्ञानोदय का वृत्तांत है जिसके तहत ज्ञान का नायक किसी अच्छे राजनीतिक नैतिक उद्देश्य, शाश्वत–शांति के लिए प्रयास करता है। मैं उत्तर–आधुनिकता को महावृत्तांतों के प्रति अविश्वास के रूप में परिभाषित करूंगा।''

लियोतार्ड की उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि उसे आधुनिकतावादी सिद्धांतों– हीगेल द्वारा प्रतिपादित आत्म की द्वंद्वात्मकता, कांट द्वारा प्रतिपादित तार्किक व श्रमशील प्रमाता की मुक्ति इत्यादि में विश्वास नहीं है। पेरी एंडरसन के अनुसार महावृत्तांत शब्द प्रारंभिक समाजवादी व साम्यवादी सामान्य कार्यक्रम के दौर में जब लियोतार्ड के लेखन में आया था, तब इसका स्पष्ट एवं एकमात्र आशय मार्क्सवाद से ही था। अतः लियोतार्ड अपनी उत्तर–आधुनिकता को मार्क्सवाद की आलोचना के रूप में भी देखता है।

टिप्पणी

लियोतार्ड का आधुनिकता से प्रमुख विरोध इस बात को लेकर है कि आधुनिकता इतिहास को निम्न मिथकों के सन्दर्भ में देखती है–

1. इतिहास को स्वतंत्रता की कहानी के रूप में जो फ्रांसीसी क्रांति द्वारा प्रजनित हुई।
2. इतिहास के मिथक को तार्किक/श्रमशील प्रमाता की स्व मुक्ति की प्रक्रिया के रूप में।
3. जर्मन ज्ञानोदय द्वारा प्रजनित (हीगेल प्रतिपादित) आदर्श की यथार्थ प्राप्ति के रूप में।

लियोतार्ड ने अपनी कृति 'दि पोस्ट मॉडर्न कंडीशन : ए रिपोर्ट ऑफ नॉलेज' (1984 ई.) में हीगेल एवं मार्क्स के इतिहास दर्शन की आलोचना प्रस्तुत की है। वह आधुनिकता के दो प्रमुख वाक्य 'मनुष्यता के लिए विश्व दृष्टि' और 'मानवता को समाजवाद की आवश्यकता है' पर अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इन दोनों वाक्यों पर अमल करने को लियोतार्ड ज्ञानोदय के सार्वभौमवाद में उलझना मानता है जो ऐसे महावृत्तांतों को जन्म देते हैं जिनकी प्रकृति अधिनायकवादी है। विश्व दृष्टि से लियोतार्ड का तात्पर्य हीगेल प्रतिपादित जर्मन आदर्शवाद से है। यह एक अधिनायकवादी प्रवृत्ति ही कही जाएगी कि उक्त कथनों को मनुष्यता एवं मानवता पर लादा जाए, इनमें वैयक्तिक स्वायत्तता का कोई महत्व नहीं है। ''मनुष्यता के लिए समाजवाद की आवश्यकता है'' इस वाक्य पर लियोतार्ड की प्रतिक्रिया है कि ''प्रत्येक स्थान पर राजनीतिक अर्थशास्त्र की समालोचना (मार्क्स की पूंजी का उपशीर्षक) और उसके सह–संबंधी अलगाये समाज की समालोचना का प्रयोग किसी न किसी प्रकार से व्यवस्था को संचालित करने में सहायकों के रूप में होता है। इस आलोचनात्मक आदर्श ने अंततः अपनी सैद्धांतिक साख खो दी..।'' इस प्रकार फूको के साथ–साथ लियोतार्ड आधुनिकता में निहित महावृत्तांतों, प्रचलित सिद्धांतों की आलोचना करते हैं। वे स्वयं कोई सिद्धांत एवं नियामक मूल्य प्रस्तुत नहीं करते। इस प्रकार उत्तर–आधुनिक द्वारा आधुनिक पूर्व को आधुनिकता की समस्याओं के हल के रूप में बारंबार रखा गया है।

उत्तर–आधुनिकतावाद पर आधारित रचनाएं

प्रख्यात इतिहासकार टायन्बी ने 1870 ई. के पश्चात तर्क निरपेक्ष चिंतन के अपनाए जाने वाले एवं उदार मानवतावाद के पतन को केंद्र में रखकर इतिहास लिखते हुए 1920 ई. में 'पोस्ट मॉडर्न' (उत्तर–आधुनिक) शब्द का प्रयोग किया। उसके बाद उत्तर–आधुनिकता पर काफी कुछ लिखा गया। 1922–23 में स्पेंगलर ने 'द डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट' दो खंडों में प्रकाशित की। इसी क्रम में आलविन टॉफलर ने 1971 में 'फ्यूचरशाक' का लेखन कर उत्तर–आधुनिकता को प्रतिपादित किया। टॉफलर ने ही 1981 में 'दि थर्ड वेव' एवं 1990 में 'पावर शिफ्ट' जैसी चिंतनपरक रचनाओं का सृजन किया। 50 वर्षों के उस रचनाकाल में आधुनिकता नीरस हुई एवं उत्तर–आधुनिकता स्थापित हुई।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर–आधुनिकता

भारत में उत्तर–आधुनिकता स्वतंत्रता पश्चात ही दृष्टिगोचर होती है। आज भारत में उत्तर–आधुनिकता के जो आयाम विकसित हो रहे हैं वे पाश्चात्य जगत से प्रेरित हैं। उत्तर–आधुनिकता दलितों, स्त्रियों एवं पिछड़ों को महत्व देती है और इनके समर्थन में

आंदोलन का मार्ग भी प्रशस्त करती है। उत्तर–आधुनिकता बताती है कि इतिहास को किसी विचारधारा, वृत्तांत एवं महावृत्तांत से बांधा नहीं जा सकता।

टिप्पणी

उत्तर–आधुनिकता और सामाजिक संरचना

उत्तर–आधुनिक सोच आधुनिक सोच से कहीं आगे होने के कारण परंपरागत सामाजिक सांचे एवं ढांचे का विखंडन करती है। उत्तर–आधुनिकता परंपरागत सामाजिक संरचना में विश्वास नहीं करती। भारत में प्रचलित जाति एवं वर्ण व्यवस्था में उत्तर–आधुनिकता विश्वास नहीं करती। उसके अनुसार इस संकुचित संरचना ने मानव के विकास को बाधित किया है। पूर्व प्रचलित सामाजिक संरचना को तोड़कर ही विकास संभव है। वर्णवादी व्यवस्था के साथ–साथ भारत की पुरुषवादी मानसिकता का भी उत्तर–आधुनिकता विरोध करती है, व नारीवाद का समर्थन करती है।

उत्तर–आधुनिकता और दलित इतिहास लेखन

भारतीय संविधान में सामाजिक समानता का उल्लेख किया गया है। यह दलितों के उत्थान से ही संभव है। वर्णव्यवस्था ने भारतीय समाज को कई जातियों में बांट कर वैमनस्य फैलाया है। उच्च जाति वालों ने निम्न जाति का एवं संपन्न वर्ग ने गरीब वर्ग का शोषण किया।

गौतम बुद्ध के बाद मध्यकालीन संतों ने दलित शोषण के खिलाफ आवाज उठाई। आधुनिक काल में ज्योतिबा फुले, नारायण गुरु एवं भीमराव अंबेडकर आदि ने दलित शोषण के खिलाफ आवाज उठाई। उपाश्रयी इतिहासकारों ने दलित इतिहास का लेखन आरंभ किया। उत्तर–आधुनिकतावादी भी दलित इतिहास लेखन को अपना रहे हैं।

उत्तर–आधुनिकता और नारी इतिहास लेखन

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही नारी की स्थिति दयनीय रही। उसे बाल विवाह, बहुविवाह, पर्दाप्रथा, देवदासी प्रथा एवं सतीप्रथा जैसी क्रूर प्रथाओं का सामना करना पड़ा। नारी को बचपन में पिता के युवावस्था में पति के एवं वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहना पड़ा। उन्नीसवीं सदी में नारी उद्धार हेतु आंदोलन चलाए गए। राजा राममोहनराय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर एवं महर्षि कर्वे आदि ने नारी उद्धार की दिशा में सराहनीय कार्य किए। महात्मा गांधी ने भारत में नारीवाद को बढ़ावा दिया। उनके द्वारा चलाए गए स्वाधीनता आंदोलनों में नारियों ने बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया। नारी शिक्षा पर आज अत्यधिक बल दिया जा रहा है। उत्तर–आधुनिकतावादी नारी इतिहास लेखन में सक्रिय हैं। दलित इतिहास लेखन की भांति आज नारीवादी इतिहास लेखन भी तीव्रता से हो रहा है।

अपनी प्रगति जांचिए

9. उत्तर आधुनिकतावादी उपागम का प्रणेता किसे माना जाता है?

   (क) माइकल फूको (ख) लियोतार्ड

   (ग) देरिदा (घ) ये सभी

10. इतिहास में उत्तर–आधुनिकतावादी उपागम का उद्‌भव कब से माना जाता है?

    (क) 18वीं शताब्दी (ख) 19वीं शताब्दी

    (ग) 20वीं शताब्दी (घ) इनमें से कोई नहीं

4.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

1. (ख)
2. (ग)
3. (क)
4. (ख)
5. (ग)
6. (क)
7. (ख)
8. (क)
9. (घ)
10. (ग)

4.8 सारांश

इतिहास में धार्मिक उपागम का अनुप्रयोग मध्ययुगीन ईसाई इतिहास की सर्वप्रमुख विशेषता है। जहां इतिहास लेखन की ग्रीको–रोमन परंपरा में बुद्धि एवं विवेक को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, वहीं ईसाई इतिहास की मध्ययुगीन परंपरा में धर्म को सर्वोपरि स्थान दिया गया। ईसाई इतिहासकारों ने विधर्मियों के इतिहास लेखन को शैतान की कृति कहकर इतिहास लेखन में ओल्ड टेस्टामेंट को सर्वोच्च स्थान दिया। संत पॉल को ईसाई इतिहास दर्शन का प्रतिपादक माना गया है। 'रोमंस' 5/12 में संत पॉल ने इतिहास को तीन भागों में बांटा है जिनके प्रतिनिधि क्रमशः आदम, मूसा और ईसा हैं। ईसाई अवधारणा के अनुसार रोमन साम्राज्य का उत्थान एवं पतन ईश्वरीय इच्छा का परिणाम है। ईसाई धर्म की उन्नति के लिए ही रोमन साम्राज्य का पतन हुआ।

प्राच्य संस्कृति विशारद अथवा प्राच्यविद् प्रायः उन यूरोपीय विद्वानों को कहा गया है जिन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के अध्ययन में रुचि ली। 18 वीं सदी से भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के प्रति यूरोपीय विद्वानों ने रुचि लेना आरम्भ किया। 15 वीं शताब्दी में यूरोप का भारत के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित हुआ जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न यूरोपीय विद्वान और मिशनरी एशियाई इतिहास एवं संस्कृति के प्रति आकर्षित हुए। प्रारंभिक दौर में यूरोपीय विद्वान का ध्यान भारत के विशेष संदर्भ में विशेषतः संस्कृत एवं फारसी भाषा के अध्ययन की ओर आकृष्ट हुआ। अठारहवीं शताब्दी के अंत में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना के साथ ही व्यवस्थित तौर पर प्राचीन भारतीय संस्कृत ग्रंथों, मुख्यतः वैदिक ग्रंथों के अध्ययन और अनुवाद के कार्य में तेजी आई।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा इतिहास के साम्राज्यवादी उपागम को अपनाने का मूलभूत उद्देश्य भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को स्थायित्व एवं दृढ़ता प्रदान करना था। इतिहास के साम्राज्यवादी उपागम के अंकुर इतिहास के प्राच्यवादी उपागम में मौजूद थे। रोमिला थापर के अनुसार 'यह अशंतः प्राच्यविद्या का एक पहलू था जिसमें

ज्ञान के उपयोग को शक्ति का एक स्वरूप समझने का सिद्धांत अंतर्निहित है। एडवर्ड सेड द्वारा किए गए अध्ययनों की तरह प्राच्य विज्ञान के हाल के अध्ययनों ने भी इस पहलू को दर्शाने का प्रयास किया है।

टिप्पणी

आधुनिक भारतीय इतिहास के लेखन में भी साम्राज्यवादी दृष्टिकोण ही हावी रहा। लार्ड मिंटो आदि वायसरायों की घोषणाओं में साम्राज्यवादी दृष्टिकोण उभरकर सामने आया। इतिहास के साम्राज्यवादी उपागम को वेलेन्टाइन शिरोल, रॉकेट समिति की रिपोर्ट, वर्नी लाभेट एवं मांटेस्क्यू चेम्सफोर्ड की रिपोर्ट द्वारा सुनियोजित रूप से सामने रखा गया। मांटफोर्ड रिपोर्ट के लेखकों ने भारत में अंग्रेजी राज को ही भारतीय राष्ट्रीय जागृति का कारक माना।

इतिहास के साम्राज्यवाद उपागम के प्रत्युत्तरस्वरूप इतिहास का राष्ट्रवादी उपागम अस्तित्व में आया। इतिहास के राष्ट्रवादी उपागम के पीछे तर्क दिया गया कि यदि अंग्रेज साम्राज्यवाद के पक्ष में भारतीय इतिहास का दुरुपयोग कर सकते हैं तो हम भी राष्ट्रवाद के पक्ष में इसका उपयोग कर सकते हैं। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने साम्राज्यवादी इतिहासकारों मुख्यतः जेम्स मिल एवं विसेंट स्मिथ द्वारा प्रतिपादित विचारों का, ब्रिटिश राजतंत्र प्रणाली की श्रेष्ठता, कुशाण एवं गुप्तों के बीच भारतीय इतिहास का अंधकार युग था– आदि का प्रतिकार किया। साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने जहां भारतीय इतिहास की छवि को धुंधला करने के प्रयास किए थे, इसके ठीक विपरीत राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को गौरवान्वित करन के प्रयास किए थे।

इतिहास का मार्क्सवादी उपागम स्वयं कार्ल मार्क्स की विश्व इतिहास को एक महत्वपूर्ण देन है। कार्ल मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या कर वर्ग संघर्ष का सिद्धांत प्रतिपादित किया। मार्क्स प्रतिपादित इतिहास की व्याख्या शीघ्र ही लोकप्रिय हुई और विश्व में मार्क्सवादी इतिहास लेखन का आरंभ हुआ।

इतिहास के उपागम के रूप में मार्क्स द्वारा प्रतिपादित इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मार्क्स उत्पादन की शक्तियों को इतिहास के विकास का निर्णायक तत्व मानता है। मनुष्य के क्रियाकलाप आर्थिक एवं भौतिक कारकों द्वारा नियमित होते हैं। मार्क्स मानव को आर्थिक शक्तियों के दास के रूप में देखता है। मार्क्स प्रतिपादित ऐतिहासिक भौतिकवाद के दो मूल सिद्धांत हैं। प्रथम यह कि प्रकृति विकास की ही तरह सामाजिक विकास के भी कुछ निश्चित नियम होते हैं। द्वितीय यह कि सामाजिक विकास के नियमों के निर्धारण में भौतिक एवं आर्थिक शक्तियों की भूमिका प्रमुख होती है। किसी भी देश एवं समाज में जैसी भौतिक परिस्थितियां होंगी, समाज का सामाजिक–राजनीतिक संगठन, धर्म, कानून, नैतिक मूल्य एवं मान्यताएं तद्नुसार ही होंगी। इस प्रकार इतिहास की दृष्टि से मार्क्स की इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या अत्यंत महत्वपूर्ण है।

20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इतिहास लेखन का एक नवीन संप्रदाय उभरकर सामने आया है जिसे उपाश्रयवादी संप्रदाय कहा जाता है। चूंकि इतिहास के उपाश्रयी उपागम या यूं कहें कि उपाश्रयी इतिहासकारों के अध्ययन की प्रमुख विषय–वस्तु निम्नवर्गीय अध्ययन के इर्द–गिर्द घूमती है, अतः कतिपय विद्वान इसे निम्नवर्गीय अध्ययन भी कहते हैं। इतिहास की व्याख्या का यह तरीका (इतिहास नीचे से) के नाम से भी जाना जाता है। इसे जनता का इतिहास लेखन भी कहा जाता है।

टिप्पणी

उपाश्रयी (सबाल्टर्न) शब्द इटली के प्रख्यात मार्क्सवादी विचारक अंतोनियो ग्राम्शी की रचनाओं से लिया गया है। भारत में उपाश्रयी इतिहास लेखन के प्रमुख इतिहासकार एवं 'सबाल्टर्न स्टडीज' का एक प्रमुख संस्थापक रणजीत गुहा को माना जाता है। 'सबाल्टर्न स्टडीज' के खंड एक एवं खंड दो का संपादन रणजीत गुहा द्वारा ही किया गया था। इन दोनों खंडों के सभी 14 लेख भारतीय समाज के दलित वर्गों, काश्तकारों, आदिवासियों के बारे में हैं। एक लेख श्रमिकों से भी संबंधित है। प्रथम खंड में गुहा ने जो भूमिका और प्रस्तावना लेख लिखे हैं, वे निम्नवर्ग के प्रसंगों और अंतोनियो ग्राम्शी के आह्वानों से ओत–प्रोत हैं।

इतिहास में उत्तर–आधुनिकतावादी उपागम का उद्भव 20वीं शताब्दी के चतुर्थांश से माना जा सकता है। फ्रांस के माइकल फूको, लियोतार्ड, देरिदा एवं ब्रादील इत्यादि विद्वानों को उत्तर–आधुनिकता के सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रणेता के रूप में समझा गया है। ज्यों लियोतार्ड ने 1984 ई. में "The Post-modern Condition : A Report on Knowledge के माध्यम से उत्तर–आधुनिकता के प्राथमिक बिंदु पथ की कलाओं से सामाजिक सिद्धांत, ज्ञानशास्त्र और तकनीकी विज्ञानों की ओर ले जाते हुए समकालीन फ्रांसीसी चिंतन की परस्पर आच्छादित प्रवृत्तियों को एक विशिष्ट नाम दिया। इतिहास के उत्तर–आधुनिक उपागम में तार्किकता, ज्ञानोदय, आधुनिकता, पाठीयता एवं साम्यवाद इत्यादि के बारे में व्यापक सामान्यीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है एवं वे तार्किक समालोचना की प्रक्रिया को अपनाते हैं। उत्तर–आधुनिकता आधुनिकता पूर्व को आधुनिकता की समस्याओं के उत्तर के रूप में प्रस्तुत करती है। यही सबाल्टर्नवादियों, स्वदेशीवादियों, दक्षिणपंथी परिवर्तन कामियों और वैज्ञानिक अतार्किकों के लिए उत्तर–आधुनिकता का आकर्षण है।

उत्तर–आधुनिकतावादियों ने मार्क्सवाद को आधुनिकता के अनेक महाव्याख्यानों में से एक मानते हुए उसकी आलोचना प्रस्तुत की है। स्कूल ऑफ एनाल्स की तरह उत्तर–आधुनिकों को भी व्यापक सिद्धांतों से, जिन्हें वे महाव्याख्यान कहते हैं, सख्त विरोध है। मार्क्स द्वारा प्रतिपादित इतिहास की गंतव्य निर्धारित प्रणाली उत्तर–आधुनिकों की समालोचना का प्रमुख मुद्दा है। मार्क्स जहां इतिहास की मुख्य धारा से मुखातिब है, वहीं उत्तर–आधुनिकों ने जो भी हाशिए पर है उस पर बल दिया है।

4.9 मुख्य शब्दावली

- **उपागम** : दृष्टिकोण।
- **समसामयिक** : जो एक ही समय में हुए हों या विद्यमान हो।
- **तत्युगीन** : उसी युग का।
- **इतिहासविद** : इतिहास का जानकार।
- **सत्यान्वेषण** : सत्य की खोज।
- **पाश्चात्य** : पश्चिमी देशों से संबंधित।
- **विद्यमान** : उपस्थित।
- **दृष्टिगोचर** : दिखाई देना।
- **प्राच्यवादी** : पूर्वी देशों से संबंधित।

टिप्पणी

4.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. वर्ग संघर्ष के सिद्धांत पर प्रकाश डालिए।
2. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत क्या है? परिभाषित कीजिए।
3. वैज्ञानिक समाजवाद पर प्रकाश डालिए।
4. प्राचीन भारतीय इतिहास के मार्क्सवादी उपागम लेखन से आप क्या समझते हैं?
5. उपाश्रयी एवं मार्क्सवादी उपागम में अंतर लिखिए।
6. उत्तर–आधुनिक दौर से आप क्या समझते हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास के मार्क्सवादी उपागम की विवेचना कीजिए।
2. इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या पर प्रकाश डालिए।
3. भारत के मार्क्सवादी इतिहास लेखन का वर्णन कीजिए।
4. उपाश्रयी इतिहास के उपागम की व्याख्या कीजिए।
5. इतिहास के उत्तर–आधुनिक उपागम का वर्णन कीजिए।
6. फूको एवं नीत्शे द्वारा प्रचलित इतिहास की आलोचना पर प्रकाश डालिए।

4.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. कार ई.एच., इतिहास क्या है, अनुवाद अशोक चक्रधर, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1993.
2. चौबे झारखंडे, इतिहास दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1999.
3. थापर रोमिला, इतिहास की पुनर्व्याख्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991.
4. पांडेय गोविंद चंद्र, इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धांत, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1993.
5. पांचाल एवं बघेला, इतिहास के सिद्धांत एवं पद्धतियां, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर.
6. बुद्ध प्रकाश, इतिहास दर्शन, हिंदी समिति, प्रयाग, 1962.
7. राय कौलेश्वर, इतिहास दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, 1999.
8. लोहिया राममनोहर, इतिहास चक्र, लहर प्रकाशन, इलाहाबाद, 1935.
9. वर्मा लालबहादुर, इतिहास के बारे में, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000.
10. शर्मा रामविलास, इतिहास दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995.
11. सांकृत्यायन राहुल, अतीत से वर्तमान, विद्या मंदिर प्रेस, वाराणसी, 1956.
12. श्रीवास्तव बी.के., इतिहास लेखन : अवधारणा, विधाएं एवं साधन, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा, 2008.

इकाई 5 इतिहास के वृहत् सिद्धांत

टिप्पणी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 इतिहास का चक्रीय एवं ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धांत
  5.2.1 इतिहास का चक्रीय सिद्धांत
  5.2.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद : इतिहास का एक वृहत् सिद्धांत
5.3 इतिहास का सामाजिक एवं तुलनात्मक सिद्धांत
  5.3.1 इतिहास का सामाजिक विकास
  5.3.2 तुलनात्मक सिद्धांत
5.4 संरचनात्मक एवं वैश्वीय सिद्धांत
  5.4.1 संरचनात्मक सिद्धांत
  5.4.2 वैश्वीय सिद्धांत
5.5 पारिस्थितिकीय एवं उत्तर–आधुनिकतावादी सिद्धांत की समालोचनाएं
  5.5.1 इतिहास पर जलवायु संबंधी कारकों का प्रभाव
  5.5.2 उत्तर–आधुनिकतावादी सिद्धांत की समालोचनाएं
5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

इतिहास के लेखन एवं अध्ययन में विज्ञान की भांति ही विभिन्न इतिहासकारों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इतिहास की प्रमुख विषयवस्तु मनुष्य, समाज, संस्कृति एवं सभ्यताएं हैं। अतः इतिहास को गति एवं दिशा देने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न व्याख्याएं एवं सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं। इतिहास का चक्रीय सिद्धांत अपने विभिन्न स्वरूपों में भारत सहित, ग्रीको–रोमन एवं ईसाई परंपरा में विद्यमान है। इस अवधारणा का मूल यह है कि मानव इतिहास एक पूर्व निर्धारित परियोजना के तहत अग्रसर है।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या अर्थात ऐतिहासिक भौतिकवाद का प्रणेता कार्ल मार्क्स था। ऐतिहासिक भौतिकवाद को मार्क्स ने इतिहास की गति का प्रमुख सिद्धांत माना। इतिहास के अध्ययन में संरचनात्मक एवं पारिस्थितिकीय सिद्धांत का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

इस इकाई में इतिहास के चक्रीय सिद्धांत, ऐतिहासिक भौतिकवाद, संरचनात्मक इतिहास एवं पारिस्थितिकीय इतिहास की विस्तृत एवं तथ्यपरक विवेचना प्रस्तुत की गई है।

टिप्पणी

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- इतिहास के चक्रीय एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद सिद्धांत की व्याख्या कर पाएंगे;
- इतिहास के सामाजिक एवं तुलनात्मक सिद्धांत को समझ पाएंगे;
- इतिहास के संरचनात्मक एवं वैश्वीय सिद्धांत की समीक्षा कर पाएंगे;
- इतिहास के पारिस्थितिकीय एवं उत्तर आधुनिकतावादी सिद्धांत की समालोचना को समझ पाएंगे।

5.2 इतिहास का चक्रीय एवं ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धांत

इतिहास के चक्रीय एवं ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धांतों को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

5.2.1 इतिहास का चक्रीय सिद्धांत

भारतीय एवं ग्रीको–रोमन परंपरा में इतिहास को एक निरंतर चक्र के रूप में माना है। चक्रीय अथवा चक्रवादी का अभिप्राय है कि चक्रवत घूमते हुए जहां से प्रारंभ हुए थे, वहीं पुनः वापसी। विभिन्न संस्कृतियों में इतिहास के विभिन्न युगों की परिकल्पना की गई है। जो एक के बाद एक आते हैं उनकी गति चक्रीय है। भारतीय अवधारणा में चार युगों– कृत, त्रेता, द्वापर एवं कलयुग की परिकल्पना मिलती है। ग्रीको–रोमन अवधारणा में चार युगों को धातुओं के नाम–स्वर्ण युग, रजत युग, कांस्य युग एवं लौह युग पर आधारित किया गया है। युगों के चक्रात्मक क्रम के इस सिद्धांत का प्रमुख आशय यह है कि जिस प्रकार रात के बाद दिन एवं दिन के बाद रात आते हैं, जिस प्रकार सुख के बाद दुःख एवं दुःख के बाद सुख आते हैं, एवं जिस प्रकार एक ऋतु के पश्चात दूसरी क्रमानुसार आती है, ठीक उसी प्रकार ये विभिन्न युग एक के बाद एक क्रमानुसार आते हैं और इतिहास की गति को नियमित करते हैं।

भारतीय युगचक्रवादी सिद्धांत

भारतीय युगचक्रवादी सिद्धांत प्राचीन भारतीय ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्म परंपराओं में देखने को मिलता है। सृष्टि की उत्पत्ति एवं विनाश की अवधारणा अत्यंत प्राचीन है जिसका अस्तित्व अथर्ववेद से भी प्रमाणित होता है। सम्भवतः ब्राह्मण साहित्य में यही अवधारणा युगचक्रवादी सिद्धांत के साथ संबद्ध हो गई। ब्राह्मण साहित्य में निम्न चार युगों की अवधारणा मिलती है–

कृत युग : कृत युग को मानव इतिहास का स्वर्णिम युग माना गया है। इस युग का समाज संपन्नता, सुख एवं हर तरह के वैभव से संपन्न था एवं लोगों में पारस्परिक सौहार्द्र व्याप्त था।

त्रेता युग : कृत युग की अपेक्षा युगचक्र के इस द्वितीय चरण त्रेता युग में मानवीय गुणों एवं समाज के वैभव के साधनों में अभाव का आभास परिलक्षित होता है।

टिप्पणी

द्वापर युग : युगचक्रवादी सिद्धांत के इस तीसरे चरण द्वापर युग में मानवीय दुःख का आरंभ दृष्टिगोचर होता है। इसी युग से मानव को विभिन्न प्रकार के संघर्षों से जूझना पड़ता है,इसीलिए इसे संघर्ष का युग भी माना गया है। इस युग में मानव रोग–व्याधि से पीड़ित होने लगता है। समाज में विभिन्न प्रकार के ह्रास परिलक्षित होते हैं और इसी युग में समाज की निरंतर बिगड़ती हुई स्थिति को नियंत्रित करने हेतु विभिन्न नियम एवं संस्कारों का प्रतिपादन किया गया। इसी कारण इस युग को संघर्ष युग के साथ–साथ संस्कार एवं नियम–प्रधान युग भी माना गया है।

कलयुग : भारतीय युगचक्रवादी सिद्धांत का अंतिम चरण कलियुग है। द्वापर युग में मानव के जिस दुःख का आरंभ हुआ था, यह दुःख कलियुग में पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है। दुःख, निराशा, अन्याय एवं अन्य समस्याओं से जकड़ा मनुष्य धर्म की उपेक्षा करने लगता है। समाज में स्वार्थ एवं वैमनस्य बढ़ जाता है।

भारतीय युगचक्रवादी सिद्धांत के उपर्युक्त चारों युगों के संबंध में निम्न मान्यताएं रही हैं–

1. प्रत्येक अनुवर्ती युग में मोक्ष–प्राप्ति के साधन सरल होते गए हैं। कृत युग में सुख एवं मोक्ष–प्राप्ति के लिए अत्यधिक कठिन तप–साधना करनी होती थी। इसके विपरीत कलयुग में केवल ईश्वर का नाम भर लेने से सुख एवं मोक्ष की प्राप्ति संभव है।
2. ऐसी मान्यता है कि प्रत्येक अनुवर्ती युग में धर्म का ह्रास हुआ है। धर्म की तुलना एक गाय से की गई है जो कृत युग में अपने चारों पैरों पर खड़ी रहती है। धर्म की तरह प्रत्येक अनुवर्ती युग में इसके एक पैर का ह्रास होता है। त्रेता युग में यह तीन पैर पर, द्वापर युग में दो पैर पर एवं कलयुग में मात्र एक पैर खड़ी रहती है।
3. ब्राह्मण साहित्य में चारों युग जुए में फेंके जाने वाले पासे के चार पक्षों के अनुरूप हैं। सर्वाधिक उत्तम प्रक्षेपण चार बिंदुओं से अंकित पक्ष है जो कृत युग का परिचायक है। तीन बिंदुओं का प्रक्षेपण त्रेता, दो बिंदुओं का द्वापर एवं एक बिंदु का प्रक्षेपण कलियुग का परिचायक है।

भारतीय परंपरा के अनुसार, इन चारों युगों को मिलाकर एक महायुग की रचना होती है एवं ये महायुग एक के बाद एक निरंतर आते हैं। एक सहस्त्र महायुगों को मिलाकर एक कल्प बनता है। भारतीय अवधारणा में कल्प सृष्टि के उद्‌भव से लेकर सृष्टि के विनाश तक का संपूर्ण समय माना गया है। इस युगचक्रवादी सिद्धांत के संबंध में डॉ. राममनोहर लोहिया ने लिखा है, '' इतिहास का यह दृष्टिकोण उत्थान और पतन दोनों को मानता है। यह मनुष्य की जिंदगी से मिलता मालूम पड़ता है। जिसमें लोग अपनी लड़ाई में बुराई से जीतते हैं, समानता और शक्ति, अच्छाई या सच्चाई या सुंदरता की चोटियों पर पहुंचते हैं और जब आत्मा थक जाती है, वे फिर बिखराव और कमजोरी और उद्देश्यहीनता में गिरने लगते हैं और फिर अंधेरे के बाद की अनिवार्य रोशनी के जरिये आत्मा खिलती है और फिर उठना मुमकिन होता है।''

ग्रीको–रोमन युगचक्रवादी सिद्धांत

ग्रीको–रोमन युगचक्रवादी सिद्धांत यूनानी कवि हेसिओड की देन है। हेसिओड ने धर्मशास्त्र में पर्याप्त अभिरुचि प्रदर्शित करते हुए देवों के जन्म और मानवों के साथ

टिप्पणी

उनके संबंध का उल्लेख किया है। उसने धातुओं के नाम पर चार युगों की कल्पना निम्नानुसार की–

स्वर्ण युग– इस युग में स्वर्ग में क्रोनोस का शासन था। मनुष्य देवताओं की तरह कर्म करते थे। पृथ्वी स्वतः मनुष्य को सभी उत्तम वस्तुएं प्रदान करती थी।

रजत युग– स्वर्ण युग की तुलना में रजत युग में मनुष्य की स्थिति में गिरावट आई। देवताओं की आराधना छोड़कर मनुष्य संघर्ष करता हुआ अवनति की ओर अग्रसर हुआ।

कांस्य युग– इस युग के मनुष्य के भवन एवं अस्त्र–शस्त्र कांस्य निर्मित थे। मनुष्य शक्तिशाली तो था मगर उसमें दया का भाव नहीं था। इस युग में पारस्परिक संघर्ष एवं वैमनस्य व्याप्त था।

लौह युग– हेसियोड ने कांस्य युग एवं लौह युग के बीच अथवा लौह युग की प्रारंभिक अवस्था में एक ऐसे युग का उल्लेख किया है जिसमें वीर पुरुषों का अस्तित्व था। ये वीर पुरुष अपने पूर्वजों की तुलना में अधिक वीर एवं न्यायप्रिय थे। इन्हीं वीर पुरुषों ने ट्राय एवं थेबीज के युद्धों में भी भाग लिया था एवं इनके बाद लौह युग आया। इस युग में मानव को लोहे का ज्ञान था। यह युग दुःखों से परिपूर्ण था।

ग्रीको–रोमन परंपरा के इस युगचक्रवादी सिद्धांत को कई विद्वानों ने मान्य किया एवं समय–समय पर इसमें संशोधन भी हुए।

ईसाई परंपरा में युगचक्रवादी सिद्धांत

मध्य युग में ईसाई परंपरा में युग सिद्धांत को देखा जा सकता है। संत आगस्टाइन ने देव नगर और पाप नगर के विरोधाभास का प्रतिपादन करते हुए इतिहास की व्याख्या की। उनके अनुसार ये दोनों नगर साथ–साथ चलते हुए विभिन्न युगों से गुजरे हैं। इस प्रकार आगस्टाइन ने मनुष्य के इतिहास में सात अवस्थाओं (युगों) का उल्लेख किया है। उसके अनुसार पांच युग बीत चुके हैं, छठा समाप्ति पर है एवं सातवां आने वाला है। आगस्टाइन के अनुसार सातवें युग में ईसा मसीह मृत और जीवित का न्याय करने के लिए अवतार लेंगे, पाप समाप्त हो जाएगा और इसके बाद के युग में व्यक्ति पापों से पूर्णतः मुक्त हो जाएगा और ईश्वर–आराधना में रत हो जाएगा। संत आगस्टाइन से प्रभावित होकर स्पेनवासी पादरी पालस आरोसियंस (418 ई.) ने अपनी कृति 'हिस्टोरिया' को सात खंडों में विभाजित किया जो कि सात युगों के परिचायक हैं। इस प्रकार मध्ययुगीन ईसाई लेखकों ने युग सिद्धांत पर पर्याप्त चर्चा की है।

ईसाई इतिहास दर्शन का उत्कर्ष फ्रैंच लेखक जाक बेबिन बोसुए (1627–1704 ई.) की कृतियों में देखा जा सकता है। उसने अपनी कृति 'दिस्कोर्स स्यूर लू इत्स्वार यूनिवर्सल' (विश्व इतिहास का निबंध) में आगस्टाइन द्वारा प्रतिपादित सात युगों की अवधारणा को स्वीकार किया है। उसके अनुसार, प्रथम युग आदम से हौआ तक है, द्वितीय युग हौआ से अब्राह्य के काल तक है। जिसमें जलप्लावन की घटना घटित हुई एवं मनुष्य प्रथम बार दंडित हुआ एवं इसी युग में रक्तरंजित विजयों का युग भी आरंभ हुआ। चतुर्थ युग में मोजेज से लेकर जेरूसलम में सोलोमन द्वारा 'मंदिर' के निर्माण तक का काल आता है। पांचवां युग बेवीलोन की दासता तक चलता है एवं छठा युग साइरस से जीसस तक चलता है और सातवां युग जीसस के जन्म से लेकर वर्तमान तक आता है। गोविन्द चंद्र पांडेय के अनुसार, ''बोसुए के इस काल विभाजन से स्पष्ट है कि उसकी दृष्टि अतीत की ओर उन्मुख थी और उसने भविष्य में स्थित उस युग

विशेष की परिकल्पना नहीं प्रस्तुत की जिसमें सभी लोग सुख एवं शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करेंगे, जबकि क्राइस्ट द्वारा सभी शत्रु पराभूत हो जाएंगे और तब लोग ईश्वर का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर सकेंगे।''

टिप्पणी

आधुनिक युग में चक्रीय सिद्धांत

आधुनिक युग में इतिहास के चक्रीय सिद्धांत के साथ मुख्यतः विको, हर्डर, स्पेंगलर एवं टायन्बी के नाम जुड़े हुए हैं। इतिहास की युगचक्रवादी व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रमुख श्रेय ओसवाल्ड स्पेंगलर एवं आरनोल्ड टायन्बी को जाता है।

जियाम्बत्तिस्ता विको (1608–1644) का चक्रीय सिद्धांत–विको इटली का एक दार्शनिक एवं इतिहासकार था। उसे आधुनिक इतिहास दर्शन का संस्थापक माना जाता है। आधुनिक इतिहास के लिए विको को एक उल्लेखनीय योगदान उसके द्वारा प्रतिपादित इतिहास का चक्रीय सिद्धांत भी है। इसके अनुसार प्रत्येक राष्ट्र अथवा मानव सभ्यता विकास के कुछ निश्चित चरणों से गुजरती है। ये चरण हैं– जन्म, परिपक्वता, पराभव और पतन। उक्त सभी चरणों के भिन्न–भिन्न रीति–रिवाज, परंपराएं,कानून अर्थव्यवस्था एवं साहित्य होते हैं। विको का यह भी मानना था कि इतिहास के कुछ कालों का अथवा युगों का एक सामान्य स्वभाव था जिनकी अन्य युगों में पुनरावृत्ति संभव है। इस तारतम्य में विको उदाहरण देते हुए बताता है कि यूनानी इतिहास के होमर काल एवं मध्य युग के यूरोप में उक्त सामान्य सादृश्यता दिखाई पड़ती है। अतः विको ने इन दोनों ही युगों को 'हीरोइक युग' कहा है।

इन दोनों हीरोइक युगों में विको ने कुछ समानताएं देखीं, जैसे–योद्धा–कुलीन तंत्र के हाथ में प्रशासन का होना, कृषि आधारित अर्थव्यवस्था, नैतिकता का आधार युद्ध, वैयक्तिक शक्ति एवं गाथा–काव्य आदि। विको के अनुसार, मानव इतिहास का प्रथम चरण देवों के युग का था। जिसमें गैर–ईसाइयों को विश्वास था कि वे दैवी योजना के अंतर्गत रहते हैं जिसमें प्रत्येक घटना शकुनों और देववाणियों से संचालित होती है। दूसरा चरण नायकों का है जिसमें प्रतिष्ठित कुलीन तंत्र–योद्धा वर्ग प्रभावशाली बना। इन नायकों की शक्ति का स्रोत दैवीय था। इनकी भाषा आलंकारिक एवं प्रतीकात्मक थी। जन–साधारण बिना किसी प्रतिरोध के आंख बन्द कर इनके आदेशों का पालन करते थे। विको का नायकों का यही युग ऊपर वर्णित 'हीरोइक युग' था।

विको के अनुसार, प्रत्येक 'हीरोइक युग' के पश्चात 'क्लासिक युग' आता है। जिसमें व्यक्ति एक दूसरे को समान समझते हैं, कल्पना का स्थान विवेक लेता है, गाथा काव्य के स्थान पर गद्य साहित्य का सृजन होता है। अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि के स्थान पर उद्योग होते हैं एवं नैतिकता का आधार भी युद्ध न होकर शांति होती है। लोकप्रिय सरकारों की स्थापना होती है जो बाद में राजतंत्र का रूप लेती हैं।

क्लासिक युग के पश्चात आगामी चरण में पतन का युग आता है जिसमें सृजनात्मक शक्ति का ह्रास हो चुका होता है। विको का मानना था कि इतिहास का चक्रीय सिद्धांत एक वृत्त न होकर सर्पिल आकार का है क्योंकि इतिहास अपने आपको कभी दुहराता नहीं है। मानव सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण की अपनी विशिष्ट प्रकार की विशेषताएं, यथा– आचार–व्यवहार, कानून, अर्थव्यवस्था, साहित्य एवं कला होती हैं।

ओसवाल्ड स्पेंगलर (1880–1936 ई.) का चक्रीय सिद्धांत– ओसवाल्ड स्पेंगलर का जन्म 1880 ई. में ब्लेंकनबर्ग में हुआ था। म्यूनिख, बर्लिन तथा हेल

टिप्पणी

विश्वविद्यालयों में स्पेंगलर ने गणित एवं प्राकृतिक विज्ञानों का अध्ययन किया था। स्पेंगलर की सर्वप्रथम कृति 'पश्चिम का पतन' है। स्पेंगलर इतिहास को शाश्वत मानता है जिसमें विभिन्न संस्कृतियों का उत्थान–पतन होता रहता है। प्रत्येक संस्कृति का अपना विशिष्ट स्वभाव होता है एवं इन संस्कृतियों की आयु निश्चित होती है। स्पेंगलर विश्व इतिहास को रेखीय (Linear) आकार में कल्पित नहीं मानता जिसके अनुसार इतिहास को प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक काल में विभाजित किया जाता है।

स्पेंगलर विश्व इतिहास को महान संस्कृतियों का एक खेल अथवा नाटक मानता है। इस खेल अथवा नाटक में प्रत्येक संस्कृति स्वमेव ही विकसित होती है। फूलों की भांति ये संस्कृतियां बिना किसी उद्देश्य के साथ बढ़ती हैं। स्पेंगलर के अनुसार, प्रत्येक संस्कृति एक जैव इकाई के समान है जिसमें जीवन चक्र देखे जा सकते हैं। स्पेंगलर ने लिखा है कि संस्कृतियां जैविक हैं तथा विश्व इतिहास उनकी सामूहिक आत्म कथाएं हैं जिसमें संस्कृतियां जन्म लेती हैं, बढ़ती हैं और अपनी नियति को पूरा करते हुए नष्ट हो जाती हैं अर्थात् प्रत्येक संस्कृति का बचपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है। जिस प्रकार वृक्ष पर पत्तियां लगती हैं, फूल खिलते हैं या उपशाखाओं में उनका विकास होता है, ठीक उसी प्रकार संस्कृतियों में जातियां, भाषाएं, भू–प्रदेश आदि विकसित एवं परिपक्व होते हैं।

स्पेंगलर के अनुसार, प्रत्येक संस्कृति का आरंभ प्रारंभिक समाजों की बर्बरता से होता है, कालांतर में जिसके तहत विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं, कला तथा विज्ञान इत्यादि का विकास होता है। यह विकास प्रारंभ में सामान्य होता है एवं आगामी युगों में विकास के विविध क्षेत्रों में उत्कृष्टता परिलक्षित होती है। तत्पश्चात संस्कृति की पतन अवस्था दृष्टिगोचर होती है। जिसमें सर्वत्र विकृति दिखाई पड़ने लगती हैं। एवं संस्कृति की सृजनशीलता समाप्त हो जाती है और अंततः संस्कृति नष्ट हो जाती है। इतिहास में जितनी संस्कृतियां उभरी हैं, उनको स्पेंगलर ने मुख्यतः आठ बताया है। ये आठ संस्कृतियां हैं– मिस्त्र, बेबीलोनिया, भारत, चीन, ग्रीको–रोमन, अरब, मैक्सिको एवं पाश्चात्य। स्पेंगलर इन सभी संस्कृतियों के युगों के चक्र को निश्चित मानता है। इनमें से प्रत्येक संस्कृति ने एक काल में से दूसरे काल में जाने के लिए लगभग समान समय लिया है।

5.2.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद : इतिहास का एक वृहत् सिद्धांत

कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धांत को विश्व के एक वृहत् ऐतिहासिक सिद्धांत के रूप में जाना जाता है। इतिहास के अन्य सिद्धांतों की तुलना में मार्क्स द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक भौतिकवाद को विश्व स्तर पर अधिक प्रमुखता मिली। मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा प्रख्यात दार्शनिक हीगेल की द्वंद्वात्मक पद्धति से ली।

हीगेल के आदर्शवादी द्वंद्ववाद का मार्क्स द्वारा द्वंद्वात्मक भौतिकवाद में परिवर्तन

हीगेल यह मानकर चलता है कि समाज की प्रगति प्रत्यक्ष रूप से न होकर टेढ़े–मेढ़े तरीके से हुई है। जिसके तीन अंग हैं–वाद, प्रतिवाद एवं संवाद।

हीगेल परिवार से राज्य के विकास को एक द्वन्द्व के रूप में देखता है। उसके अनुसार परिवारवाद है (जहां पारस्परिक प्रेम व्याप्त होता है) चूंकि परिवार मानव की

टिप्पणी

आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु छोटा है। अतः इसके प्रतिवाद में समाज का जन्म होता है (जहां स्वार्थ है और आपसी वैमनस्य एवं संघर्ष व्याप्त है) और इनके संवाद से राज्य की उत्पत्ति होती है। हीगेल मानता है कि राज्य की उत्पत्ति समाज के पारस्परिक संघर्षमय तथा विरोधी तत्वों को नियमित एवं नियंत्रित करने की आवश्यकता के फलतः होती है। वह राज्य को साधक न मानकर साध्य मानता है। वह राज्य की भी तीन अवस्थाएं व्यवस्थापिका (वाद), कार्यपालिका (प्रतिवाद) एवं संविधान (संवाद) मानता है। इस प्रकार हीगेल व्यक्ति को राज्य का पूर्णतः दास अथवा साधन मात्र मानता है। वस्तुतः हीगेल का यह द्वंद्व एक आदर्श राज्य के लिए है, अतः इसे आदर्शवादी द्वंद्ववाद कहा गया है।

मार्क्स हीगेल द्वारा प्रतिपादित द्वंद्ववाद को संशोधित करता है। वह आदर्शवाद को भौतिकवाद द्वारा विस्थापित करता है। जहां हीगेल के द्वंद्वात्मक सिद्धांत का प्रमुख आधार विचार है, वहीं मार्क्स विचार के स्थान पर भौतिक पदार्थ को अपने सिद्धांत का प्रमुख आधार मानता है, इसीलिए मार्क्स का सिद्धांत द्वंद्वात्मक भौतिकवाद कहलाता है। मार्क्स के इस सिद्धांत को प्लेखानोव ने 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' एवं एंगेल्स ने सर्वप्रथम इसे 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' की संज्ञा दी।

मार्क्स अपने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को इतिहास के क्षेत्र में लागू कर ऐतिहासिक भौतिकवाद के तहत यह साबित करना चाहता है कि उत्पादन के साधन के फलस्वरूप समाज में उत्पन्न द्वंद्व इतिहास को गति एवं दिशा प्रदान करता है। मार्क्स अपने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद द्वारा यह प्रमाणित करना चाहता है कि पूंजीवाद के पश्चात द्वंद्व के माध्यम से किस प्रकार समाजवादी समाज की स्थापना होगी।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या : ऐतिहासिक भौतिकवाद

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के ही आधार पर मार्क्स द्वारा इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत की गई जो इतिहास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। मार्क्स ने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की सहायता से अपने समाजवाद को एक वैज्ञानिक निश्चयात्मकता प्रदान की और उसका प्रयोग ऐतिहासिक तथा सामाजिक विकास की व्याख्या प्रस्तुत करने में किया। इतिहास की द्वंद्वात्मक भौतिकवादी व्याख्या को उसने ऐतिहासिक भौतिकवाद या इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की संज्ञा दी। इस संबंध में वेबर ने अपनी कृति 'पोलिटिकल थॉट' में कहा है कि मार्क्स के इस सिद्धांत का नामकरण 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या, होना चाहिए क्योंकि 'भौतिक' शब्द का अर्थ अचेतन पदार्थ होता है और मार्क्स इस संपूर्ण सिद्धांत में अचेतन पदार्थ की कोई बात नहीं करता। मार्क्स ने अपने उक्त सिद्धांत में सामाजिक परिवर्तन के पीछे आर्थिक कारकों की भूमिका को महत्वपूर्ण माना है अतः यह इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या न होकर आर्थिक व्याख्या ही है।

मार्क्स की मान्यता है कि द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार होने वाले अनेक परिवर्तनों की भांति मानव इतिहास के कार्यकलाप भी भौतिक कारणों या प्रभावों द्वारा ही निश्चित होते हैं। मार्क्स का कथन है कि इतिहास की घटनाओं को मुख्यतः निर्धारित करने वाला कारक आर्थिक प्रभाव है। इस आर्थिक कारक को उत्पादन प्रणाली का प्रभाव भी कहा जा सकता है। मार्क्स के शब्दों में, ''किसी भी समाज का राजनीतिक और बौद्धिक जीवन भौतिक आवश्यकताओं पर आधारित उत्पादन प्रणाली द्वारा निर्धारित

टिप्पणी

होता है।'' इसीलिए मार्क्स की व्याख्या को इतिहास की भौतिक व्याख्या के साथ–साथ आर्थिक व्याख्या एवं उत्पादन प्रणाली द्वारा की गई व्याख्या भी कहा जा सकता है। मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद का मुख्य तत्व है, 'आर्थिक नियतिवाद' अर्थात् मनुष्य का प्रत्येक कार्य आर्थिक या भौतिक कारकों द्वारा नियमित या नियन्त्रित होता है। जिस प्रकार की मान्यता है कि मानव इतिहास में जलवायु की भूमिका निर्णायक होती है एवं फ्रायड की मान्यता है कि महत्वपूर्ण परिवर्तनों के पीछे यौन संबंध महत्वपूर्ण होते हैं। ठीक उसी प्रकार मार्क्स की मान्यता है कि मानव इतिहास में होने वाले परिवर्तनों के मूल में समाज में रहने वाले व्यक्तियों के आर्थिक संबंधों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

मार्क्स द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक भौतिकवाद के दो प्रमुख सिद्धांत है। प्रथम यह कि प्रकृति के विकास की भांति ही सामाजिक विकास के भी कुछ निश्चित नियम होते हैं। द्वितीय यह कि सामाजिक विकास का स्वरूप भौतिक व आर्थिक शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। सामाजिक विकास में मनुष्य का मन, दैवी प्रेरणा, विचार व भावनाओं आदि की भूमिका गौण होती है। किसी भी समाज में जैसी भौतिक एवं आर्थिक पारिस्थितियां होती हैं, तद्नुसार ही उस समाज का सामाजिक, राजनीतिक संगठन एवं सांस्कृतिक मान्यताएं होती हैं।

पूंजीवादी समाज की स्थापना का कारण मार्क्स ने इतिहास में खोजा है। मार्क्स का कहना था कि ''वैद्य संबंधों और साथ ही राज्य के रूपों को न स्वतः उनके द्वारा समझा जा सकता है, न ही मानव मस्तिष्क की सामान्य प्रगति द्वारा इनकी व्याख्या की जा सकती है बल्कि वह तो जीवन की भौतिक अवस्थाओं के मूल में स्थित होती है। भौतिक जीवन में उत्पादन की विधि जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक विधियों के सामान्य स्वरूप का निश्चय करती है। मनुष्यों की चेतना उनके अस्तित्व का निश्चय नहीं करती, प्रत्युत उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना का निश्चय करता है। इस प्रकार मार्क्स की इतिहास की व्याख्या का सार यह था कि प्रत्येक देश की राजनीतिक संस्थाएं, उसकी सामाजिक व्यवस्था, उसके व्यापार, उद्योग, सांस्कृतिक रीति–रिवाज जीवन की भौतिक अवस्थाओं द्वारा प्रभावी रूप ग्रहण करते हैं। भौतिक अवस्थाओं से तात्पर्य है– उत्पादन प्रणाली, वितरण और विनिमय के साधन एवं बाहरी वातावरण जिनमें उत्पादन के साधन सर्व–महत्वपूर्ण हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. इतिहास की युगचक्रवादी व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रमुख श्रेय किसको दिया जाता है?

   (क) विको (ख) हर्डर

   (ग) स्पेंगलर व टायन्बी (घ) इनमें से कोई नहीं

2. ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धांत के प्रतिपादक कौन माने जाते हैं?

   (क) कार्ल मार्क्स (ख) हीगेल

   (ग) प्लेटो (घ) अरस्तू

5.3 इतिहास का सामाजिक एवं तुलनात्मक सिद्धांत

टिप्पणी

इतिहास के सामाजिक एवं तुलनात्मक सिद्धांतों को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

5.3.1 इतिहास का सामाजिक विकास

मार्क्स ने सामाजिक विकास में उत्पादन की विधि, उत्पादन के साधन, समाज की उत्पादक शक्ति तथा उत्पादक संबंधों को अत्यंत महत्वपूर्ण माना है। मार्क्स के इस सिद्धांत का विस्तृत विवेचन हम निम्न शीर्षकों के तहत कर सकते हैं–

उत्पादन की विधि– मनुष्य को अपने जीवन के लिए भोजन, वस्त्र एवं आवास की मुख्य आवश्यकता होती है। अतः अपनी उक्त आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इनका संग्रह उत्पादन करता है और उत्पादन की विधि अथवा प्रणाली से सामाजिक विकास का स्वरूप निर्धारित होता है।

उत्पादन के साधन– आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन के लिए उत्पादन के साधनों की आवश्यकता होती है। मार्क्स ने उत्पादन के तीन साधनों का उल्लेख किया है – (1) प्राकृतिक साधन अर्थात् भूमि, जलवायु, खनिज पदार्थ इत्यादि, (2) मशीन, यन्त्र एवं अतीत से विरासत में प्राप्त उत्पादन कला, (3) युग विशेष में मनुष्य के नैतिक एवं मानसिक गुण। उत्पादकता के इन साधनों के आधार पर ही इतिहास का सामाजिक और राजनीतिक ढांचा तैयार होता है जो मानव के पारस्परिक संबंधों को भी निश्चित करता है।

उत्पादन के साधनों का सामाजिक परिवर्तन से संबंध– मार्क्स के अनुसार जीवन के भौतिक साधनों की उत्पादन प्रणाली ही सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक जीवन की समस्त क्रिया को निर्धारित करती है। उत्पादन के साधनों में परिवर्तन आ जाने पर उस पर निर्भर सामाजिक संबंधों में भी परिवर्तन आ जाता है। उत्पादन के साधनों में परिवर्तन आते ही पुराने सामाजिक संबंध टूटने लगते हैं और नवीन संबंधों का निर्माण होता है। मार्क्स के अनुसार इतिहास इस बात का साक्षी है कि उत्पादन प्रणाली के प्रत्येक परिवर्तन के साथ अब तक इतिहास में चार परिवर्तन हो चुके हैं और पांचवें परिवर्तन की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी है।

मार्क्स ने उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन के आधार पर मानव के इतिहास को निम्न युगों में बांटा है–

1. आदिम साम्यवादी समाज
2. दास समाज
3. सामंतवादी समाज
4. पूंजीवादी समाज एवं
5. साम्यवादी समाज

आदिम युग में आखेट एवं खाद्य संग्रह आजीविका के मुख्य साधन थे। अतः ऐसी उत्पादन प्रणाली में वर्ग संघर्ष यहां नामुमकिन था। लोग मिलकर शिकार करते थे। वे फल आदि का संग्रह करते थे, अतः मिल–जुलकर रहना ही इनकी व्यवस्था के लिए अधिक उपयुक्त था।

दूसरा युग दासता का युग था। लोहे एवं तांबे के औजार बनने से उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन हुआ और मनुष्य ने हल चलाना एवं पशुपालन सीखा। संपन्न लोग खेती एवं पशुपालन हेतु दास रखने लगे और दासता का युग आरंभ हुआ।

टिप्पणी

भूमि का महत्व बढ़ने पर राजाओं ने जागीरदारी प्रथा के तहत भूमि बड़े–बड़े सामंतों में बांट दी। भूमि पर सामंतों का अधिकार हो जाने पर भूमि जोतने वाले कृषक उनके अधीन हो गए। इस प्रकार सामंतवादी युग में कृषक एवं कृषि दासों का सामंतों द्वारा शोषण आरंभ हुआ।

औद्योगिक प्रगति के फलस्वरूप एक बार पुनःउत्पादन के साधनों में परिवर्तन हुआ। अब छोटे–मोटे हस्तचालित उद्योगों का स्थान यंत्रचालित बड़े–बड़े उद्योगों ने ग्रहण कर लिया। उत्पादन के इन साधनों पर जिस वर्ग का अधिकार हुआ, वह पूंजीपति वर्ग कहलाया। शेष जनता को संपत्तिविहीन श्रमजीवी बनना पड़ा। इस प्रकार पूंजीपतियों द्वारा मजदूर वर्ग का शोषण आरंभ हुआ।

मार्क्स उक्त चारों युगों को प्रागैतिहासिक कहता है। उसके मतानुसार मानव समाज का वास्तविक इतिहास तो साम्यवाद के आगमन से आरंभ होता है और पूंजीवाद से साम्यवादी समाज की स्थापना होती है। इस प्रकार आदिम साम्यवाद से आधुनिक साम्यवाद की स्थापना को मार्क्स इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या द्वारा समझाने का प्रयास करता है।

5.3.2 तुलनात्मक सिद्धांत

तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग द्वारा विश्व इतिहास में विभिन्न समाजों, सभ्यताओं, संस्कृतियों, राज्यों के प्रशासनों और धर्मों की समानताओं और विभिन्नताओं का अध्ययन आसानी से किया जा सकता है। तुलनात्मक इतिहास दर्शन का प्रवर्तक इटली के महान दार्शनिक इतिहासकार ''विको'' को माना जाता है। उसका मानना था कि इतिहास में समानता और अक्षुण्णता की प्रवृत्ति विद्यमान है। इमाइल दुर्खीम (1858–1917 ई.) कार्य कारण संबंधों की प्राथमिकता सिद्ध करने के लिए तुलनात्मक पद्धति को सर्वश्रेष्ठ पद्धति मानते हैं। कभी–कभी घटनाएं और परिस्थितियां एक दूसरे को उत्पन्न करने का कारण होती हैं। कौन सी घटना किस परिस्थिति के द्वारा उत्पन्न हुई या किस घटना ने कौन सी परिस्थिति पैदा की, यह सब जानने के लिए हम उन सभी परिस्थितियों की तुलना घटनाओं के संबंध में करते हैं, जिनमें दो घटनाएं एक साथ घटित होती हैं या अनुपस्थित होती हैं, इसी को तुलनात्मक पद्धति कहा जाता है।

जर्मनी के महान इतिहासकार ओसवाल्ड स्पेंगलर की प्रमुख रचना है – डिक्लाइन ऑफ दि वेस्ट। इस ग्रंथ में स्पेंगलर संपूर्ण मानव इतिहास को 8 प्रमुख सभ्यताओं में विभाजित करता है – मिस्री, चीनी, प्राचीन सामी, भारतीय, ईरानी, यूनानी, रोमन तथा पाश्चात्य। उसके अनुसार प्रत्येक संस्कृति अन्य संस्कृतियों से भिन्न है तथा उसके अपने स्वयं निर्मित मूल्य हैं जिन पर किसी अन्य संस्कृति का कोई प्रभाव नहीं है। प्रत्येक समाज के विकास की कुछ निश्चित अवस्थाएं होती हैं जिनकी तुलना हम एक जीवनक्रम की विभिन्न अवस्थाओं से कर सकते हैं। यद्यपि स्पेंगलर विभन्न संस्कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन की संभावना को स्वीकार नहीं करता है फिर भी समाजशास्त्रियों ने इतिहासज्ञों की तुलना में उसे अधिक महत्व दिया है। आठ विभिन्न सभ्यताओं का निरूपण कर, जो कि विकास की समान अवस्थाओं से गुजरती हैं, हम

इस सिद्धांत के प्रयोग से अतीत को विभिन्न तुलनीय इकाइयों में विभक्त कर सकते हैं, जिनके संबंध में सामान्यीकरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

टिप्पणी

विश्व इतिहास के क्षितिज को सुशोभित करने वाले महान इतिहासकारों में अर्नाल्ड जे. टायन्बी का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने अपने विश्वविख्यात ग्रंथ ''ए स्टडी आफ हिस्ट्री'' के लेखन में बीस वर्ष तक अथक श्रम किया। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि इतिहास की विषयवस्तु ऐतिहासिक घटनाएं, राज्य तथा समुदाय नहीं है। इतिहास अध्ययन का बोधगम्य क्षेत्र समाज है। समाज ही इतिहास का अणु तत्व है। उन्होंने विश्व की 29 सभ्यताओं के जन्म, विकास, टूटन एवं विघटन का जो चक्रीय सिद्धांत प्रस्तुत किया है, इसका प्रमुख श्रेय उनके द्वारा विभिन्न सभ्यताओं के अध्ययन में प्रयुक्त तुलनात्मक पद्धति को ही जाता है। उन्होंने विभिन्न सभ्यताओं के अध्ययन में काफी सूक्ष्मता के साथ तुलनात्मक पद्धति का उपयोग करते हुए अपने निष्कर्ष निकाले थे।

इतिहास में तुलनात्मक अध्ययन के औचित्य पर विचार करते हुए ई. एच. कार स्पष्ट करते हैं कि इसके माध्यम से हम इतिहास में सीखने की कोशिश करते हैं। घटनाओं के एक सेट से प्राप्त ज्ञान को घटनाओं के दूसरे सेट पर लागू करना सीखते हैं। उनके अनुसार, आधुनिक इतिहासकार जब भी अंग्रेजी फ्रांसीसी, रूसी और चीनी क्रांति की चर्चा करते हैं तो इसी तरह का सामान्यीकरण करते हैं, दरअसल इतिहास सामान्यीकरण से ही अपनी खुराक पाता है।

वास्तव में तुलनात्मक पद्धति के आधार पर समग्र मानव संस्कृतियों की सामान्य विशेषताओं का पता चल सकता है। इस प्रकार विभिन्न समाजों की संस्कृति एवं संस्थाओं की उत्पत्ति, विकास और विनाश के सामान्य कारणों या आधारों का पता चल जाता है और हमें मानव समाज में क्रियाशील उन सामान्य प्रेरक शक्तियों का भी ज्ञान होता है जिनके कारण संस्कृति के विभिन्न अंगों में संगठन या एकता बनी रहती है। यदि विभिन्न समाज व संस्कृति से संबंधित तथ्यों को सावधानी से एकत्रित किया जाए, उन्हें उचित ढंग में प्रस्तुत किया जाए तथा उनमें पाई जाने वाली समानताओं और भिन्नताओं दोनों को ही वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषित किया जाए तो मानव समाज, संस्कृति व संस्थाओं के संबंध में सामान्य नियमों को ढूंढ़ा जा सकता है। परंतु इसके लिए यह आवश्यक है कि विषयों का चुनाव और तुलना वैज्ञानिक ढंग से की जाए और अपने निजी अभिमत तथा दृष्टिकोण को दृढ़ता से दूर रखा जाए।

अपनी प्रगति जांचिए

3. मार्क्स ने उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन के आधार पर मानव के इतिहास को कितने युगों में बांटा है?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

4. तुलनात्मक इतिहास दर्शन का प्रवर्तक किसे माना जाता है?

   (क) ओसवाल्ड स्पेंगलर (ख) विको

   (ग) टायन्बी (घ) इमाइल दुर्खीम

टिप्पणी

5.4 संरचनात्मक एवं वैश्वीय सिद्धांत

संरचनात्मक एवं वैश्वीय सिद्धांत को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

5.4.1 संरचनात्मक सिद्धांत

इतिहास की प्रमुख विषय–वस्तु मानव एवं उसका कार्य व्यवहार है। कालिंगवुड ने समस्त इतिहास को विचारों का इतिहास कहा है। वस्तुतः मनुष्य जब कोई भी कार्य संपन्न करता है तो सर्वप्रथम उसके मस्तिष्क में कुछ विचार आते हैं और इन्हीं विचारों की परिणति उसके द्वारा संपन्न कार्यों में देखी जा सकती है। इसीलिए कतिपय विद्वान मानव के विचारों के अध्ययन पर जोर देते हैं। संरचनावाद इतिहास की एक नवीनतम अवधारणा है जिसमें संरचनावादी विद्वान मानव मस्तिष्क की संरचना के अध्ययन पर बल देते हैं। प्रमुख संरचनावादी विद्वानों में लेवी स्ट्राउस, जान लॉक, आलथूसे एवं बार्थ का नाम अग्रणी रूप से लिया जा सकता है। यद्यपि इनके संरचनात्मक दर्शन में कुछ विभिन्नताएं भी दृष्टिगोचर होती हैं। इन सब में सर्वप्रथम संरचनावादी विद्वान प्रख्यात मानवशास्त्री लेवी स्ट्राउस को माना जाता है।

लेवी स्ट्राउस की स्पष्ट मान्यता थी कि मनुष्य और उसके क्रियाकलाप को समझने के लिए उसकी चिंतन प्रक्रिया, उसके मस्तिष्क की संरचना को समझना आवश्यक है। 1960 ई. से 1970 ई. के दशक में फ्रांसीसी दार्शनिक रंगमंच पर संरचनावादी दर्शन का स्थान उत्तर संरचनावाद ने ले लिया। उत्तर संरचनावादियों पर इनकी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। यद्यपि संरचनावाद का वर्चस्व अल्पकालिक ही रहा तथापि समाज सिद्धांत की धारणाओं पर संरचनावाद का प्रभाव किसी न किसी रूप में स्पष्टतः देखा जा सकता है।

लेवी स्ट्राउस का मानना था कि जब भाषा चिह्नों की आन्तरिक प्रक्रिया को सास्युरियन भाषा प्रणाली द्वारा समझा जा सकता है तो मानव मस्तिष्क की संरचना को भी समझना कठिन कार्य नहीं है। लेवी स्ट्राउस सास्युरियन तकनीक को समाज और संस्कृति के अध्ययन में इस्तेमाल करते हुए अपने शोध से संरचनावादी मानवशास्त्र की नींव डालता है। लेवी स्ट्राउस, सास्युरियन भाषिक संरचना के आधार पर सभ्यताओं की सांस्कृतिक संरचनाओं को समझने का प्रयास इसलिए करता है क्योंकि इन दोनों से ही मानवीय मस्तिष्क की आंतरिक संरचना प्रकट होती है।

संरचनावादी दर्शन का एक प्रमुख कार्य है कर्ता के रूप में व्यक्ति की विरचना। लेवी स्ट्राउस ने भी कहा है कि ''मानव विज्ञानों का अंतिम उद्देश्य मानव को रचित करना नहीं बल्कि उसका विसर्जन कर देना है।'' एक ओर संरचनावादी विद्वान जान लॉक यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि चित चेतना के माध्यम से व्यक्ति कर्ता के रूप में प्रतिष्ठित होता है, वह स्वयं एक व्युत्पन्न संरचना है जिसकी जड़ें अचेतन में हैं और अचेतन व्यक्ति की पहुंच से परे है।

आलथूसे का मार्क्सवाद भी समाज सिद्धांत का एक स्पष्ट प्रति मानविक उदाहरण प्रस्तुत करता है। आलथूसे का मानना है कि मार्क्स ने जिस सैद्धान्तिक क्रांति का सूत्रपात किया, उसका मूल तत्व यह था कि इतिहास के केंद्र में कोई माननीय कर्ता नहीं है। वस्तुतः इतिहास का न तो कोई कर्ता है और न कोई केंद्र। वह एक कर्ताविहीन

टिप्पणी

प्रक्रिया एवं केंद्रविहीन संरचना है। आलथूसे की व्याख्याओं में अतिनिर्धारण की अवधारणा बलवती होती दिखाई देती है। वह मार्क्सवाद को अपनी अति निर्धारण की अवधारणा द्वारा, आर्थिक निर्धारणवाद के आरोप से बचाने की कोशिश करता है। आलथूसेरियन मार्क्सवाद में बिना किसी आधार के अधिरचना को स्वायत्त स्थान प्राप्त है। आलथूसे के अनुसार, सामाजिक संरचना प्रारंभिक दौर में अधिरचना की बनावट में शामिल होती है। अधिरचना वापस पूरी संरचना को प्रभावित करती है। आलथूसे के सिद्धांत में भौतिकवाद एवं संरचनावाद के मध्य एक तनाव की स्थिति दृष्टिगोचर होती है और यही तनाव आलथूसे के सिद्धांतों की सफलता में बाधक बनता है।

आलथूसेरियन मार्क्सवाद में जिस प्रकार इतिहास कर्ता से परे है, उसी प्रकार सत्ता को भी कर्ता से स्वतंत्र माना गया है। जब कर्ता का सामाजिक संरचना में विलय हो जाता हे तो सत्ता तरल एवं अमूर्त बन जाती है और सामाजिक संरचना की प्रत्येक पोर में बैठ जाती है और इस तरह सत्ता सामाजिक संरचना का ही अंग बन जाती है। इस प्रकार सत्ता एवं इतिहास के संबंध संरचनात्मक धुंधलके में ओझल हो जाते हैं, अब यह निर्धारण नहीं किया जा सकता कि सत्ता इतिहास का निर्धारण कर रही है या इतिहास सत्ता का इस तरह इतिहास के संरचनावादी सिद्धांत में सत्ता की अवधारणा भी संरचनात्मक रूप ले लेती है।

5.4.2 वैश्वीय सिद्धांत

आधुनिक युग में विश्व इतिहास की अवधारणा का प्रमुख प्रतिपादक हर्डर को माना जाता है। उसने अत्यंत नूतन विश्व इतिहास प्रतिपादित किया है। वह मानता है कि समस्त प्राकृतिक सृष्टि सावयव है और इतिहास चिन्तन की दृष्टि से संपूर्ण मानवों की उत्पत्ति सावयवी रूप में हुई है। अतः जातीय विभिन्नता होते हुए भी मानव जाति का इतिहास संपूर्ण विश्व में एक प्रवाह के रूप में देखा जा सकता है।

बीसवीं शताब्दी में प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के भयंकर परिणामों ने इतिहासकारों को विश्व भ्रातृत्ववाद तथा मानव समाज के कल्याण के विषय में सोचने के लिए बाध्य कर दिया। अब इतिहास का उद्देश्य संकुचित राष्ट्रीयता, धर्म, जाति, क्षेत्रीयता की भावना का परित्याग कर इतिहास में विश्वभ्रातृत्ववाद को स्थान देना बन गया। सर्वप्रथम एच. जी. वेल्स ने अपनी रचनाओं (Outline of History) में मानव कल्याण, मानव प्रगति एवं विश्व भ्रातृत्ववाद को स्थान दिया। उनका उद्देश्य मानव जाति का सर्वांगीण चित्रण प्रस्तुत करना था। इसी तरह टायन्बी ने 12 खंडों में Study of History ग्रंथ लिखा जिसमें विश्व की 29 सभ्यताओं के उद्भव, विकास एवं विघटन का चक्र प्रतिपादित किया गया है। उन्होंने चुनौती और प्रत्युत्तर (Challenge and Response) के आधार पर संस्कृतियों का अध्ययन किया है। ओसवाल्ड स्पेंगलर ने ''डिक्लाइन ऑफ दि वेस्ट'' ग्रंथ में विश्व की विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस प्रकार कई इतिहासकारों द्वारा विश्व इतिहास का अध्ययन किया गया है।

वास्तव में इतिहास के वैश्वीय दृष्टिकोण की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है। प्राचीन भारत के इतिहास के संदर्भ में यदि इंडो ग्रीक, शक, पल्लव, कुषाण आदि वंशों के इतिहास को समग्रता में समझना चाहें तो मध्य एशिया के परिप्रेक्ष्य में उनका अध्ययन करना आवश्यक है। इसी तरह अशोक द्वारा विभिन्न देशों में धर्म प्रचारक भेजना,

टिप्पणी

भारतीय मुद्राओं का विदेशों में तथा विदेशी मुद्राओं का भारत भूमि में प्राप्त होना, वृहत्तर भारत एवं एशिया में भारतीय संस्कृति एवं बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार, चोल सम्राटों के वैदेशिक अभियान आदि विषयों को वैश्वीय दृष्टिकोण अपनाए बिना नहीं समझा जा सकता। इसी तरह मध्यकालीन भारत में इस्लाम के आगमन एवं विकास को समकालीन विश्व परिप्रेक्ष्य में समझना आवश्यक है। आधुनिक भारत में प्रथम और तृतीय कर्नाटक युद्धों के कारण वास्तव में आस्ट्रियाई उत्तराधिकार के युद्ध (1740 ई) एवं सप्तवर्षीय युद्ध (1756 ई.) में मौजूद थे। भारत में ब्रिटिश सत्ता ने अफगानिस्तान पर आक्रमण वास्तव में रूस के भय से किए थे। भारत के प्रति अंग्रेजी नीतियां अक्सर ही यूरोपीय इतिहास के द्वंद्वों और विरोधाभासों से प्रेरित एवं प्रभावित होती थीं। 1947 ई. में भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। इसके लिए भारत का राष्ट्रीय आंदोलन उत्तरदायी था फिर भी तत्कालीन विश्व परिस्थितियों तथा ब्रिटेन के ऊपर संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा डाले गए दबाव का भी प्रभाव पड़ा था।

इसी तरह यदि विश्व के परिप्रेक्ष्य में देखें तो प्रथम विश्व युद्ध में अमेरिका का प्रवेश, द्वितीय विश्व युद्ध में चीन एवं जापान की भूमिका, 1930 के दशक की विश्वव्यापी मंदी और उसका प्रभाव, द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात रूस और सं. रा. अमेरिका के बीच शीतयुद्ध की स्थिति, गुटनिरपेक्ष आंदोलन का जन्म एवं विकास, सोवियत रूस के विखंडन के पश्चात एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था, एकल यूरोप की अवधारणा, संयुक्त राज्य अमेरिका का रूस के विखंडन के बाद बिग ब्रदर का रवैया, मुस्लिम देशों का निज पहचान की खोज में बगावती रवैया, धार्मिक आतंकवाद (जिहाद बनाम क्रूसेड), नेपोलियन, विस्मार्क, हिटलर तथा मुसोलिनी की विचारधाराओं को अनुमोदित करने वाले नव नात्सीवादी एवं फासीवादी गुटों का प्रादुर्भाव, चीन की अगुवाई में कम्यूनिज्म एवं पूंजीवाद के मिश्रण से उत्पन्न तथाकथित नव साम्यवाद की उत्पत्ति, तृतीय विश्व के देशों का कुछ महत्वपूर्ण अवसरों (ग्लोबल वार्मिंग, डंकेल पैकेज, ग्लोबलाइजेशन, तेल उत्पादों पर एकाधिकार आदि) पर उग्रवादी दृष्टिकोण– आदि विषयों पर नए सिरे से ध्यान देने की आवश्यकता है। इन विषयों पर विचार करने से यह स्पष्ट होगा कि वैश्वीय इतिहास की गति एवं दिशा क्या है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. समस्त इतिहास को 'विचारों का इतिहास' किसने कहा है?

(क) लेवी स्ट्राउस (ख) कालिंगवुड

(ग) जान लॉक (घ) बार्थ

6. आधुनिक युग में विश्व इतिहास की अवधारणा का प्रमुख प्रतिपादक किसको माना जाता है?

(क) हर्डर (ख) आलथूसे

(ग) स्पेंगलर (घ) एच.जी. वेल्स

5.5 पारिस्थितिकीय एवं उत्तर–आधुनिकतावादी सिद्धांत की समालोचनाएं

टिप्पणी

वर्तमान समय की सर्वाधिक ज्वलन्त समस्याओं में सर्वप्रमुख समस्या पारिस्थितिक असंतुलन की समस्या के रूप में दिखाई दे रही है। जंगलों का निरंतर कम होते जाना, तद्नुसार ही वन्य जीव–जंतुओं में कमी का आना, कम वर्षा के परिणामस्वरूप भूमिगत जल स्तर का निरंतर गिरना आज विश्व स्तर पर चिंता का प्रमुख विषय है। ऐसे में इतिहाकारों का ध्यान पारिस्थितिक इतिहास की ओर जाना स्वाभाविक ही है। चूंकि इतिहास की प्रमुख विषय–वस्तु मानव एवं समाज है और मानव एवं समाज की सर्वांगीण प्रगति का पारिस्थितिक संतुलन से सीधा संबंध है। अतः पारिस्थितिक असंतुलन को लेकर मानव एवं समाज की चिंता इतिहासकारों का ध्यान पारिस्थितिक इतिहास की ओर खींचती है। उत्तर–आधुनिकतावादी विद्वानों ने इतिहास के अध्ययन की विषय–वस्तु के रूप में वर्तमान की समस्याओं को भी रखा है। फूको एवं नीत्से ने भी वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में अतीत के अध्ययन पर जोर दिया है।

5.5.1 इतिहास पर जलवायु संबंधी कारकों का प्रभाव

एलस्वर्थ हंटिंगटन (जन्म 1876ई.) ने ऐतिहासिक परिवर्तनों का प्रमुख आधार जलवायु को माना था। उन्होंने अपनी सर्वप्रमुख कृति 'सभ्यता और जलवायु' में इतिहास की प्रक्रिया और सभ्यता का उत्थान–पतन जलवायु द्वारा प्रमुख रूप से प्रभावित माना है। हंटिंगटन ने यूनान, रोम, तुर्की, जर्मनी आदि देशों के इतिहास को इसी दृष्टिकोण से समझने की चेष्टा की है। उनके अनुसार, आदर्श तापमान 64 डिग्री फारेनहाइट एवं आदर्श नमी 80 डिग्री है। जब जलवायु इन आदर्शों के समीप पहुंचती है तो सभ्यता का विकास होता है एवं जब जलवायु इन आदर्श से दूर होती है तो सभ्यता के पतन की प्रक्रिया का आरंभ होता है। वे जलवायु, स्वास्थ्य, शारीरिक शक्ति एवं मानसिक क्षमता को परस्पर अभिन्न रूप से संबंधित मानते हैं। उनके अनुसार, चूंकि इन तत्वों और तथ्यों के विकास और अभिव्यक्ति का नाम ही सभ्यता है, अतः जलवायु और सभ्यता का भी एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध सिद्ध होता है।

हंटिंगटन पर मांटेस्क्यू एवं बकल आदि विद्वानों का भी प्रभाव था। इनके सहित अनेक यूरोपीय विचारकों की मान्यता है कि जलवायु संबंधी कारकों के कारण ही उत्तर के शीत कटिबंध के लोग दक्षिण के उष्ण कटिबंध के लोगों से अधिक समृद्ध, समुन्नत एवं पुष्ट होते हैं। आर.वार्ड ने अपनी कृति 'जलवायु' में इन्हीं विचारों को वैज्ञानिक आवरण में सिद्ध करने का प्रयास किया है। भारत में आर्य आदि उत्तरी जातियों द्वारा साम्राज्य की स्थापना, मंगोल एवं मंचू जातियों द्वारा चीन पर अधिकार, यूनानी रोमन एवं ट्यूटनों द्वारा यूरोपीय संस्कृति का निर्माण आदि को वार्ड ने जलवायु संबंधी कारकों के प्रभाव के रूप में प्रस्तुत किया है।

जलवायु संबंधी कारक यद्यपि इतिहास को निश्चित रूप से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रभावित करते हैं, तथापि हंटिंगटन एवं वार्ड द्वारा प्रतिपादित विचार कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण दिखाई देते हैं। बुद्ध प्रकाश के अनुसार, ''उनके विचार सब जगह लागू नहीं होते। यदि जलवायु को ही जातियों के विकास का नियंता माना जाए तो यह पता नहीं चलता कि 1845 से 1890 ई. तक जापान में ऐसा कौन सा महत्वपूर्ण जलवायु संबंधी परिवर्तन हुआ

टिप्पणी

जिसने एक पिछड़ी हुई जाति को विश्व के उन्नत राष्ट्रों की श्रेणी में रख दिया। अतः स्पष्ट है कि पारिस्थितिक एवं भौगोलिक कारक एक सीमा तक ही इतिहास की गति को निर्धारित करते हैं। इस तारतम्य में मोरिस आर. कोहन ने उचित ही लिखा है कि ''इतिहासकार को भौगोलिक तथ्यों को इतिहास और संस्कृति का स्थायी नियामक तत्व नहीं समझ बैठना चाहिए अपितु ऐसे तथ्य मानना चाहिए जो वैज्ञानिक प्रक्रियाओं तथा मानव बुद्धि और क्षमता के योग से महत्व प्राप्त करते हैं।''

वन एवं आदिवासियों का अंतर्संबंध

भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी विशेषतः आदिम जनजातियों का पर्यावरण एवं वनों से घनिष्ठ संबंध रहा है। प्राचीनकाल में आखेट एवं खाद्य संग्रह उनकी आजीविका का प्रमुख आधार था। कई घुमंतू समुदाय इसी तरह अस्तित्व में आए। यहां तक कि अधिकांश जनजातियां स्थायी खेती के स्थान पर झूम खेती पर निर्भर हैं। एक तरह से सांस्कृतिक विकास को भी हम मानव एवं पर्यावरण के अंतर्संबंधों के रूप में देख सकते हैं। ऐसे क्षेत्र जहां आजीविका का प्रमुख साधन कृषि है और वर्षा की अनिश्चितता रहती है। अतः उचित समय पर पर्याप्त वर्षा के लिए विभिन्न प्रकार के धार्मिक कृत्य संपन्न करना उनके सांस्कृतिक जीवन का एक अंग बन जाता है। पर्यावरण में उपलब्ध अधिक से अधिक सम्भावनाओं का उपयोग मानव संस्कृति के विविध आयामों को निर्धारित करता है। इस प्रकार मानव एवं प्रकृति अथवा पर्यावरण एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सह–संबंधित हैं।

विद्या भूषण के अनुसार, ''वन से पारंपरिक आदिवासी समाज का मन का रिश्ता है। यह भावनात्मक लगाव भर नहीं है। भोजन व ईंधन का अगाध स्रोत होने के नाते जंगल सदियों से आदिवासी जीवन को संरक्षण भी देते आए हैं। जनजातीय संस्कृति में प्रकृति पूजा का स्थायी भाव तो है ही, वन के बिना उनकी कल्पना तक कठिन है। लेकिन वन क्षेत्र केवल जनजातीय समाज के लिए उपयोगी नहीं है, वे पूरी धरती के पर्यावरण संरक्षण में भी मददगार हैं। उपनिवेश पूर्व भारतीय इतिहास में पारिस्थितिक संतुलन खासकर वन पारिस्थितिकी के संरक्षण में आदिवासियों की अहम् भूमिका थी।'' इस तारतम्य में डॉ. बी.के. राय बर्मन ने लिखा है कि ''वे जंगल के निवासी मात्र नहीं हैं, सदियों से उन्होंने अपनी जीवन–शैली को वन परिस्थितियों में ढाला है। एक ओर, उनकी जीवन–शैली वन पारिस्थितिकी और वन संपत्ति से जुड़ी है तो दूसरी ओर मनुष्य अथवा प्रकृति द्वारा वन की क्षति एवं विनाश के प्रति वे सामूहिक रूप से जागरूक रहे हैं।'' साम्राज्यवादी शासन काल में इस प्रतीकात्मक संबंध को गहरा धक्का लगा जब जंगल को अधिकतम मुनाफे का स्रोत मात्र समझा जाने लगा और मानव निवास एवं व्यापक जीवंत संदर्भ के बीच जीवंत कड़ी के रूप में उसे अकेला कर दिया गया।

भारत में वनों की स्थिति

विश्व में एशिया एवं एशिया में भारत का काफी अधिक भू–भाग वनों से आच्छादित है। भारतीय वन 7.53 लाख वर्ग किमी. भूमि पर फैले हैं जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 23 प्रतिशत है परंतु वन क्षेत्र का निरंतर कम होते जाना पारिस्थितिक असंतुलन का एक प्रमुख कारण है। इसलिए पारिस्थितिक इतिहास के तहत उक्त समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जा रहा है। दक्षिण एशिया में पर्यावरण का इतिहास मुश्किल से एक दशक पुराना है; पर्यावरण इतिहास पर पहली पुस्तक 1989 ई. में प्रकाशित हुई

टिप्पणी

एवं 'पथप्रदर्शक परिचायिका' 1992ई. में लिखी गई। 1990 ई. के पूर्व के इतिहास में पारिस्थितिक इतिहास गौण था। कृषक एवं खेतों के इतिहास को आर्थिक इतिहास के तहत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। वस्तुतः पहले के इतिहास में वनों को साफ कर खेती योग्य बनाने को अधिक महत्व दिया गया था परंतु जब वनों में निरंतर आ रही कमी ने पारिस्थितिक असंतुलन पैदा किया तो हाल ही के दशकों में वन संरक्षण की ओर अत्यधिक ध्यान दिया गया और इसीलिए अब पारिस्थितिक इतिहास गौण न रहकर अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हो रहा है।

वर्तमान में वनों की संख्या में कमी, भूमिगत जलस्तर में कमी और तद्नुसार बढ़ता पारिस्थितिक असंतुलन पारिस्थितिक इतिहासकारों के अध्ययन की प्रमुख विषय–वस्तु है। सन् 1987–89 में उपग्रह चित्रों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर वन विभाग ने हमारे भू–भाग का 19 प्रतिशत क्षेत्र वन बताया था परंतु 1999 ई. में संयुक्त राष्ट्र संघ ने उपग्रह चित्रों की जो रिपोर्ट जारी की है, उसके तहत भारत में वनों का प्रतिशत 8 प्रतिशत भू–भाग पर बताया है। यह तथ्य अत्यंत चिंताजनक है। अतः यह जानना आवश्यक हो गया कि आखिर वनों के क्षेत्रफल में लगातार आ रही कमी के पीछे कौन–से कारण निहित हैं। उपनिवेश पूर्व भारत में किन कारणों से भारत का अधिकांश भू–भाग वनाच्छादित था और पारिस्थितिक संतुलन बना हुआ था। इस प्रश्न का उत्तर हम डॉ. बी. के. राय बर्मन के पूर्व वर्णित कथन में पा सकते हैं कि आदिवासी वन–पारिस्थितिकी के प्रति जागरूक थे। चूंकि वन उनकी संस्कृति का एक अंग थे, अतः वे वनों के संरक्षण के प्रति प्रत्यक्ष या परोक्षतः जागरूक थे। इस प्रकार पारिस्थितिक इतिहास के तहत जनजातियों एवं उनके वन एवं प्रकृति के अंतर्संबंधों का अध्ययन अपरिहार्य प्रतीत होने लगा। उन कारणों की तह तक जाने के प्रयास हुए कि आखिर वन क्षेत्रों से आदिवासियों को दूर क्यों किया गया।

आजादी के बाद सरकारी प्रयास

आजादी के बाद वनों के महत्व को देखते हुए एक बार पुनः वनों से आदिवासियों के रिश्तों को बहाल करने के लिए प्रशासकीय स्तर पर कई महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए गए। उर्मिलेश ने लिखा है, ''आजादी के बाद हमारी सरकार ने वन और वन जीवन को लेकर अब तक कई कानून बनाए हैं। इनमें 1952 की वन नीति फिर वन्य प्राणी संरक्षण अधिनियम, 1972 और वन संरक्षण अधिनियम, 1980 खासतौर पर उल्लेखनीय हैं। लेकिन इन सभी कानूनों ने वन और आदिवासियों के सहजीवी रिश्ते की अनदेखी की और इस बुनियादी समस्या पर कोई सुनिश्चित नीति नहीं तय की जा सकी।'' राजकीय व्यापार वन प्रमंडल और कई वन संरक्षक कानूनों के बावजूद जंगलों की वैध–अवैध अंधाधुंध कटाई बदस्तूर जारी है। लकड़ी की चोर बाजारी भी थमने का नाम नहीं ले रही है।

सरकार ने आजादी के बाद राजा–महाराजाओं एवं जमींदारों से यद्यपि वनों को अपने अधिकार में ले लिया था तथापि वहां आज समाज के अभिजात्य वर्ग के तहत आने वाले व्यापारियों, अफसरों, ठेकेदारों एवं तस्करों का राज स्थापित हो गया है। अतः जंगल में जंगल राज का कायम होना आज चिंता का सर्वप्रमुख विषय है। 892 वर्ग किलोमीटर में फैला एशिया का सबसे सघन साल वन – सरंडा झारखंड क्षेत्र की अमूल्य धरोहर है। पूर्वी सिंहभूम जिले के नोआ मुण्डी के बाद ही सारंडा की सीमाएं शुरू हो जाती हैं। इसके दक्षिण पूर्वी छोर पर उड़ीसा के क्योंझर और सुन्दरगढ़ के

टिप्पणी

इलाके हैं एवं उत्तर पूर्व दिशा में कोल्हान का वन क्षेत्र है। इसकी चिंता करते हुए रामदयाल मुंडा ने कहा है कि ''अगर वन विनाश की वर्तमान प्रक्रिया जारी रही तो एशिया के सबसे बड़े जंगलों में शामिल चाइबासा जिले का विश्वप्रसिद्ध सारंडा जंगल भी अगले पचास वर्षों में उजाड़ हो जाएगा।''

सारंडा जैसे सभी महत्वपूर्ण वन क्षेत्रों का संरक्षण करने एवं आदिवासियों का उनकी सांस्कृतिक धरोहर वनों से पुनः रिश्ता बहाल करने की दिशा में आज प्रयास की आवश्यकता अनुभव की जा रही हैं। पारिस्थितिक इतिहास के तहत वर्तमान की पारिस्थितिक असंतुलन की चिंता के परिप्रेक्ष्य में अतीत के पारिस्थितिक संतुलन के महत्व पर विचार किया जा रहा है। उपनिवेश पूर्व एशिया में आदिवासियों एवं वनों के अंतर्संबंधों के कारण पारिस्थितिक संतुलन कायम था। अतः वनों के स्थान पर कृषि भूमि की स्थापना पर कोई चिंता नहीं की गई। खेत एवं वनों का संबंध इतिहास में उपेक्षित था परंतु पारिस्थितिक इतिहास में अब वन खेतों से अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। पारिस्थितिक इतिहास अपनी बहुत सी विशिष्टताएं वर्तमान की चिंताओं से ही प्राप्त करता है। यदि पहले वनों का लुप्त होना हर्ष का विषय था तो आज इन्हें पुनर्जन्म के तत्वों और सकारात्मक गुणों से आभूषित किया जा रहा है। पारिस्थितिक इतिहास में आज वन एवं आदिवासी महत्वपूर्ण हो गए है एवं खेत व कृषक गौण।

5.5.2 उत्तर–आधुनिकतावादी सिद्धांत की समालोचनाएं

इतिहास में उत्तर आधुनिकतावादी अध्ययन का आरंभ 20 वीं शताब्दी के चतुर्थांश से हुआ। फ्रांस के माईकल, फूको, लियोतार्ड, जाक देरिदा एवं ब्रेंडिस जैसे विद्वानों ने इतिहास पर उत्तर आधुनिक नजरिए से दृष्टिपात किया। उत्तर आधुनिकतावादी पूर्व से प्रचलित किसी भी अवधारणा या सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते। वे मार्क्सवाद को भी सैद्धांतिक सामान्यीकरण के कारण अस्वीकार करते हैं। फूको को उत्तर आधुनिक विचारधारा का प्रणेता माना जाता है। उनकी महत्वपूर्ण कृतियां हैं – ''द आर्डर ऑफ थिंग्ज इन आर्कियोलॉजी ऑफ दि ह्यूमन साइंसेज'' (1966) ''दि आर्कियालॉजी ऑफ नालेज'' (1969) तथा "हिस्ट्री डी ला कौलिक"। फूको की ऐतिहासिक शोध पद्धति को तीन भागों में समझ सकते हैं – प्रथम दौर को पुरातात्विक दौर, द्वितीय दौर को वंशावलि विज्ञान तथा तृतीय दौर को स्व की पड़ताल कहा जा सकता है। फूको ने इतिहास की सभी नवीनतम व्याख्याओं को अस्वीकार करते हुए ऐतिहासिक व्याख्या के नए आयाम स्थापित किए। उनके अनुसार, इतिहास वास्तव में वर्तमान की शक्तियों का क्रियात्मक खेल है। इतिहास का उद्देश्य है – वर्तमान को प्रकाशित करना।

इतिहास की उत्तर आधुनिक समालोचनाओं का एक प्रधान केन्द्र सत्ता और इतिहास के पारस्परिक संबंधों में स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होता है। हैगेल और मार्क्स की मान्यता थी कि इतिहास का प्रवाह एक सुनिश्चित योजना के तहत संचालित होता है और वह एक निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर उन्मुख है। जबकि हैगेल एवं मार्क्स के विपरीत उत्तर आधुनिकतावादी एक प्रगतिशील और निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर गत्यात्मक इतिहास की अवधारणा को स्वीकार नहीं करते। वे सत्ता और इतिहास दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

लियोतार्ड ने अपनी कृति "दि पोस्ट माडर्न कण्डीशन : ए रिपोर्ट ऑफ नालेज" (1984 ई.) में हेगेल एवं मार्क्स के इतिहास दर्शन की आलोचना की है। लियोतार्ड

आधुनिकता में निहित महावृतान्तों एवं प्रचलित सिद्धांतों की आलोचना प्रस्तुत करते हैं तथा स्वयं कोई मूल्य या सिद्धांत प्रस्तुत नहीं करते।

टिप्पणी

आजकल इतिहास की उत्तर आधुनिक व्याख्याओं को Po. Mo. Theory का नाम दिया जाने लगा है। रिचर्ड जे. इवान्स अपने एक शोध लेख – Post Mordnism and History में कहते हैं कि निस्संदेह कहा जा सकता है कि अतीत के किसी भी पक्ष के विषय में हम कभी भी संपूर्ण, सर्वकालिक एवं सार्वभौमिक सत्य नहीं जान सकते। जब हम एक ऐतिहासिक दस्तावेज का अध्ययन करते हैं या एक पुरातात्विक क्षेत्र पर उत्खनन के लिए जाते हैं तब हम उसका अध्ययन कई उद्देश्यों को ध्यान में रखकर करते हैं और जब हम इन स्रोतों पर वाद–विवाद करते हैं तब हमें कई दृष्टिकोण प्राप्त होते हैं जो सत्य भी हो सकते हैं और सत्य नहीं भी हो सकते। कीथ जेन्किन्स एवं फ्रेंक एन्कर स्मिथ जैसे उत्तर आधुनिक इतिहासकार इस तथ्य पर बल देते हैं कि ऐतिहासिक तथ्य और ऐतिहासिक व्याख्या में पर्याप्त अंतर होता है। तथ्यों को पहचानना आसान होता है परंतु व्याख्या में समस्याएं आती हैं।

जहां आधुनिकता में इतिहास की ग्रान्ड थ्योरी में विश्वास किया जाता है तथा इतिहास की संपूर्णवादी व्याख्या की जाती है वहीं उत्तर आधुनिकता में सूक्ष्म घटनाओं पर जोर देकर बृहत इतिहास रचने पर बल दिया जाता है। आधुनिक रवैये में विज्ञान और तकनीकी के माध्यम से विकास पर जोर दिया जाता है जबकि उत्तर आधुनिक रवैया तकनीकी के विरोध में है। आधुनिकतावाद जहां व्यक्तिवादी विचारधारा अपनाता है वहीं उत्तर–आधुनिक दृष्टिकोण सर्वदेशीय रवैया अपनाता है।

उत्तर आधुनिक दृष्टिकोण को स्वीकारने वाले कुछ विद्वानों का कहना है कि इतिहास की मृत्यु हो चुकी है। यदि विश्व इतिहास के संदर्भ में देखें तो हम लन्दन हाईकोर्ट के एक मुकदमे पर नजर डाल सकते हैं। इरविंग का कहना था कि हिटलर के समय कोई भी यहूदी गैस चैम्बर में या किसी यंत्रणा कैम्प में नहीं मारा गया। उनका यह दावा तत्कालीन साक्ष्यों, अन्य विद्वानों के विचारों तथा व्यक्तिगत शोध पर आधारित था। जबकि उनके विरोधी पक्ष डेबोरा लिपस्टाड एवं पेंगुइन बुक्स का कहना था कि इरविंग के ये विचार साक्ष्य पर आधारित एवं सत्य नहीं हैं। इस मामले में विशेषज्ञ के रूप में रॉबर्ट जेन वान पेल्ट को प्रस्तुत किया गया जिन्होंने इरविंग के मत का साक्ष्यों द्वारा खंडन किया। इस तरह इरविंग के मत को साक्ष्य के बजाय झूठ पर आधारित पाया गया। अभी संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जार्ज बुश का मूल्यांकन करें तो इराक के प्रति उनकी नीति तथा आतंकवाद के विरुद्ध उनकी नीति का कई लोग पक्ष लेंगे। भारत के इतिहास से एक उदाहरण लें तो औरंगजेब के बारे में एक निर्णय (जे.एन. सरकार का) है कि औरंगजेब के समय की समस्त घटनाओं का मूल उसकी कट्टरता की नीति है। जबकि दूसरा दृष्टिकोण (अतहर अली नोबलिटी अंडर औरंगजेब) यह कहता है कि औरंबजेब के समय में भी अकबर के समय से आरंभ उदारता का क्रम जारी रहा। तो क्या इतिहास की व्याख्याएं व्यक्तिगत मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों पर ही निर्भर हैं। यदि ऐसा है तो इतिहास का कोई अर्थ नहीं है तथा इतिहास मृत हो चुका है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि उत्तर आधुनिक दृष्टिकोण ने इतिहास की नए सिरे की व्याख्याओं पर बल दिया है। बृहत की अपेक्षा सूक्ष्म पर बल देना, समाज की अपेक्षा

व्यक्ति पर बल देना तथा समग्र की अपेक्षा इकाई पर बल देना – उत्तर आधुनिक विश्लेषण की मुख्य स्थापनाएं हैं।

टिप्पणी

इतिहास के वृहत् सिद्धांतों की विशेषताएं

(1) सिद्धांतों के परिवेश में इतिहास को व्याख्यायित करने से एक ओर तो इतिहास के नए नए आयाम उद्घाटित होते हैं वहीं तथ्यों की सिद्धांतों के अनुरूप व्याख्या से इतिहास का वस्तुनिष्ठ प्रस्तुतीकरण प्रभावित होता है।

(2) प्राचीन हिंदू तथा यूनानी रोमन अवधारणा में प्रचलित चक्रवत सिद्धांत की विशेषता यह है कि यह सिद्धांत क्रमशः आने वाले युगों को दर्शाता है। प्रत्येक समाज एवं राष्ट्र के जीवन में कभी उत्थान का समय आता है तो कभी पतन का तथा इतिहास की वस्तु सामग्री इन दोनों से ही निर्मित होती है।

(3) इतिहास के सामाजिक सिद्धांत की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें मानव के ऐतिहासिक अध्ययन में उसके सामाजिक पहलू पर बल दिया जाता है।

(4) तुलनात्मक पद्धति की विशेषता यह है कि यह पद्धति विस्तृत अध्ययन में अत्यंत उपयोगी है।

(5) तुलनात्मक पद्धति द्वारा विभिन्न समाजों की संस्कृति एवं संस्थाओं की उत्पत्ति, विकास एवं पतन के सामान्य कारणों का ज्ञान हो जाता है।

(6) संरचनावाद की विशेषता यह है कि इसमें विभिन्न घटनाओं के माध्यम से मानव मस्तिष्क का अध्ययन किया जाता है।

(7) वैश्वीय इतिहास की विशेषता यह है कि इसमें समग्र विश्व के इतिहास पर विचार करते हुए विकास अथवा पतन का अध्ययन किया जाता है।

(8) जिस तरह किसी व्यक्ति का अध्ययन उसके समाज के अध्ययन के बिना संभव नहीं है ठीक उसी तरह किसी देश का इतिहास समझना उसके वैश्वीय परिदृश्य को समझे बिना संभव नहीं है।

(9) पारिस्थितिक इतिहास की प्रमुख विशेषता यह है कि इसके माध्यम से मानव और उसके पर्यावरण के परस्पर संबंधों का अध्ययन किया जाना संभव है।

(10) इतिहास की उत्तर आधुनिक व्याख्या की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें सूक्ष्म घटनाओं पर जोर दिया जाता है तथा राष्ट्रीयता के बजाय सर्वदेशीय दृष्टिकोण अपनाया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. पर्यावरण इतिहास पर पहली पुस्तक कब प्रकाशित हुई थी?

(क) 1972 (ख) 1982

(ग) 1989 (घ) 1992

8. उत्तर आधुनिक विचारधारा का प्रणेता किसे माना जाता है?

(क) माइकल (ख) फूको

(ग) लियोतार्ड (घ) ब्रेंडिस

5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

1. (ग)
2. (क)
3. (घ)
4. (ख)
5. (ख)
6. (क)
7. (ग)
8. (ख)

5.7 सारांश

भारतीय एवं ग्रीको–रोमन परंपरा में इतिहास को एक निरंतर चक्र के रूप में माना है। चक्रीय अथवा चक्रवादी का अभिप्राय है कि चक्रवत घूमते हुए जहां से प्रारंभ हुए थे, वहीं पुनः वापसी। विभिन्न संस्कृतियों में इतिहास के विभिन्न युगों की परिकल्पना की गई है। जो एक के बाद एक आते हैं और उनकी गति चक्रीय है। भारतीय अवधारणा में चार युगों– कृत, त्रेता, द्वापर एवं कलयुग की परिकल्पना मिलती है। ग्रीको–रोमन अवधारणा में चार युगों को धातुओं के नाम–स्वर्ण युग, रजत युग, कांस्य युग एवं लौह युग पर आधारित किया गया है।

भारतीय परंपरा के अनुसार इन चारों युगों को मिलाकर एक महायुग की रचना होती है एवं ये महायुग एक के बाद एक निरंतर आते हैं। एक सहस्त्र महायुगों को मिलाकर एक कल्प बनता है। भारतीय अवधारणा में कल्प सृष्टि के उद्भव से लेकर सृष्टि के विनाश तक का संपूर्ण समय माना गया है।

आधुनिक युग में इतिहास के चक्रीय सिद्धांत के साथ मुख्यतः विको, हर्डर, स्पेंगलर एवं टायन्बी के नाम जुड़े हुए हैं। इतिहास की युगचक्रवादी व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रमुख श्रेय ओसवाल्ड स्पेंगलर एवं आरनोल्ड टायन्बी को जाता है।

विको के अनुसार, प्रत्येक 'हीरोइक युग' के पश्चात 'क्लासिक युग' आता है। जिसमें व्यक्ति एक दूसरे को समान समझते हैं, कल्पना का स्थान विवेक लेता है, गाथा काव्य के स्थान पर गद्य साहित्य का सृजन होता है। अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि के स्थान पर उद्योग होते हैं एवं नैतिकता का आधार भी युद्ध न होकर शांति होती है। लोकप्रिय सरकारों की स्थापना होती है जो बाद में राजतंत्र का रूप लेती हैं।

कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धांत को विश्व के एक वृहत् ऐतिहासिक सिद्धांत के रूप में जाना जाता है। इतिहास के अन्य सिद्धांतों की तुलना में मार्क्स द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक भौतिकवाद को विश्व स्तर पर अधिक प्रमुखता मिली। मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा प्रख्यात दार्शनिक हीगेल की द्वंद्वात्मक पद्धति से ली।

टिप्पणी

मार्क्स अपने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को इतिहास के क्षेत्र में लागू कर ऐतिहासिक भौतिकवाद के तहत यह साबित करना चाहता है कि उत्पादन के साधन के फलस्वरूप समाज में उत्पन्न द्वंद्व इतिहास को गति एवं दिशा प्रदान करता है। मार्क्स अपने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद द्वारा यह प्रमाणित करना चाहता है कि पूंजीवाद के पश्चात द्वंद्व के माध्यम से किस प्रकार समाजवादी समाज की स्थापना होगी।

औद्योगिक प्रगति के फलस्वरूप एक बार पुनः उत्पादन के साधनों में परिवर्तन हुआ। अब छोटे–मोटे हस्तचालित उद्योगों का स्थान यंत्रचालित बड़े–बड़े उद्योगों ने ग्रहण कर लिया। उत्पादन के इन साधनों पर जिस वर्ग का अधिकार हुआ, वह पूंजीपति वर्ग कहलाया। शेष जनता को संपत्तिविहीन श्रमजीवी बनना पड़ा। इस प्रकार पूंजीपतियों द्वारा मजदूर वर्ग का शोषण आरंभ हुआ।

मार्क्स उक्त चारों युगों को प्रागैतिहासिक कहता है। उसके मतानुसार मानव समाज का वास्तविक इतिहास तो साम्यवाद के आगमन से आरंभ होता है और पूंजीवाद से साम्यवादी समाज की स्थापना होती है। इस प्रकार आदिम साम्यवाद से आधुनिक साम्यवाद की स्थापना को मार्क्स इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या द्वारा समझाने का प्रयास करता है।

तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग द्वारा विश्व इतिहास में विभिन्न समाजों, सभ्यताओं, संस्कृतियों, राज्यों के प्रशासनों और धर्मों की समानताओं और विभिन्नताओं का अध्ययन आसानी से किया जा सकता है। तुलनात्मक इतिहास दर्शन का प्रवर्तक इटली के महान दार्शनिक इतिहासकार ''विको'' को माना जाता है। उसका मानना था कि इतिहास में समानता और अक्षुण्णता की प्रवृत्ति विद्यमान है। इमाइल दुर्खीम (1858–1917 ई.) कार्य कारण संबंधों की प्राथमिकता सिद्ध करने के लिए तुलनात्मक पद्धति को सर्वश्रेष्ठ पद्धति मानते हैं। कभी–कभी घटनाएं और परिस्थितियां एक दूसरे को उत्पन्न करने का कारण होती हैं। कौन सी घटना किस परिस्थिति के द्वारा उत्पन्न हुई या किस घटना ने कौन सी परिस्थिति पैदा की, यह सब जानने के लिए हम उन सभी परिस्थितियों की तुलना घटनाओं के संबंध में करते हैं, जिनमें दो घटनाएं एक साथ घटित होती हैं या अनुपस्थित होती हैं, इसी को तुलनात्मक पद्धति कहा जाता है।

इतिहास की प्रमुख विषय–वस्तु मानव एवं उसका कार्य व्यवहार है। कालिंगवुड ने समस्त इतिहास को विचारों का इतिहास कहा है। वस्तुतः मनुष्य जब कोई भी कार्य संपन्न करता है तो सर्वप्रथम उसके मस्तिष्क में कुछ विचार आते हैं और इन्हीं विचारों की परिणति उसके द्वारा संपन्न कार्यो में देखी जा सकती है। इसीलिए कतिपय विद्वान मानव के विचारों के अध्ययन पर जोर देते हैं। संरचनावाद इतिहास की एक नवीनतम अवधारणा है जिसमें संरचनावादी विद्वान मानव मस्तिष्क की संरचना के अध्ययन पर बल देते हैं। प्रमुख संरचनावादी विद्वानों में लेवी स्ट्राउस, जान लॉक, आलथूसे एवं बार्थ का नाम अग्रणी रूप से लिया जा सकता है। यद्यपि इनके संरचनात्मक दर्शन में कुछ विभिन्नताएं भी दृष्टिगोचर होती हैं। इन सब में सर्वप्रथम संरचनावादी विद्वान प्रख्यात मानवशास्त्री लेवी स्ट्राउस को माना जाता है।

वर्तमान समय की सर्वाधिक ज्वलन्त समस्याओं में सर्वप्रमुख समस्या पारिस्थितिक असंतुलन की समस्या के रूप में दिखाई दे रही है। जंगलों का निरंतर कम होते जाना,

टिप्पणी

तदनुसार ही वन्य जीव–जंतुओं में कमी का आना, कम वर्षा के परिणामस्वरूप भूमिगत जल स्तर का निरंतर गिरना आज विश्व स्तर पर चिंता का प्रमुख विषय है। ऐसे में इतिहासकारों का ध्यान पारिस्थितिक इतिहास की ओर जाना स्वाभाविक ही है। चूंकि इतिहास की प्रमुख विषय–वस्तु मानव एवं समाज है और मानव एवं समाज की सर्वांगीण प्रगति का पारिस्थितिक संतुलन से सीधा संबंध है। अतः पारस्थितिक असंतुलन को लेकर मानव एवं समाज की चिंता इतिहासकारों का ध्यान पारिस्थितिक इतिहास की ओर खींचती है। उत्तर–आधुनिकतावादी विद्वानों ने इतिहास के अध्ययन की विषय–वस्तु के रूप में वर्तमान की समस्याओं को भी रखा है। फूको एवं नीत्से ने भी वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में अतीत के अध्ययन पर जोर दिया हैं।

इतिहास में उत्तर आधुनिकतावादी अध्ययन का आरंभ 20 वीं शताब्दी के चतुर्थांश से हुआ। फ्रांस के माइकल, फूको, लियोतार्ड, जाक देरिदा एवं ब्रेंडिस जैसे विद्वानों ने इतिहास पर उत्तर आधुनिक नजरिए से दृष्टिपात किया। उत्तर आधुनिकतावादी पूर्व से प्रचलित किसी भी अवधारणा या सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते। वे मार्क्सवाद को भी सैद्धांतिक सामान्यीकरण के कारण अस्वीकार करते हैं। फूको को उत्तर आधुनिक विचारधारा का प्रणेता माना जाता है।

इतिहास की उत्तर आधुनिक समालोचनाओं का एक प्रधान केन्द्र सत्ता और इतिहास के पारस्परिक संबंधों में स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होता है। हैगेल और मार्क्स की मान्यता थी कि इतिहास का प्रवाह एक सुनिश्चित योजना के तहत संचालित होता है और वह एक निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर उन्मुख है। जबकि हैगेल एवं मार्क्स के विपरीत उत्तर आधुनिकतावादी एक प्रगतिशील और निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर गत्यात्मक इतिहास की अवधारणा को स्वीकार नहीं करते। वे सत्ता और इतिहास दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

5.8 मुख्य शब्दावली

- **प्रणेता** : किसी मत या सिद्धांत का निर्माता।
- **अभिप्राय** : अर्थ, तात्पर्य।
- **सौहार्द्र** : भाईचारा, आत्मीयता।
- **पराकाष्ठा** : ऊंचाई, चोटी, शिखर।
- **ह्रास** : हानि।
- **वैमनस्य** : शत्रुता, वैर भाव, मनमुटाव।
- **दासता** : गुलामी।

5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय युगचक्रवादी सिद्धांत से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।
2. ऐतिहासिक भौतिकवाद से आप क्या समझते हैं? टिप्पणी कीजिए।

टिप्पणी

3. मार्क्स ने उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन के आधार पर मानव इतिहास को किन युगों में बांटा है? उल्लेख कीजिए।
4. संरचनात्मक सिद्धांत को परिभाषित कीजिए।
5. इतिहास के वृहत् सिद्धांतों की विशेषताएं बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास के चक्रीय एवं ऐतिहासिक सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
2. इतिहास के सामाजिक एवं तुलनात्मक सिद्धांत का विश्लेषण कीजिए।
3. संरचनात्मक एवं वैश्वीय सिद्धांत की समीक्षा कीजिए।
4. इतिहास के पारिस्थितिकीय सिद्धांत की विवेचना कीजिए।
5. इतिहास की उत्तर आधुनिक समालोचनाओं का वर्णन कीजिए।

5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. कार ई.एच., इतिहास क्या है, अनुवाद अशोक चक्रधर, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1993.
2. चौबे झारखंडे, इतिहास दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1999.
3. थापर रोमिला, इतिहास की पुनर्व्याख्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991.
4. पांडेय गोविंद चंद्र, इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धांत, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1993.
5. पांचाल एवं बघेला, इतिहास के सिद्धांत एवं पद्धतियां, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर.
6. बुद्ध प्रकाश, इतिहास दर्शन, हिंदी समिति, प्रयाग, 1962.
7. राय कौलेश्वर, इतिहास दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, 1999.
8. लोहिया राममनोहर, इतिहास चक्र, लहर प्रकाशन, इलाहाबाद, 1935.
9. वर्मा लालबहादुर, इतिहास के बारे में, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000.
10. शर्मा रामविलास, इतिहास दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995.
11. सांकृत्यायन राहुल, अतीत से वर्तमान, विद्या मंदिर प्रेस, वाराणसी, 1956.
12. श्रीवास्तव बी.के., इतिहास लेखन : अवधारणा, विधाएं एवं साधन, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा, 2008.